।। श्री गणेशायः नमः ।।

भगवान अग्रसेन जी के जीवन चरित्र पर आधारित प्रामाणिक खण्ड काव्य

श्री अग्रसेन भागवत

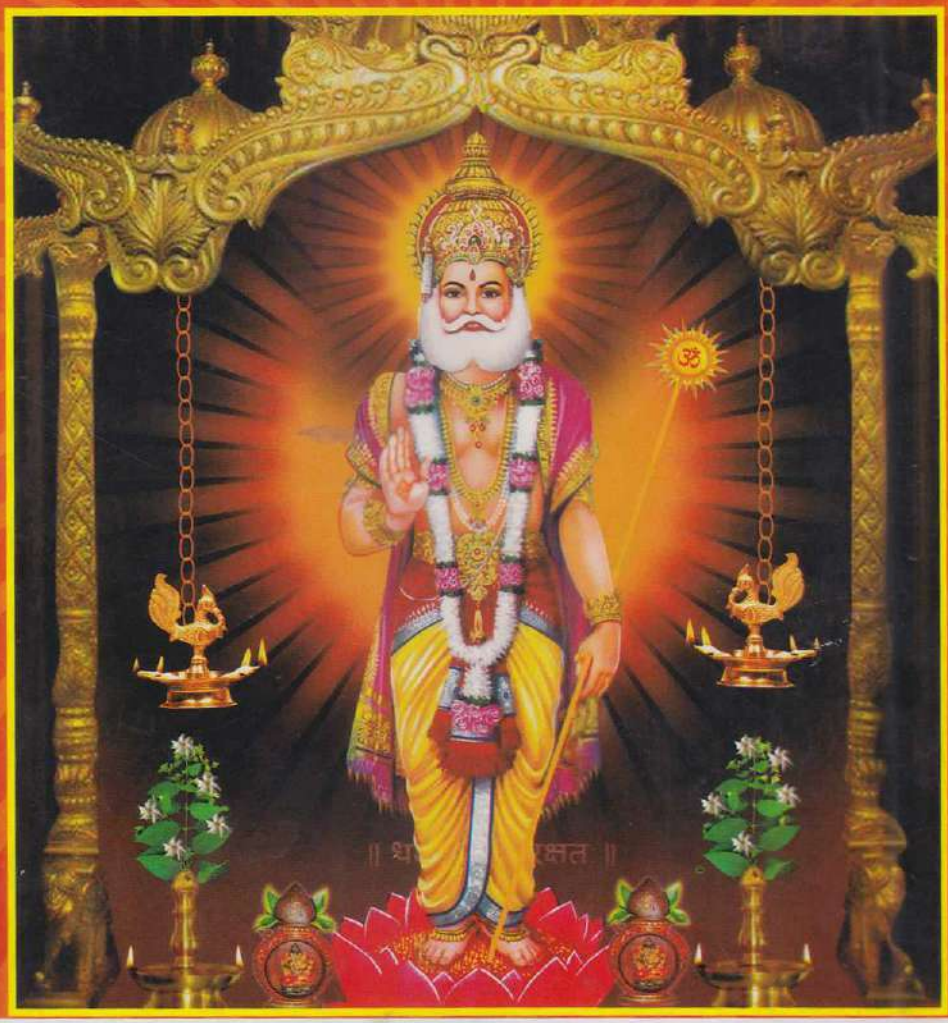

लेखक - आचार्य विष्णु दास

प्रकाशक : अग्रसेन भागवत ट्रस्ट (रजि.)
श्री अग्र महालक्ष्मी मंदिर, बड़ा पार्क, बल्केश्वर
आगरा (उ.प्र.) मो. 09410668734, 08307504589

शुभेच्छु

श्री रामेश्वर दास गुप्त
संस्थापक मंत्री
अग्रोहा विकास ट्रस्ट अग्रोहा

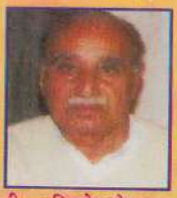

श्री नन्दकिशोर गोयनका
अध्यक्ष
अग्रोहा विकास ट्रस्ट अग्रोहा

श्री राधेश्याम बंसल
संस्थापक : गुजरात
प्रदेश अग्रवाल महासभा

श्री पी. के. बंसल (I.P.S.)
पूर्व पुलिस महानिदेशक
गुजरात प्रदेश अग्रवाल महासभा

श्री भगवानदास मातादीन गुप्ता
व. उपाध्यक्ष : गुजरात
प्रदेश अग्रवाल महासभा

श्री कामता प्रसाद अग्रवाल
चेयरमैन
के. पी. चैरिटेबल ट्रस्ट आगरा

श्री प्रमोद सिंघल
ट्रस्टी
अग्रसेन भागवत ट्रस्ट

श्री बाल किशन मंगल
उपाध्यक्ष
आगरा व्यापार मण्डल

श्री के. बी. गुप्ता
अध्यक्ष : अग्रवाल समाज
विकास परिषद, अहमदाबाद

श्री सोमनाथ गुप्ता
अध्यक्ष : महाराजा अग्रसेन
सेवा संस्थान, अहमदाबाद

श्री दिनेश बंसल 'कातिब'
अध्यक्ष
अग्रवाल महासभा आगरा

श्री सुशील गोयल (इंजी.)
विशिष्ट ट्रस्टी
अग्रसेन भागवत ट्रस्ट (रजि.)

श्री दिनेश गर्ग (सी. ए.)
अध्यक्ष : अरावली अग्रवाल
समाज, अहमदाबाद

श्री अग्रदास
मोदीनगर

श्री हरी प्रकाश अग्रवाल
प्रधान सम्पादक
अग्रवाल परिणय पहल

श्री नन्दकिशोर अग्रवाल
व. उपाध्यक्ष : अग्रवाल
कौटुम्बिक समिति, अहमदाबाद

श्री जितेन्द्र कुमार अग्रवाल (एड.)
महामंत्री : अग्रवाल कौटुम्बिक
समिति, अहमदाबाद

श्री नवीन अग्रवाल
अग्र समाजसेवी
अहमदाबाद

श्री कान्तिलाल अग्रवाल
व. उपाध्यक्ष : गुजरात प्रदेश
अग्रवाल सम्मेलन, बड़ौदरा

श्री जगदीश प्रसाद अग्रवाल
अध्यक्ष : अग्रवाल समाज
ट्रस्ट, बड़ौदरा

श्री राजेश कुमार आर्य
मंत्री : श्री अग्रवाल
समाज ट्रस्ट, बड़ौदरा

श्री दिनेशचन्द्र बसंतलाल अग्रवाल
सहमंत्री : श्री अग्रवाल
समाज ट्रस्ट, बड़ौदरा

श्री निरंजन आर. अग्रवाल
संयोजक : परिचय सम्मेलन-
सामूहिक विवाह, बड़ौदरा

श्री नन्द लाल गर्ग
सचिव : अग्रवाल विकास
संगठन (ट्रस्ट) बड़ौदरा

श्री शिवदयाल अग्रवाल
अग्र समाजसेवी
बड़ौदरा

卐 ओउम् गं गणपतये नमः 卐

समाजवादप्रवर्तक एवं गणतन्त्र संस्थापक महाराजा अग्रसेन जी के जीवन-मूल्यों पर आधारित प्रामाणिक ग्रंथ।

महाराजा अग्रसेन जीवन दर्शन

श्री अग्रसेन भागवत

(चौपाई, दोहा, सोरठा, छंद में)

- लेखक -

विष्णु कुमार अग्रवाल "आचार्य विष्णुदास"

एम. ए. अंग्रेजी, हिन्दी, बी. एड.

पूर्व अ.अध्यापक : महाराजा अग्रसेन इण्टर कॉलेज, आगरा

(अग्रोहा विकास ट्रस्ट, अग्रोहा द्वारा प्रवर्तित सेठ द्वारिकाप्रसाद सर्राफ राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित एवं प्रमुख अग्र विद्वान घोषित-2012)

- प्रकाशक -

अग्रसेन भागवत ट्रस्ट (रजि0)

पंजीकृत कार्यालय : श्री अग्र महालक्ष्मी मन्दिर, बड़ा पार्क, बल्केश्वर चौराहा, आगरा-282004 (उ.प्र.) भारत

मोबाइल : 9410668734, 8307504589

द्वितीय प्रकाशन

जून 2014

भेंट

251/-

श्रीअग्रसेन भागवत

महाराजा अग्रसेन जीवंत दर्शन

(चौपाई, दोहा, सोरठा, छंद में)

- सर्वाधिकार सुरक्षित

- विशेष सहयोगी : अतुल गोयल सिरोंज (दै.भा.)
  प्रमील किशोर अग्रवाल
  सुनील कुमार अग्रवाल
- द्वितीय संस्करण : 3000 प्रतियाँ
- प्रकाशन वर्ष : जून 2014
- प्रकाशक का नाम : अग्रसेन भागवत ट्रस्ट (रजि0)
- पंजीकृत कार्यालय : श्री अग्र महालक्ष्मी मन्दिर, बड़ा पार्क, बल्केश्वर चौराहा, आगरा-282004 (उ.प्र.)
- लेजर टाइप सैटिंग : अमित ग्राफिक्स, बल्केश्वर, आगरा
  मो. 9319121319
- मुद्रक : राष्ट्रभाषा प्रैस, अहीरपाड़ा, राजामण्डी, आगरा

श्री अग्रसेन भागवत प्रचार-प्रसार समिति (भारतवर्ष)

राष्ट्रीय महामंत्री
श्री प्रमोद कुमार गोयल
मोदी नगर (उत्तर प्रदेश)
मो. 09917561290

राष्ट्रीय प्रचारक
श्री हरी प्रकाश अग्रवाल,
अहमदाबाद (गुजरात)
मो. 09898242448

भेंट : 251/-

नोट - इस पुस्तक का कोई भी अंश व्यावसायिक दृष्टि से स्तेमाल करना पूर्णतया अवैधानिक होगा तथा समस्त विवादों का न्याय - क्षेत्र आगरा होगा।

भगवान अग्रसेन और संबन्धित तिथियाँ

1. **चैत्र शुक्ल प्रतिपदा**—समाजवाद स्थापना दिवस (एक ईंट और एक रुपये द्वारा)
2. **वैशाख पूर्णिमा**—अहिंसा एवं वैश्य दिवस
3. **ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया**—अग्रोहा निर्माण दिवस
4. **श्रावण बदी पञ्चमी**—अग्र माधवी का नागलोक में मिलन
5. **आश्विन शुक्ल एकम्**—भगवान अग्रसेन अवतरण दिवस
6. **कार्तिक अमावस्या**—पंचदिवसीय दीपोत्सव
7. **मार्गशीर्ष पूर्णिमा**—महालक्ष्मी प्राकट्योत्सव एवं वरदान दिवस
8. **माघ शुक्ल पञ्चमी**—अग्रसेन-माधवी विवाह
9. **मार्गशीर्ष पूर्णिमा**—आग्रेयपुरी का त्याग
10. **कार्तिक शुक्ल चौदस (वैकुण्ठ चौदस)**—वैकुण्ठ-गमन

ज़रा सोचिए.....

क्या लेकर आए थे?
क्या लेकर जाएँगे?
परहित में कुछ कर सके,
तो ही मानव कहलाएँगे॥
अग्र थे, अग्र हैं,
अग्र ही होकर मरना है।
सबको एक करके ही,
जग से गुजरना है॥
अग्रोहा स्वयं ने
आगरा पिता ने बसाया था।
विश्व को अग्रिस्तान बनाने का स्वप्न
आपने ही तो दिखाया था॥

विषय-सूची

क्र0	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	मंगलाचरण	9-11
2.	ग्रंथ महिमा	12-19
3.	अग्र-जन्म	20-30
4.	शिक्षा एवं दण्ड	31-38
5.	महाभारत में शौर्य-प्रदर्शन	39-50
6.	श्रीकृष्ण द्वारा निर्देश एवं कृपा	51-57
7.	कुंदसेन का षड्यन्त्र	58-65
8.	कारागृह से मुक्ति	66-76
9.	गर्गाचार्य जी से भेंट	77-84
10.	महालक्ष्मी की तपस्या एवं आशीर्वाद	85-98
11.	सम्पदा-प्राप्ति	99-107
12.	आग्रेयपुरी का निर्माण	108-118
13.	नागलोक की यात्रा	119-126
14.	अग्रसेन-माधवी मिलन	127-133
15.	सूर्योपासना	134-140
16.	माधवी द्वारा प्रार्थना	141-147
17.	शैव्य-वैष्णव	148-160
18.	ब्रह्मचर्य की परीक्षा	161-167
19.	अग्रसेन-माधवी-विवाह	168-178
20.	आग्रेयपुरी में आगमन	179-188
21.	इन्द्र से युद्ध एवं संधि	189-199
22.	जन्म एवं विवाह	200-207
23.	पशु-बलि एवं वैश्य धर्म	208-227
24.	अग्रसेन महाराजा बने	228-236
25.	श्री अग्रसेन और समाजवाद	237-246
26.	यात्रा	247-254
27.	राज्य के अधिकार और कर्तव्य	255-270
28.	मोक्ष एवं वैकुण्ठ	271-284
29.	जागृति	285-290
30.	..... - विश्राम दोहे	291
31.	..... - आरती (अग्रसेन भागवत जी का आरती)	292
32.	भगवान अग्रसेन जी के 108 मंत्र	293-94
33.	श्री लक्ष्मी जी की आरती	295
34.	लेखक का परिचय	296

शुभकामना - संदेश

श्रद्धेय अग्रविद्वान

जै श्री अग्रसेन,

समतोपदेशक महाराजा अग्रसेन जी के जीवन-चरित्र तथा उनके सर्वलोकहितकारी सिद्धांतों पर आधारित महाभारतकालीन जिस ग्रंथ का पुन: प्रकाशन हो रहा है उस हेतु मेरी कोटि-कोटि बधाईयाँ स्वीकार करें।

माननीय,

महाराजा अग्रसेजन जी 5128 वर्षों से इस धरा पर प्रात:स्मरणीय रहे हैं। आप केवल अग्रवैश्यों के ही पूज्य नहीं हैं अपितु शांति, सुख, समृद्धियुक्त एवं समताधारित सिद्धांतों के असंख्य प्रचारकों के भी प्रणेता हैं। विश्व के 218 राष्ट्रों में अधिकांश राष्ट्रों में आपकी अहिंसात्मक एवं समत्वाधारित विचारधारा पर ही शासन चल रहा है। श्री अग्रसेन जी द्वारा बलात्कारप्रयासी राजा रतीन्द्र को जन समूह के समक्ष दिया गया दण्ड, महाभारत युद्ध में महाबल का प्रदर्शन, बिना हिंसा गोधन एवं हंस की व्याघ्र से रक्षा, नागकुल में पिपीलिका-अस्त्र का प्रयोग, विद्वानों के लिए ससम्मान आजीविका प्रबन्ध, अहिंसापरक वैश्य धर्माधारित समाज की संरचना, एक ईंट तथा एक रुपये से सच्चा समाजवाद सम्भव नीति की नैतिक शिक्षा, वर्णसंकरता निवारण हेतु विशेष प्रयास, स्व-कर्म द्वारा विशाल आग्रेयगणराज्य का निर्माण, देवराज इन्द्र के साथ स्वाभिमानयुक्त संधि तथा माता महालक्ष्मी द्वारा पुत्ररूप में गरुण पर सवार होकर सदेह बैकुण्ठ लोक गमन आदि प्रेरक प्रसंगों का ज्ञान हम सभी के लिए समान रूप से अविस्मरणीय एवं कौतूहल से युक्त है।

पुन: हम अग्रवाल वैश्यों के लिये सर्वथा उपयोगी इस प्रामाणिक ग्रंथ के द्वितीय संस्करण के प्रकाशन पर मेरी, हमारी और हम सबकी ओर से सुधि लेखक को कोटि-कोटि बधाइयाँ एवं नमन।

जै माता माधवी

28.05.2014

शुभेच्छु

कपूर चन्द गुप्ता (के. बी. गुप्ता)

(प्रसिद्ध सामाजिक, सांस्कृतिक, सांगठनिक समन्वयक)

अध्यक्ष : अग्रवाल समाज विकास परिषद, अहमदाबाद

मो. 9825039346

दिनांक : 28/5/2014

शुभकामना - संदेश

आदरणीय अग्रभागवताचार्य,

जय श्री अग्रसेन!

बड़े हर्ष का विषय है कि अग्रवालों के सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथ श्री अग्रसेन भागवत के द्वितीय संस्करण का प्रकाशन किया जा रहा है। मेरी हार्दिक शुभकामना है कि यह भाष्य अब तक के सम्पूर्ण भ्रमों का निवारण करने में सफल होगा।

ध्यातव्य है कि महर्षि वेदव्यास जी के पटशिष्य जैमिनी ऋषि द्वारा लिखित अग्रसेन भागवत रूपी ग्रन्थ संस्कृत में था। यह भाष्य संस्कृत न जानने वालों के लिये सुगम रहेगा। यह उपाख्यान परीक्षितपुत्र जनमेजय को नागकुल विध्वंस यज्ञ एवं हिंसात्मक कर्म से रोकने के लिये जैमिनी ऋषि द्वारा सुनाया गया था। इसमें बताया गया है कि संसार में एक राजा ऐसा हुआ था जो जाति से क्षत्रिय था किन्तु यज्ञ में दी जाने वाली पशु बलि को देखकर उसने सत्य, प्रेम, अहिंसा, करूणा, समत्व, आदर्श वस्तु-विनिमय-व्यवस्था एवं निष्ठापूर्ण कर्म करने वाले वैश्य धर्म अर्थात् सर्वलोकहितधर्मम् को स्वीकार कर लिया था।

अन्य प्रामाणिक तथ्यों को इस नवीन संस्करण में जोड़े जाने से यह ग्रन्थ निश्चित ही सर्वसमाज के लिए उपयोगी होगा। आशा है कि अग्रवैश्य समाज अब निश्चित ही समत्व को प्राप्त होगा।

शुभेच्छु

कामता प्रसाद अग्रवाल

(चेयरमेन)

के.पी. इंजीनियरिंग कॉलेज एण्ड

मैनेजमेन्ट इंस्टीट्यूट, आगरा

अलौकिक ग्रन्थ—'श्री अग्रसेन भागवत'

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

महाभारत का महायुद्ध सम्पन्न हो गया। प्रभु के उपर्युक्त कथन में से दो कार्य 'परित्राणाय साधुनां' तथा 'विनाशायच दुष्कृताम्' भी सम्पन्न हो गये। विनाश की इस महालीला में दुष्टों के साथ-साथ आर्यावर्त के अधिकांश क्षत्रियों की इहलीला भी समाप्त हो गई। चारों ओर विनाश का ताण्डव, वैधव्य का विद्रूप, विलाप और विषाद का विष ही विष व्याप्त हो गया। ऐसे में प्रभु के कथन का तीसरा कार्य 'धर्म संस्थापना' कैसे हो ? यह यक्ष प्रश्न अनुत्तरित खड़ा था स्वयं प्रभु के समक्ष। इस स्थिति का पूर्वाभास कदाचित प्रभु को पूर्व में ही था। इसी कारण महासमर में जब भीष्म के हाथों पिता वल्लभसेन वीरगति को प्राप्त हो गये और पुत्र अग्रसेन उन्हें ललकार कर युद्ध करने बढ़े, स्वयं श्री कृष्ण ने पाण्डव पक्ष के योद्धाओं को उनकी रक्षार्थ उनके साथ लगा दिया। तब उन्होंने कहा कि आप सब इस बालक की रक्षा करें। यही बालक आर्यावर्त में धर्म की पुर्नस्थापना का हेतु बनेगा। महासमर समाप्त हुआ। पाँचों पाण्डवों के अतिरिक्त युद्ध में सम्मिलित समस्त शान्तनु कुल समाप्त हो गया। पाण्डवों को विजय तो मिली किंतु विलाप और विषादमय। इस विषम परिस्थिति में धर्म संस्थापना का कार्य कौन करे ? कैसे करे ? तब यह कार्य करने का दायित्व उठाया महाराज अग्रसेन ने। अग्रोहा से हुआ इसका शंखनाद। इस शंखनाद की मंगल ध्वनि आर्यावर्त के कौने-कौने में गूँजी और जनजन में सुख-शान्ति का मृदुल संचार कर, महाविनाश की दारुण पीड़ा को विस्मृत कर उन्हें नव जागरण एवं नव निर्माण की ओर प्रवृत कर दिया। महाराज अग्रसेन ने महर्षि गर्ग की अनुकम्पा से अपने पूर्वजों की पुरा नगरी अग्रोहा की खुदाई कराकर अथाह धन- सम्पत्ति प्राप्त कर सुव्यवस्थित नगर अग्रोहा की पुनर्स्थापना की। यहीं से सम्पूर्ण आर्यावर्त में धर्म संस्थापना का पुनीत कार्य प्रारम्भ किया। 'एक ईट और एक मुद्रा' भेंट देने की अभिनव योजना स्थापित कर सच्चे समाजवाद की परम्परा का श्रीगणेश किया। बाईस योजन के विशाल क्षेत्र में बसी भव्य अग्रोहा नगरी तथा अग्रोहा साम्राज्य के एकछत्र सम्राट होते हुए भी, एक यायावर की भाँति सम्पूर्ण आर्यावर्त का एक बार नहीं तीन-तीन वार भ्रमण किया। गाँव-गाँव नगर-नगर जन जन तक स्वयं पहुँच कर सत्य, धर्म और न्याय का संदेश

सब तक पहुंचाया। जन-जन को जाग्रत किया। इस भंयकर आपात् स्थिति से संघर्ष करने, स्वयं को पुन: स्थापित करने तथा सुख, समृद्धि और शान्ति प्राप्त करने की प्रेरणा देकर उनके आत्मविश्वास तथा मनोबल को पुन: जागृत किया। आहत जन-मानस को धैर्य और धर्म का सम्बल दिया तो मर्माहत राष्ट्र स्वयं ही विषाद की जर्मी धूल-पर्तों को मानस पटल पर से झाड़-पोंछकर अँगड़ाई लेकर फिर से उठ खड़ा हो गया। सम्पूर्ण आर्यावर्त पुन: समर्थ और सबल होकर विश्वपटल पर छा जाने को तत्पर हो गया। अपने इस अद्‌भुत, अलौकिक, देवोपम, ईश्वरीय कार्य को सम्पन्न करके महाराज अग्रसेन स्वयं ही नर से नारायण हो गये, माँ महालक्ष्मी के पुत्र कहलाने के अधिकारी हो गये और विश्व में भगवान अग्रसेन के नाम से विख्यात हो गये।

'श्री अग्रसेन भागवत' भगवान श्री अग्रसेन जी के सम्पूर्ण जीवन-चरित्र की गौरव गाथा है। कुशल अग्र कथाकार आचार्य विष्णुदास—जो स्वयं अग्रोहा विकास ट्रस्ट द्वारा प्रवर्तित सेठ द्वारिका प्रसाद सर्राफ राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित हैं—ने अपनी सशक्त लेखनी से भाव-प्रसूनों में पिरोकर भगवान अग्रसेन के सम्पूर्ण जीवन-चरित्र को अग्र समाज के समक्ष प्रस्तुत कर एक स्तुत्य कार्य किया है। इस हेतु सम्पूर्ण अग्र समाज और उसकी आने वाली भावी पीढ़ियाँ उनकी सदैव अभारी रहेंगी। यह एक अद्‌भुत अलौकिक कृति है जो आचार्य जी की आत्मा से निसृत हुई है। यह गाथा उन भगवान श्री अग्रसेन जी की है जो स्वयं लौकिक नहीं अलौकिक है तो इस पर लेखनी उठाकर कुछ लिखने का प्रयास करना ही दुस्साहस है। ऐसा दुस्साहस करने का उनका स्नेहिल आग्रह ही मुझे प्रेरित कर कुछ लिखवा पाया है। इसमें भी उन्हीं का प्रतिबिम्ब है और उन्हीं के पावन ग्रन्थ 'श्री अग्रसेन भागवत' का ही चमत्कारिक प्रभाव है। अन्तत: इसी 'श्री अग्रसेन भागवत' से निम्न अंश उद्धृत कर भगवान श्री अग्रसेन जी को नमन करता हूँ।

अग्रदेव ही समतेश्वर हैं। विश्व शान्ति हित सर्वेश्वर हैं।।
कोई धर्म नहीं है ऐसा। अग्रसेन प्रतिपादित जैसा।।
कलियुग के भगवान हैं, अग्रसेन महाराज।
जो भजता नितप्रति उन्हें, जग में करता राज।।

भगवान श्री अग्रसेन जी की जय।

ओमप्रकाश 'मधुप'
रचनाकार : विष्णु अवतारी भगवान श्री अग्रसेन
अग्रवाल भवन मार्ग, बाड़मेर (राजस्थान)

।।श्री गणेशाय नमः।।

卐 श्री अग्रसेन भागवत 卐

मंगलाचरण

दो0 : श्री गुरु चरणन शीश रख, माँ शारदहि नमन।
शिव माता आशीष ले, मतिपुर करूँ गमन।।1।।

दो0 : 1 (1) श्री सतगुरुदेव के श्री चरणों में अपना शीश रखकर, माता सरस्वती को नमस्कार करके और भगवान शिव तथा माता पार्वती का आशीष लेकर मैं बुद्धि के धाम में प्रस्थान करता हूँ।

गणपति जी से प्रार्थना, रिधि सिधि सँग रहु पास।
शुभ व लाभ भी नित रहैं, ऋषि सुर गुरु मम खास।।2।।

(2) प्रथमदेव श्री गणेश जी मेरी प्रार्थना है कि वह अपनी दोनों पत्नियों रिद्धि और सिद्धि तथा अपने दोनों पुत्रों - शुभ व लाभ के साथ सदा मेरे पास रहें। समस्त ऋषिगण, देवगण तथा गुरुजन मेरे खास बनें।

आदिकवी गुरु वृहस्पती, नारद व्यास कवित्त।
मार्कण्डेय गुरु जेमिनी, वास करैं मम चित्त।।3।।

(3) आदि कवि महर्षि वाल्मीकि, देवगुरु वृहस्पति, मुनि नारद, महर्षि वेदव्यास, मार्कण्डेय मुनि और ऋषि जैमिनी जैसे परम गुरुवर सदा मेरे चित्त में वास करें।

मैं मूरख नादान हूँ, कुछ भी जानूँ ना।
पर तुम्हरे आशीष से, बह बयार सूँना।।4।।

(4) मैं मूरख हूँ। मैं नादान हूँ। मैं कुछ भी नहीं जानता। परन्तु आप जैसों के आशीर्वाद से सूने में भी बहार आ जाती है।

दृश्य अदृश जो शक्तियाँ, करैं कृपा मो पर।
क्योंकी मैं असहाय हूँ, सो दें बुद्धि प्रखर।।5।।

(5) दृश्य-अदृश्य जितनी भी शक्तियाँ हैं, वे सभी मुझ पर कृपा करें, क्योंकि मैं असहाय हूँ। अतः आप मुझे प्रखर बुद्धि दीजिये।

सृष्टि रची परब्रह्म ने, भेद रखा नहिं कोय।
जो जानत या मर्म को, होवत ज्ञानी सोय।।6।।

(6) परब्रह्म परमात्मा ने सृष्टि की रचना की जिसमें उन्होंने किसी प्रकार का भेद नहीं रखा। जो इस रहस्य को जानता है, वह ज्ञानी कहलाता है।

सतयुग त्रेता द्वापरे, सबने यही कहा।
धर्मदेव पुष्टऽति किया, कलियुग समत् महा।।7।।

(7) सतयुग, त्रेतायुग तथा द्वापरयुग - इन सभी युगों में सबने यही भेदरहित ज्ञान सबको दिया। कलियुग में धर्मदेव जी ने इस महान समताभाव को और अधिक पुष्ट कर दिया।

समता-प्रेरक कृष्ण थे, गीता पुष्ट प्रमाण।
दूजे अग्रपती हुये, "विष्णुदास" सच जाण।।8।।

(8) समत्व-दर्शन के प्रणेता भगवान श्री कृष्ण थे- गीता इसका पुष्ट प्रमाण है। दूसरे श्री अग्रसेन जी हुये। विष्णुदास जी कहते हैं - यही सत्य है - ऐसा आप जान लीजिये।

एक रुपैया ईंट इक, प्रति जन को दीजे।
समताधारित विश्व की, नीवहि धरि लीजे।।9।।

(9) एक रुपैया और एक ईंट हर व्यक्ति एक-दूसरे (निर्धन) को देकर विश्व भर में समता की नींव धर सकता है। आप ऐसा ही कीजिये।

सो भैया अग्रहि भजो, गावो इनके गान।
क्योंकी इनसे ही मिलै, जग में सबको मान।।10।।

(10) इसलिये, श्री अग्रसेन जी का नित्य भजन करिये। इनका गुणगान कीजिये। क्योंकि इनसे ही जगत में मान-सम्मान मिलता है।

श्रावण शुक्ला तीज तिथि, दिवस महाशिव सोम।
पहर प्रात पैंतीस नौ, कथा लिखत कह 'ओम'।।11।।

(11) कवि कहता है कि यह श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि है और दिन महाशिव रात्रि का सोमवार है। इस समय सुबह के नौ

बजकर पैंतीस मिनट हुए हैं। प्रणव ओउम् का पवित्र नाम लेकर मैं इस पावन कथा को (कहता) लिखना प्रारम्भ करता हूँ।

महालक्ष्मी भगवती , हैं जग की माता।
"विष्णुदास" नित कीजिये, घर-घर जगराता।।क।।
बिना तुम्हारे मात! अब, कहीं नहीं सन्मान।
सो माता मो गृह बसो, सँग "विष्णू" के आन।।ख।।

सम्पुट

अग्रसेन महाराज की जै हो। जै हो जै हो सदा ही जै हो।।
अग्र-पंथ पर जो जन चलता। उसको मिलती नित्य सफलता।।
महाराजा अग्रसेन जी की जै हो, जै हो, सदा ही जै हो। जो प्राणी महाराजा अग्रसेन जी द्वारा बतलाये गये मार्ग पर चलता है उसे नित्य सफलता मिलती है।

गुरू जैमिनी शरण तिहारी। अग्र-कथा कहुँ महाविचारी।।
(1) हे गुरुदेव जैमिनी जी ! मैं आपकी शरण में हूँ। मैं पूरी तरह से विचार करके अग्रसेन जी की इस कथा को कहता हूँ।

व्यास- शिष्य जैमिनी गुणी अति। पुत्र परीक्षित को देते मति।।
(2) वेद व्यास जी के शिष्य ऋषि जैमिनी बहुत गुणी हैं। वह परीक्षित के पुत्र जनमेजय को सुमति देते हैं।

जनमेजय बोले गुरु कहिये। शोक व्यथा मम तुरतहि हरिये।।
(3) जनमेजय ने कहा – हे गुरुदेव! मुझे ज्ञान दीजिये और तुरन्त मेरे शोक और मेरी व्यथा को दूर करिये।

तक्षक डसया पिता परीक्षित। इस कारण हूँ आज व्यथित अति।।
(4) तक्षक नाग ने मेरा पिता को डस लिया है, इस कारण मैं आज अति व्यथित हूँ।

जैमिनि अग्र भागवत कहई। जनमेजय श्रद्धा सों सुनई।।
(5) तब जैमिनी ऋषि अग्रसेन भागवत कहते हैं जिसे नृप जनमेजय श्रद्धा के साथ सुनते हैं।

ग्रन्थ-महिमा

(ऋषिगण उवाच)

चौ० : महालक्ष्मी वर जब दीन्हा। अग्रसेन महिमामय कीन्हा।।
मानी श्रेयस मंगलकारी। अग्र-कथा पुराण अति भारी।।

(1) माता महालक्ष्मी ने श्री अग्रसेन जी को शुभ वर दिया और उन्हें महिमामय बना दिया। यह कथा मान देने और लेने वाली, श्रेय प्रदान करने वाली तथा मंगलकारी है। यह पुराणों में श्रेष्ठ पुराण है।

अग्रोपाख्यानम् वो सुनई। पुण्य-कर्म जाके जब उदई।।
महा ग्रन्थ यह जिहि गृह रहई। महालक्ष्मी तहँ नित लहई।।

(2) जब जिसके पुण्यों का उदय होता है तभी वह इस अग्रोपाख्यान को सुन पाता है। यह महान ग्रंथ जिसके भी घर में रहता है वहाँ सदा महालक्ष्मी लहलहाती हैं।

श्रद्धा सँग अभिषेक करे जो। पाप विमुक्तऽरु पुण्य गहे वो।।
कथा कल्पनाऽधारित हुवई। उपाख्यान प्रामाणिक कहई।।

(3) जो भक्त इस अग्र भागवत का श्रद्धासहित नित्य अभिषेक करता है वह पापों से विमुक्त होकर पुण्यों को प्राप्त करता है। कथा कल्पना पर आधारित होती है। जबकि उपाख्यान में प्रामाणिकता होती है।

अग्र-कथा पुरुषार्थ कथा है। व्यास-शिष्य बहु भाँति मथा है।।
पुण्य-दर्श याकौ जो करई। धर्म अर्थ सँग झोली भरई।।

(4) श्री अग्रसेन जी की यह कथा उनके पुरुषार्थ की कथा है जिसे व्यास जी के शिष्य ने भलीभाँति मथा है। जो भक्त इस ग्रंथ का पुण्य दर्शन करता है वह धर्म-अर्थ से अपनी झोली भर लेता है।

दो० : कल्पवृक्ष सम यह कथा, अष्ट सिद्धि संयुक्त।
"विष्णुदास" पुनि करु नमन, श्रद्धा-भक्ती युक्त ।। 1।।

दोहा—विष्णुदास कहते हैं कि कल्पवृक्ष के समान यह पावन कथा अष्ट सिद्धियों से युक्त है। अतः हे अग्रजनों ! श्रद्धा-भक्ति के साथ इस दिव्य कथा को बार-बार प्रणाम करो।1।

चौ0 : प्रतिपल अग्रसेन को भजिये। धन-वैभव श्री से नित सजिये।।
जै जै अग्रसेन महाराजा। पूरण कीजे सबके काजा।।
(1) कवि कहता है कि प्रतिपल श्री अग्रसेन जी को भजिये और धन, वैभव एवं श्री से नित्य सजिये। हे अग्रसेन महाराज! आपकी सदा जै हो। आप हमारे सबके कार्यों को पूर्ण कीजिए।

अग्रसेन नृप जो जन कहई। जीवन भर प्रसन्न वो रहई।।
अग्रादर्श नीति पर चलकर। सुख सम्पति श्री पावत हर नर।।
(2) जो व्यक्ति महाराजा अग्रसेन जी के पावन नाम को कहता है वह जीवन भर प्रसन्न रहता है। जो प्राणी अग्रसेन जी के आदर्शों पर चलता है वह सुख, सम्पत्ति एवं श्री को प्राप्त करता है।

अग्रदेव ही समतेश्वर हैं। विश्व-शांति हित विश्वेश्वर हैं।।
कोई धर्म नहीं है ऐसा। अग्रसेन प्रतिपादित जैसा।।
(3) श्री अग्रसेन जी ही भगवान समतेश्वर हैं। विश्व-शांति के लिये ये ही विश्व के ईश्वर कहलाते हैं। श्री अग्रसेन जी द्वारा प्रतिपादित 'समत्व-दर्शन' जैसा अन्य कोई धर्म जगत में नही है।

धर्मऽवतार अग्र की जै हो। भूत वर्त भावी की जै हो।।
अग्र पंक्ति पर वो ही चलता। अग्रेश्वर प्रभु को जो नमता।।
(4) धर्म के अवतार भगवान अग्रसेन जी की जै हो। भूत, वर्तमान और भविष्य के सुख की जै हो। जो कोई अग्रेश्वर प्रभु को नमस्कार करता है वो ही अग्रसेन जी के बताये रास्ते पर चल पाता है।

दो0 : कलियुग के भगवान हैं, अग्रसेन महाराज।
जो भजता नित प्रति इन्हें, जग में करता राज।। (2)
दो0 : कलियुग में यदि कोई भगवान हैं तो वो हैं- महाराजा अग्रसेन! जो प्राणी दिन रात इनका ही भजन करता है वो ही जग में राज्य करता है। (2)

पूर्व प्रसंग

(नोट - यहाँ परीक्षित-जन्म से तक्षक दंश की कथा कहिये।)

दो0 : जनमेजय राजा बने, ख्यात कुरूवंशहिं।
पत्नी जिहहि वपुष्टमा, द्वै सुत धर्मप्रियहिं।।क।।

(क) प्रख्यात कुरुवंश के राजा जनमेजय बने जिनकी पत्नी का नाम वपुष्टमा था। धर्म के प्यारे इनके दो पुत्र थे।

चन्द्रपीड़ अग्रज भए, लघु सुत सूर्यापीड़।
सौम्य गुणन संयुक्त जो, लख नित मुदितति भीड़।।ख।।

(ख) बड़े बेटे का नाम चन्द्रापीड़ और छोटे बेटे का नाम सूर्यापीड़ था। सौम्य गुणों से संयुक्त इन पुत्रों को देखकर जन-मानस मुदित होकर इनकी ओर दौड़ने लगता था।

अभिमन्यू-सुत को डसा, तक्षक वश श्रापहि।
जनमेजय भ्रमवश कहैं,नाग मृत्यु बापहि।।ग।।

(ग) तक्षक नाग ने श्राप के वशीभूत होकर अभिमन्यु के पुत्र को डस लिया था। किन्तु नृप जन्मेजय भ्रम के वश में होकर तक्षक को ही अपने पिता की मृत्यु का कारण मानने लगे।

चौ0 : ऋषि उतंक बतलाया कारण। पुष्टि अमात्यन कीन्ही राजन्।।
दिल में क्रोध-भावना जागी। नागसत्र मख रुचिकर लागी।।

(1) जैमिनी ऋषि कहते हैं - हे जनमेजय! उतंक ऋषि ने जनमेजय के पिता की मृत्यु का कारण बतलाया और मंत्रियों ने उसकी पुष्टि कर दी। जिससे राजा के दिल में क्रोध की भावना जाग उठी। इस हेतु उन्हें नाग-यज्ञ का विचार रुचिकर लगा।

चौ0 : शुक्रताल कीन्ही तैयारी। तीरथ धामऽरु संत सखा री।।
त्रय लोके उत्सुकता जागत। यज्ञ अमर्ष लक्ष प्रति चाहत।।
सुर नर मुनि गंधर्व यक्षगण। पशु पक्षी पहुँचे देखन रण।।

(2) शुक्रताल तालों का ताल है जहाँ इस यज्ञ को करने की तैयारी की गयी। शुक्रताल तीर्थों का तीर्थ है, धामों का धाम है। इतना ही नहीं यह

स्थान संतों का प्रिय सखा भी है। तीनों लोकों में इस अमर्ष यज्ञ के प्रति उत्सुकता का ऐसा भाव जागृत हुआ कि वहाँ का प्रत्येक वासी अमर्षाधारित इस यज्ञ को देखने की चाह रखने लगा। समस्त देवगण, मनुष्यों की सम्पूर्ण प्रजातियाँ, मुनियों के समूह, गंधर्वकुल एवं यक्षगणों सहित पशु पक्षियों के समुदाय भी इस प्रतिकारी यज्ञ-रण को देखने से स्वयं को नहीं रोक सके। (2)

एक ओर मंत्रन उच्चारण। दूजहि नाग कारुणिक क्रन्दन।।
तक्षक इन्द्रलोक में आया। निज को इन्द्रासन लिपटाया।।

(3) एक ओर तो मंत्रों का उच्चारण हो रहा था, वहीं दूसरी ओर नागों का करुणापूर्ण क्रन्दन सुनाई दे रहा था। तक्षक इन्द्रलोक में आकर इन्द्र के आसन से जाकर लिपट गया।

नागराज हूये अति चिंतित। इक उपाय सूझा वासुकि मति।।
भांजे आस्तिक को बुलवाया। कष्ट कटे का शुभ वर पाया।।

(4) नागराज वासुकि यह सब देखकर अत्यन्त चिंतित हुए। तब उन्हें एक उपाय सूझा। उन्होंने अपने भांजे आस्तिक की बुलवाया और 'कष्ट कटेंगे' का वर प्राप्त किया।

ऋषि आस्तिक पहुँचे यगमण्डप। करन लगे आसन धरकर जप।।
नागवंश का संकट काटा। खत्म हुआ दुख-ज्वारहि भाटा।।

(5) ऋषि आस्तिक यज्ञ-मण्डप में पहुँचे और वहीं आसन धरकर जप करने लगे। इससे नागवंश का संकट कट गया और आया हुआ कष्ट रूपी सारा ज्वार-भाटा समाप्त हो गया।

दो0 : जनमेजय निश्चय किया, अश्वमेध यज्ञहिं।
व्यास कहा कारण यही, कुरूक्षेत्र समरहिं।।क।।

(क) तब जनमेजय ने अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। व्यास जी कहते हैं कि महाभारत के युद्ध का कारण यही अश्वमेध था।

अहंकारवश ना सुनी, व्यास-प्रीति की सीख।
अपमानित हो चल दिये, यज्ञ करन की दीख।।ख।।

(ख) अहंकार के वशीभूत नृप जनमेजय ने व्यास जी की सीख नहीं मानी। व्यास जी अपमानित होकर वापस चल दिये और उधर जनमेजय यज्ञ की दीक्षा को चल दिये।

अश्वबली कर यज्ञ में, मख विधान अनुसार।।
क्षत-विक्षत हय के निकट, रानी गई पसार।।ग।।

(ग) यज्ञ के विधान के अनुसार यज्ञ में पशुबलि दी गयी। क्षत-बिक्षत अश्व के निकट रानी ने रात्रि-विश्राम किया अर्थात् पसरी रही।

इन्द्र छला वऽपुष्टमा, हयरूपे लागा।।
क्योंकी मन 'हंकार था, सो विवेक भागा।।घ।। (3)

(घ) राजा को लगा कि रात में मरे हुए घोड़े में से इन्द्र निकला और उसने वपुष्टमा के साथ छल किया। राजा के मन में उस समय अहंकार था जिससे उसका विवेक भाग गया था। (3)

चौ0 : भ्रमवश राजा विचलित होवहिं। ऋषि अधर्यु से कारण पूँछ हिं।।
'अश्व मरा' पर इन्द्र छली है। वपुष्टमा भोगी सुबली है।।

चौ0 : (1) जैमिनी जी कहते हैं कि भ्रमवश राजा विचलित हो गये। उन्होंने अधर्यु ऋषि से इसका कारण पूँछा। ऋषि ने बतलाया कि अश्व मरा था किंतु इन्द्र छलिया है। उस बलशाली इन्द्र ने वपुष्टमा का भोग किया है।

इन्द्र श्राप जनमेजय दीन्हा। ऋत्विज-पुर-निष्कासन कीन्हा।।
कुलटा कह पत्नी को मारा। ठोकर मारी अरु दुत्कारा।।

(2) तब, जनमेजय ने इन्द्र को श्राप देकर ऋत्विजों को अपने राज्य से बाहर निकाल दिया। राजा ने पत्नी को कुलटा कहकर मारा और दुत्कार कर उसे भी राज्य से निष्कासित कर दिया।

व्यास निकट आयी वपुष्टमा। रो-रो पीड़ा कह वपुष्टमा।।
व्यास कहा जैमिनि द्रुत जाओ। नृप जनमेजय को समझाओ।।

(3) वपुष्टमा अपने दोनों पुत्रों के साथ व्यास जी के पास पहुँची और रो-रोकर अपनी सारी पीड़ा उनसे कह दी। व्यास जी ने जैमिनी से कहा, हे पुत्र! शीघ्र जाओ और जनमेजय को समझाओ।

क्रोधी अपने की नहिं मानै। अनजानहि हितकारी जानै।।
जनमेजय अशांत चित रहई। मन में चिंता शोकऽति लहई।।
क्योंकी घटना असहनीय थी। माननीय नामाननीय थी।

(4) क्रोधी व्यक्ति अपने की बात नहीं मानता। वह अनजान व्यक्ति को ही अपना हितकारी समझता है। जनमेजय का चित्त अशांत था। उनके मन में चिंता और शोक की अधिकता थी। क्योंकि यह घटना असहनीय थी। जो पहले माननीय थी वो अब अमाननीय हो गई थी।

दो0 : चिंतित क्रुद्ध अमर्षयुत, नृप जनमेजय से।।
व्यास शिष्य वेदज्ञ ऋषि, बोले धीरज से।। (4)

दो0 : चिंतित, क्रुद्ध तथा अमर्ष से भरे हुए राजा जनमेजय से वेदों के ज्ञाता वेदव्यास जी के शिष्य धीरज से इस प्रकार बोले -(4)

चौ0: होइहि सोइ जो राम रचि राखा।जो जस करइ सो तस फल चाखा।।
आपत काल धैर्य ना तजई। करहु कर्म सँग प्रभु नित भजई।।

चौ0 : (1) श्री राम ने जो रच रखा है वही होकर रहता है। जो जैसा करता है उसे उसका वैसा ही फल चखना पड़ता है। आपत्तिकाल में धैर्य कभी मत छोड़ो। उस समय प्राणी को चाहिये कि वह प्रभु का भजन करे और अपने कर्त्तव्य-कर्म का निर्वहन करे।

उदधि पार हित नाव जरूरी। श्रेष्ठ पुरुष आचरण जरूरी।।
अग्रसेन-पुरुषारथ-गाथा। जिसे प्रेम से अब मैं गाता।।

(2) जिस प्रकार समुद्र पार जाने के लिये नाव जरूरी है वैसे ही श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण भी जरूरी है। सदाचारी अग्रसेन जी की पुरुषार्थपूर्ण कथा को प्रेमसहित अब मैं आपको सुनाता हूँ।

सुनो ध्यान से पुण्य कथा यह। कष्ट कटेगा श्रेष्ठ भाव सह।।
यद्यपि कथा बहुत है भारी। संक्षेपहिं मैं कहूँ पियारी।।

(3) हे जनमेजय! इस पुण्य कथा को ध्यान से सुनो। इससे तुम्हारा कष्ट कटेगा और तुम्हारे अन्दर श्रेष्ठ भाव उत्पन्न होंगे। यद्यपि यह कथा बहुत बड़ी है फिर भी इस प्यारी कथा को मैं तुम्हारे लिये संक्षेप में सुनाता हूँ।

दिव्यादर्श निकाम कर्म अरु। जग हितकारी जैसे तरुवरु।।
भू पर हुए हैं जितने राजा। उनमें अग्रसेन महाराजा।।

(4) अग्रसेन जी के दिव्य आदर्श और उनका निष्काम कर्म वृक्षों की तरह जगत के लिये हितकारी हैं। भूमि पर जितने भी राजा हुये हैं उनमें महाराजा केवल एक ही हुये हैं - श्री अग्रसेन जी।

दो0 : जनमेजय जैमिनि कहा, कहिये पूर्ण वृतांत।
अग्र भागवत प्रेम से, सुनन चहूँ आद्यांत।। (5)

दो0 : नृप जनमेजय ने जैमिनी ऋषि से निवेदन सहित कहा कि हे प्रभो! आप मुझे पूरा वृत्तांत बताइये। अग्रसेन जी का यह उपाख्यान मैं आदि से अंत तक पूरा सुनना चाहता हूँ। (5)

चौ0 : नैमीषारँड जुड़ा समाजू। कैसे हो सिध पर हित काजू?।।
सूत-पुत्र से बोले शौनिक। श्रवण कराओ कथा श्रेष्ठ इक।।

(1) एक बार नैमीषारण्ड में संत-समाज एकत्रित होकर इस बात पर विचार करने लगा कि पर हित का कार्य कैसे सिद्ध हो ? तब शौनिकादि ऋषियों ने सूतजी के पुत्र से एक श्रेष्ठ कथा श्रवण कराने को कहा।

व्यास-गादि को किये प्रणामा। उस पर बैठे सूतज नामा।।
उधर सूत ने कही भागवत। इधर पुत्र ने अग्र भागवत।।

(2) व्यास गद्दी को प्रणाम करके उस पर सूत जी के पुत्र बैठे। उधर सूत जी ने भागवत कही थी। यहाँ उनके पुत्र भागवत कथा कह रहे हैं।

उधर परीक्षित नामी श्रोता। इधर पुत्र जनमेजय होता।।
उग्रश्रवा बोले सुन राजन। कथा पुनीत अती मनभावन।।

(3) उधर परीक्षित जैसे नामी श्रोता थे तो यहाँ उनके पुत्र जनमेजय श्रोता बने हैं। उग्रश्रवा बोले, हे राजन्! अब तुम परम पवित्र और मन को भाने वाली सुन्दर कथा को सुनिये।

भू पर हुये सैंकड़ों राजा। पर हित युक्त एक महाराजा।।
हुए थे जो अग्रोहा राजा। सोई अग्रसेन महाराजा।।

(4) पृथ्वी पर वैसे तो सैकड़ों राजा हुए हैं परन्तु पर हित की भावना रखने वाले केवल महाराजा ही हुए हैं। जो अग्रोहा के राजा थे वो ही महाराजा अग्रसेन कहाये गये हैं।

दो0 : सुनो ध्यान से यह कथा, पावन मनभावन।
"विष्णुदास" रुचिकर अती, जस पतझड़ सावन।। (6)

दो0 : इस मनभावनी कथा को आप ध्यानपूर्वक सुनिये। विष्णुदास जी कहते हैं कि यह कथा उसी प्रकार रुचिकर है जिस प्रकार पतझड़ के बाद सावन का आना। (6)

::::::::

(दोहे के अन्त में गाइये)
अग्रवर अग्रसेन पद गहि शरणम्
लक्ष्मी हरि ओम जय विश्वेश्वर
जय करुणेश्वर जय समतेश्वर

अथ अग्रसेन भागवत कथा

卐 अध्याय एक (अग्र जन्म) 卐

दो0 : नमस्कार विष्णू हरी, महालक्ष्मि शंकर।
व्यास सरस्वति जैमिनी, कहूँ कथा हितकर।।

दो0 : विष्णुदास जी कहते हैं कि मैं भगवान श्री हरि विष्णु, भगवान शंकर, महर्षि वेदव्यास, माता सरस्वती तथा जैमिनी ऋषि को नमस्कार करके यह हितकारी कथा आप सबसे कहता हूँ।

चौ0 : पूर्व पाप का सुमिरन करके। जनमेजय अशांत उर धरके।।
व्यास-शिष्य जैमिनि बोले तब। मन में ग्लानी ना रखिये अब।।

चौ0 : (1) कवि कहता है कि अपने पूर्व पाप का स्मरण करके जनमेजय का अशांत उर जोर-2 से धड़कने लगता है। तब व्यास जी के पट शिष्य जैमिनी ऋषि कहते हैं - अब आप अपने मन में कैसी भी ग्लानी मत रखिये।

वैर क्रोध से शांत न होता। यदि होता कर्ता क्यों रोता ?।।
मानहु छिद्र यज्ञ में पाया। सुरपति इन्द्र ने विघ्न कराया।।

(2) वैर कभी क्रोध से शांत नहीं होता। यदि होता तो कर्ता क्यों रोता ? तुम्हे ऐसा लगा कि यज्ञ में छिद्र (विघ्न) हुआ जिसे सुरपति इन्द्र ने किया।

अति अमर्ष आया तव हीया। इन्द्रहि श्रापित भ्रष्टऽति कीया।।
वपुष्टमा त्यागी नृप क्रोधहिं। ऋत्विज द्विज अपमानित कीनहिं।।

(3) तुम्हारे मन में अत्यन्त अमर्ष उत्पन्न हुआ और तुमने इन्द्र को श्राप देकर भ्रष्ट कर दिया। हे राजन्! तुमने क्रोध में आकर पत्नी वपुष्टमा को त्याग दिया। तुमने ऋत्विजों एवं द्विजों को भी अपने पुर से निष्काषित कर दिया।

क्या ऐसा कर दुख है घटता? नहिं राजन! सुख-अम्बर हटता।।
सत्य नहीं यह केवल भ्रम था। हे जनमेजय! ये ही सच था।।

(4) क्या ऐसा करने से दुख कम होता है ? नहीं राजन्! इससे तो सुख का अम्बर भी हट जाता है। हे राजन्! यह सत्य नहीं था बल्कि आपका भ्रम था। ये ही सच था।

दो० : अर्जुन तव पित-पित पिता, इन्द्र हैं षड़बाबा।
वधु प्रपौत्र सँग कर्म घृण, मन में नहिं आबा।। (7)

दो० : हे जनमेजय! अर्जुन तुम्हारे पिता के पिता के पिता हैं। इन्द्र आपके षड़बाबा हैं। अपने प्रपौत्र की वधू के संग षड़बाबा के द्वारा ऐसा घृणित कर्म किया जाना ! छि छि छि - यह बात मन में नही आती। (7)

चौ० : यामै दोष न कछू तुम्हारा। भाग्य से राजन हर कोइ हारा।।
धीरज को ना कभी बिसारो। दुख में सुख याते अति प्यारो।।

चौ० : (1) जैमिनी जी कहते हैं कि हे जनमेजय! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। भाग्य से हर कोई हारा है। धीरज को कभी मत भूलो। दुख में सुख की प्यारी अनुभूति धैर्य से ही तो होती है।

धर्म महान क्रोध का त्यागन। स्वर्ग मोक्ष सुखदायक पावन।।
यासों शोक न करिये राजन। सुनहु कथा पुनीत मनभावन।।

(2) क्रोध का त्याग ही महान धर्म है। यही स्वर्ग और सुख एवं पवित्र मोक्ष का दायक भी है। इसलिये, हे राजन्! अब आप शोक मत करिये। आप दिव्य और सुख के साजन (वाली) इस कथा को सुनिये।

भूमी पर भए अगनित राजा। उनमें श्रेष्ठ अग्र महाराजा।।
धर्म-कर्म पुण्यति था उनका। परहित भाव युक्त उर जिनका।।

(3) इस भूमि पर वैसे तो अनगिनत राजा हुए हैं पर उनमें श्रेष्ठ महाराज अग्रसेन ही हुए हैं। उनका धर्म, कर्म अति पुण्य था। उनका हृदय परहित की भावना से सदा युक्त रहता था।

इक्ष्वाकू कुल ऐसा कुल है। परतापी राजे जहँ कुल हैं।।
नृप मान्धाता सगर दिलीपऽरु। भागीरथ कूकुत्स्य मरुत अरु।।
महाराज रघु राम प्रभू जी। जिसमें जनमे अग्र प्रभू जी।।

(4) इक्ष्वाकु कुल एक ऐसा ही कुल है। इस कुल के सभी राजा प्रतापवान कहलाये हैं। महाराजा मान्धाता, सगर, दिलीप, भागीरथ, कुकुत्स्य, मरुत, रघु और भगवान रामचन्द्र जी इसी कुल में जन्मे थे। अग्र प्रभु का भी जन्म इसी महान कुल में हुआ था।

दो0 : अग्निवर्ण इस वंश के, सुत थे जिनके पाँच।
त्रय ने कीन्ही वंशवृधि, झूँठ न इसमें साँच।। (8)

दो0 : इसी वंश में अग्निवर्ण उत्पन्न हुए थे जिनके पाँच पुत्र कहाये गये। इनमें से तीन पुत्रों ने ही वंश की वृद्धि की थी। इस सच्चाई में तनिक भी झूँठ नहीं है। (8)

चौ0 : विश्वसाह के भए प्रसेनजित। वृहत्सेन के पित प्रसेनजित।
वज्रनाभ कुल मरु महाराजा। मरु के पुत्र वृहद्बल राजा।।

(1) हे जनमेजय! विश्वसाह के यहाँ प्रसेनजीत तथा प्रसेनजीत के यहाँ वृहत्सेन उत्पन्न हुए। इसी में वज्रनाभ के कुल में मरु महाराजा उत्पन्न हुए जिनके पुत्र वृहद्बल कहलाये।

वृहत्सेन कुल वल्लभ जनमे। निवसत जो जन-जन के उर में।।
पुर परताप रियासत इनकी। उन्निस गाँव की शोभा जिनकी।।

(2) वृहत्सेन के कुल में वल्लभसेन का जन्म हुआ था। जो जन-जन के हृदय में रहते थे। उन्नीस गाँवों की शोभा से युक्त प्रतापपुरी इन्हीं वल्लभसेन जी की रियासत थी।

नृप धनपाल प्रथम वैश्यधिपति। जिनके प्यारे अग्रोहापति।।
भारत भू में तीन नदी थी। पुरि प्रताप जिनसे आवृत थी।।

(3) धनपाल नाम के राजा प्रथम वैश्य राजा थे। अग्रोहापति महाराज इन्हीं के प्यारे थे। भारत में तीन ऐसी नदियाँ थीं जिनसे प्रतापपुरी घिरी हुयी थी।

सरस्वति इषदवती घग्घर नदि। सूसम्पन्न समृधियुत पुर गदि।।
ऊँचे टीलों पर स्थित थी। त्रय दिशनन नदि त्रयन घिरी थी।।

(4) सरस्वती, इषद्वती और घग्धर ये तीन नदियाँ थीं। इनसे यह पुरी अति सम्पन्न और समृद्धिशाली थी। ऊँचे टीलों पर स्थित यह पुरी तीन दिशाओं से इन तीनों नदियों से घिरी हुयी थी।

दो० : वल्लभ रानी भगवती, थीं विदर्भ कन्या।
अग्रवंश संस्थापकहि, था जिसने जन्या।। (9)

दो० : वल्लभसेन जी की पत्नी का नाम भगवती था जो एक विदर्भ-कन्या थीं। अग्रवंश-के संस्थापक को इन्हीं ने जन्म दिया था। (9)

चौ० : कुंदसेन वल्लभ लघु भ्राता। जिसको श्रेष्ठ न कतइ सुहाता।।
केशी जिसका सेनापति था। कुन्दसेन सुत अति दुर्मति था।।

चौ० : (1) जैमिनी जी कहते हैं - कुन्दसेन वल्लभसेन जी के छोटे भाई थे। जिन्हें श्रेष्ठ बिल्कुल नहीं सुहाता था। इनके सेनापति का नाम केशी था। कुन्दसेन का एक बेटा था जो कुटिल बुद्धि वाला था।

वल्लभ घर ना भइ सन्ताना। कहा सबन पुनि दुलहिन लाना।।
यह मत वल्लभ मन नहिं भाया। पत्नी सँग शिव ध्यान लगाया।।

(2) काफी समय तक जब वल्लभ जी के घर सन्तान उत्पन्न नहीं हुई तो सबने उनसे पुनर्विवाह के लिए कहा। लोगों का यह विचार वल्लभ जी को नहीं भाया। वल्लभ जी ने पत्नी भगवती के साथ भगवान शिव का ध्यान लगाया।

चौ० : हरद्वार हर की नगरी है। गंगा भोले की गगरी है।।
जितना चाहो उतना ले लो। मस्ती सँग इत उत जित खेलो।।

(3) जैमिनी ऋषि कहते हैं—हे जनमेजय ! हरद्वार भगवान श्री हर की नगरी है जिसे पतितपावनी गंगा मैया और भोलेशंकर की कृपा से युक्त गगरी भी कहा जाता है। इस गगरी में से जिसकी जितनी इच्छा हो लेते जाओ और मस्ती के साथ इधर उधर जहाँ भी दिल चाहे खेलते रहो।

चौ0 : आसन धारा शिवरात्री को। प्रभू कृपा हित कालरात्रि को।।
द्वादश मासे कटु तप कीया। पारबती पति मुदिततिं हीया।।
प्रकट भए हर जगजननी सँग। सिर से धारा बही अवनि गँग।।

(4) श्री गुरुदेव कहते हैं—हे राजन् ! यह महान शिवरात्रि का पर्व था जब प्रभु की कृपा-प्राप्ति के लिये राजा रानी दोनों ने अपने-अपने आसन धारण किये। शिवरात्रि को कालरात्रि भी कहा जाता है। दोनों के बारह वर्षों के निरन्तर तप-प्रभाव से देवी पार्वती के पति का हृदय अत्यन्त मुदित हो गया। जिस कारण भगवान श्रीहर जगजननी माता भगवती के साथ उनके समक्ष प्रगट हो गये। प्रभु के सिर से गंगा की अमृत धारा पृथ्वी की ओर बहने लगी।

चौ0 : तब शिव भोले शुभ वर दीन्हा। पुत्र एक नहिं द्वय नृप लीन्हा।।
पति पत्नी दोनों प्रमुदित अति। पुत्र बिना जग होय न शुभ गति।।

(5) तब, कल्याण के प्रतीक भगवान भोलेनाथ ने महाराजा वल्लभसेन एवं महारानी भगवती को शुभ वर प्रदान कर दिया। परिणामस्वरूप एक पुत्र की इच्छा रखने वाले राजा-रानी को दो पुत्र प्राप्त हो गए। आज पति-पत्नी अत्यन्त प्रसन्न हैं क्योंकि संसार की यह रीति है कि जिसके यहाँ पुत्र नहीं होता उसकी शुभ गति नहीं होती अर्थात् उसे शुभ कार्यों से वंचित रखा जाता है।

चौ0 : प्रभु को पुनि-पुनि करत प्रनामा। अटपट शब्द कहत सुखधामा।।
जो शिव की पूजा करते हैं। सुख से झोली नित भरते हैं।।

(6) कवि कहता है कि—वे दोनों पति-पत्नी प्रभु को बारम्बार प्रणाम करते हैं और सुख के धाम श्री हर से इस प्रकार अटपटी वाणी में प्रार्थना करते हैं—हे हर ! जो भक्त शिव अर्थात् कल्याण-भाव की पूजा करते हैं वे नित प्रति अपनी झोलियों को सुख से भरा करते हैं।

चौ0 : हे प्रभु मैं तव को ध्याऊँगा। गीत आपके नित गाऊँगा।।
मेरे कुल के तुम रखवारे। जिसने बिगड़े काज सँवारे।।

(7) जैमिनी ऋषि कहते हैं—हे जनमेजय ! महाराजा वल्लभसेन विनीतपूर्ण शब्दों में भगवान श्रीहर के समक्ष अपने भावोद्‌गार प्रकट करते हुए बोले—हे हर ! मैं आपको ध्याऊँगा और सदा आपकी कृपा के गीत गाऊँगा। हे प्रभो! आप मेरे कुल की रक्षा करने वाले हैं। आपने मेरे बिगड़े काज को सँवार दिया है अर्थात् मेरे समाप्त होने वाले कुल को बचा लिया है।

दो0 : हे प्रभु मैं लेता शपथ, शिव शिव गाऊँगा।
पुर परिजन सँग धाम तव, सदा ही आऊँगा।।10।।

अर्थ—महाराजा वल्लभसेन कहते हैं—हे प्रभो ! मैं शपथ लेता हूँ कि आज से मैं सदा पवित्र शिव नाम का ही उच्चारण करूँगा और अपने परिवारीजन तथा नगरवासियों के साथ आपके पावन धाम की यात्रा करूँगा।

चौ0 : आश्विन मासे शुक्ल पक्ष में। प्रथमा रवीवार दुपहर में।
प्रभु बोले नृप घर को जाओ। सुखद समय ना व्यर्थ गँवाओ।।

(1) आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में प्रथमा तिथि को रविवार के दिन दोपहर में भगवान श्री हर बोले—हे राजन ! अब तुम दोनों अपने राज्य को लौट जाओ। हे सखे! इस सुखद पल को व्यर्थ गँवाना उचित नहीं है।

शुक्रताल पाण्डवपुर आए। हरित प्रदेश फेर पधराए।।
हर भू गढ़ वल्लभ बनवाया। द्वय उर अति आनँद है छाया।।

(2) हरद्वार से शुक्रताल, हस्तिनापुर होते हुए राजा रानी हरित प्रदेश आ पहुँचे। जैमिनी ऋषि कहते हैं—हे जनमेजय ! हरियाणा जिसे हर की भूमि भी कहा जाता है इस पावन भूमि पर महाराजा वल्लभसेनजी ने

अपने नाम से एक गढ़ बनवाया। जिसका नाम वल्लभगढ़ रखा गया। ऐसा करके पति-पत्नी दोनों के हृदय में अतयन्त आनन्द छा गया।

इन्द्रप्रस्थ आए दोनों जन। यमुन नहाय किए पावन तन।।
हर प्रदेश में बढ़ते आए। राजा रानी पुर पधराए।।

(3) फिर वे दोनों इन्द्रप्रस्थ आ पहुँचे। यहाँ आकर उन्होंने जमुना मैया में स्नान करके अपने तन को पवित्र किया। श्री हर के प्रदेश में बढ़ते-बढ़ते अन्त में राजा और रानी अपने नगर प्रतापनगर में पधराए।

समय महेन्द्रहि शुभ मुहुर्त में। जन्मे धर्मराज अग्रहि में।।
हस्त नक्षत्रहिं कन्या लग्नहिं। सूर्य-चन्द्र स्थित थे जिहहिं।।

(4) बारह बजे महेन्द्रकाल के शुभ मुहूर्त में धर्मराज ने अग्र के रूप में जन्म लिया। उस समय हस्त नक्षत्र था। कन्या लग्न थी जिसमें सूर्य-चन्द्र स्थित थे।

दो0 : गुरु थे पुष्य नक्षत्र में, मंगल अनुराधा।
भृगुसुत शुक्र थे रोहिणी, बुध रेवति साधा।।क।।

दो0 : (क) गुरु पुष्य नक्षत्र में तथा मंगल अनुराधा में था। भृगुसुत शुक्र रोहिणी में थे जबकि बुध ने रेवती को साध रखा था।

अग्राऽऽये जब गर्भ बहि, शनि था स्वाती पर।
मानहु राहू सर्प छवि, जकड़ा हो मृगशिर।।ख।।(11)

(ख) जिस समय अग्रसेन जी गर्भ से बाहर आये उस समय शनि स्वाती नक्षत्र में स्थित था। उस समय ऐसा लगता मानो राहू की सर्पाकार छवि ने मृगृशिरा को जकड़ लिया हो। (11)

चौ0 : काल महेन्द्रहिं जो जन जनमे। भाग्य प्रबल सुख पावत सबमें।
शास्त्रनिपुण शास्त्रज वो हुवता।नीतिनिपुण कुटनीतिज हुवता।।

चौ0 : (1) जैमिनी जी कहते हैं कि जिस जीव का जन्म महेन्द्रकाल में होता है उसका भाग्य बड़ा प्रबल होता है। वह सुख ही सुख प्राप्त करने

वाला होता है। वह शस्त्रों में निपुण, शास्त्रों का ज्ञाता, नीति कुशल तथा कूटनीतिज्ञ होता है।

धनऽरु धान्यमय सुखी प्रजा हो। दैवी शक्ती से भी युत हो।।
शिव महालक्ष्मी किरपा कीन्ही। गर्गाचार्यहु निजता दीन्ही।।

(2) उसकी प्रजा धन-धान्य से सम्पन्न होती है। वह दैवी शक्ति से युक्त होता है। उस पर भगवान शिव और माता महालक्ष्मी की नित्य कृपा होती है। उसकी निकटता गर्गाचार्य जी जैसे महान गुरू से होती है।

द्वापर युग अन्तिम बेला थी। कलियुग - आरँभ भयी घड़ी थी।।
'अग्रवंश वैश्यानुकीर्तनम्'। सच लागत यह सँग 'उरु चरितम्'।।

(3) उस समय द्वापर युग की अन्तिम बेला थी अर्थात् संक्रमण काल था। कलियुग का आरम्भ हो रहा था। अग्रवालों के अन्य ग्रंथ - 'अग्रवंश वैश्यानुकीर्तनम्' तथा 'उरुचरितम्' से भी ऐसा ही सत्य प्रकट होता है।

अब से पंचिक त्रय दो पहले। भये अवतरित वल्लभ गहले।।
परिक्षित अग्र से पन्द्रह कम थे। जबकी शौर्यसेन चौदह थे।।

(4) अब से पाँच हजार एक सौ बत्तीस वर्ष पूर्व वल्लभसेन जी के घर में अग्रसेन जी का जन्म हुआ था। राजा परीक्षित अग्रसेन जी से पन्द्रह वर्ष और शौर्यसेन चौदह वर्ष छोटे थे।

दो० : 'महालक्ष्मी व्रत कथा','अग्रवंश इतिहास'।
"विष्णुदास" सबने कहा, यही तिथी है खास।। (12)

दो० : कुछ अन्य अग्र-ग्रंथों -'महालक्ष्मीव्रतकथा' और 'अग्रवंश इतिहास' के अनुसार भी यही तिथि खास (सत्य) मानी गयी है। ऐसा विष्णुदास जी का कथन है। (12)

चौ० : दर्शन करते दिव् बालक के। सुर नर मुनि श्रेष्ठी बढ़-बढ़ के।।
बंदी चारण स्तुति गावैं। मात-पिता पुलकैं हरषावैं।।

चौ० : (1) जैमिनी जी कहते हैं कि देवता, मनुष्य, मुनि और श्रेष्ठिगण

बढ़-बढ़कर इस दिव्य बालक के दर्शन करते हैं। बन्दी और चारण स्तुति गाते हैं तथा माता-पिता पुलकित होते हैं और हर्षित होते हैं।

ऋषि देखा जब धर्मवतारहि। बोले यशशाली अति हू यहि।।
कृपापात्र लछमी का होगा। दया क्षमा कीरत युत होगा।।

(2) ऋषियों ने जब धर्म के इस अवतारी को देखा तो वे बोले कि यह बालक अत्यन्त यशशाली होगा। यह महालक्ष्मी की कृपा का पात्र होगा। यह करुणा, क्षमा और कीर्ति से युक्त होगा।

धर्मज कृतज दयालू होगा। सत्यवादि मानी हू होगा।।
श्रेष्ठ माननिन्ह मानहु देगा। कुछ ना लेगा देगा देगा।।

(3) यह धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयालु, सत्यवादी और मानी होगा। यह श्रेष्ठ माननीयों का सम्मान करने वाला होगा। यह कभी किसी से कुछ भी नहीं लेगा। यह सदा सबको देगा ही देगा।

गोधन रत्न ब्राह्मणन्ह दीन्हे। मुनिन महात्मन भर-भर लीन्हे।।
मागध सूत बंदिजन दीन्हे। वल्लभ धनपति सबहिन कीन्हे।।

(4) तब पिता वल्लभसेन जी ने ब्राह्मणों को गोधन और रत्न अर्पित किये। मुनियों एवं महात्माओं ने भी झोली भर-भर के इस भेंट को स्वीकार किया। मागध, सूत तथा बन्दीजनों को भी खूब धन दिया गया। वल्लभेसन जी ने आज सबको धनवान बना दिया।

दो0 : जितने थे नर नारि तहँ, सब भए मालामाल।
रत्न वस्त्र पय स्वर्ण से, "विष्णूदास" निहाल।। (13)

दो0 : उस समय वहाँ पर जितने भी नर-नारी थे, वे सब मालामाल हो गये। रत्न, वस्त्र, पय और स्वर्ण से आज सब निहाल हो गये - ऐसा विष्णुदास जी का कहना है। (13)

चौ0 : अग्र जनम होया सुखदायी। वल्लभ सँग रानी हरषायी।।
वल्लभ बोले महारानी से। नगर बसाऊँ अग्र नाम से।।

चौ0 : (1) जैमिनी कहते हैं कि अग्रसेन जी का जन्म सबके लिये सुखदायी हुआ। वल्लभसेन जी के साथ महारानी भगवती बहुत प्रसन्न हुयीं। एक दिन वल्लभ जी ने पत्नी भगवती से कहा कि मैं 'अग्र' - नाम से एक नवपुरी का निर्माण करना चाहता हूँ।

यमुना तट पर नगर बसाया। अग्रपुरहि 'वन अग्र' कहाया।।
फिर यह ही आगरा कहाया। अग्रवाल मन जो अति भाया।।

(2) वल्लभसेन जी ने यमुना नदी के तट पर अग्रपुरी अथवा अग्रवन के नाम से एक नया नगर बसाया। बाद में यही अग्रवन आगरा कहलाया। यह नगर अग्रवालों के मन को बहुत भाया।

पुत्रोत्सवहि मनाया अग्रहि। धूमधाम सँग हय गज बाजहि।।
अतिथि वेदविद् ऋषि स्नातक। ब्राह्मण ज्ञानी सिध अरु साधक।।
सबका मान यथोचित कीन्हा। तत्त्वज्ञानि सुत 'आशिष' लीन्हा।।
ऐसा कोइ नहीं था उस क्षण। जिसने वर ना दिये विलक्षण।।

(3-4) अग्रसेन जी का पुत्रोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। अश्व, गज और गाजे-बाजे के साथ अतिथि, वेदविद्, ऋषि, स्नातक, ब्राह्मण, ज्ञानी, सिद्ध और साधक इन सभी को यथोचित मान-सम्मान दिया गया। बदले में 'यह पुत्र तत्वज्ञानी होगा' ऐसा शुभ आशीष प्राप्त किया। उस क्षण वहाँ ऐसा कोई भी नहीं था जिसने एक से एक विलक्षण वर अग्रसेन जी को ना दिये हों।

दो0 : सत्य शील बल तेज में, होगा बालक अग्र।
पति-पत्नी दोनों भए, प्रमुदित निरखत अग्र।। (14)

दो0 : विद्वानों ने एकमत होकर कहा - सत्य, शील, बल और तेज में यह बालक सबसे आगे होगा। यह भविष्यवाणी सुनकर अग्रसेन जी की ओर देखते हुए पति-पत्नी दोनों अत्यन्त प्रसन्न हो गये। (14)

चौ0 : वल्लभ बोले प्रेम-विनय से। सभी सुहृद सम्बन्धीजन से।।
ज्येष्ठिन पाँव छुए राजा ने। सम वय से आशिष राजा ने।।

लघु से कृपा बनाये रहिये। भाँति-भाँति के वर नृप लहिये।।
जन्म से ग्यारह दिन जब बीते। खुशियाँ प्रगटीं अति जी जी ते।।

चौ0 : (1-2) हे जनमेजय! तब वल्लभसेन जी ने प्रेम विनयपूर्वक अपनी सभी सुहृदजनों से बातचीत की। राजा वल्लभसेन जी ने ज्येष्ठियों के पाँव छुये। अपने बराबर की आयु वालों से वे गले मिले। छोटी उम्र वालों से उन्होंने अपनी कृपा बनाये रखने के लिए कहा। बदले में उन्होंने भाँति-भाँति के वर (अशीर्वाद) उनसे प्राप्त किये। जन्म से ग्यारह दिन जब व्यतीत हो गये तब हर हृदय से खुशियाँ प्रकट हो आर्यी।

अग्रसेन शिशु नाम रखाया। भिन्न लग्न से अति मन भाया।।
हर कारज जो आगे होवै। सोई अग्र बीज है बोबै।।

(3) शिशु का नाम 'अग्रसेन' रखा गया। मन को भाने वाला यह नाम लग्न से भिन्न था। जो व्यक्ति हर कार्य में आगे होकर आगे रहने के बीज बोये - वो ही अग्र कहलाता है।

बालक अग्र दिनों दिन बढ़ता। शुक्ल प्रतिपदा शशि जस चढ़ता।।
मात-पिता पावत सुख नितही। बाल सुलभ क्रीड़ा हो जबही।।

(4) बालक अग्र उसी प्रकार दिनोंदिन आगे बढ़ने लगा जिस प्रकार शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से चन्द्रमा चढ़ता है। जब बालक शिशुलीला करता है तो उसे देखकर माता-पिता अत्यन्त सुख की अनुभूति करते हैं।

दो0 : कीर्ति-कथा इक्ष्वाकु की, अरु अग्रहि जन्महि।
श्रद्धा सँग जो नर सुनै, पावै पद परमहि।। (15)

दो0 : इक्ष्वाकु वंश और अग्रसेन जी के जन्म की इस कीर्ति-कथा को जो प्राणी श्रद्धासहित सुनते हैं वो परमपद को प्राप्त करते हैं। (15)

अध्याय एक 'अग्र जन्म' पूर्ण हुआ।

:::::

卐 अध्याय दो : (शिक्षा एवं दण्ड) 卐

चौ० : बालक अग्र घुटन तें चलई। उठई गिरई गिरई उठई।।
मात-पिता मन प्रमुदित होवैं। निरख-निरख छवि सुध-बुध खोवैं।।

(1) जैमिनी ऋषि नृप जनमेजय से कहते हैं कि बालक अग्रसेन जी घुटनों के बल चलते हैं। वे कभी उठते हैं तो कभी गिरतें हैं। वे गिरते हैं और फिर उठते हैं। यह छवि निरखकर माता-पिता का मन प्रमुदित होता है। दोनों अपनी सुध-बुध खो बैठते हैं।

बाल अग्र अब भये किशोरा। 'आश्रम भेजहु' मत सब ओरा।।
संदीपनि उज्जयिनी रहते। श्रीकृष्ण गुरु जिनको कहते।।

(2) बालक अग्रसेन किशोरावस्था में प्रवेश करते हैं। अब सबका एक ही मत था कि अग्र को आश्रम भेजा जाय। सांदीपनी उज्जैनी में रहते थे जिन्हें श्रीकृष्ण अपना गुरु कहते थे।

महाकाल की है यह नगरी। क्षिप्रा तट बसती शिव पगरी।।
इस नगरी के पास 'अगर' है। तांड्य महर्षी सिध रह जहँ है।।

(3) शिव के रंग में रंगी हुयी महाकाल की यह नगरी क्षिप्रा नदी के तट पर स्थित थी। इसी के पास 'अगर' नामक एक छोटा सा नगर था। जहाँ ताण्ड्य ऋषि जैसे साधक निवास करते थे।

ताण्ड्य रिषी हैं ज्ञानी-ध्यानी। पर-विद्या में कोइ न सानी।।
अग्रसेन के गुरू बनेंगे। जग में दोनों नाम करेंगे।।

(4) ताण्ड्य ऋषि बहुत बड़े ज्ञानी-ध्यानी थे। पराविद्या में इनका कोई सानी नहीं था। यही महर्षि ताण्ड्य अग्रसेन जी के गुरु बनेंगे और तब दोनों जग में नाम करेंगे।

दो० : उचित समय पर अग्र को, भेजा ताण्ड्याश्रम।
गुरु-सिख दोनों जब मिले, होन लगी बम बम।। (16)

दो० : उचित समय पर अग्रसेन जी को ताण्ड्य ऋषि के आश्रम में भेजा गया। जब गुरु और शिष्य दोनों का मिलन हुआ तो बम-बम का जैकारा गूँजने लगा। (16)

चौ0 : प्रातकाल उठ करत प्रनामा। गुरु-सेवा आदेशित कामा।।
मालववासी गुरु आश्रम में। करत पढ़ाई अन आश्रम में।।

चौ0 : (1) उधर आश्रम में प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में उठकर, गुरु को प्रणाम कर गुरुजी द्वारा निर्देशित कार्यों को अग्रसेन जी पूर्ण करते थे। गुरुजी के उस आश्रम में मालवा के भी शिक्षार्थी थे। वहाँ अन्य प्रदेशों के भी शिक्षार्थी थे।

राजपुत्र अरु ऋषीपुत्र थे। ब्रह्मचारि-सुत ज्ञानिच्छुक थे।।
तप से मुनिसुत ज्ञानहि लभते। अग्र गुरू-मुख से हि ग्रहणते।।

(2) शिक्षार्थियों में राजाओं के पुत्र, ऋषियों के पुत्र, ज्ञानियों के पुत्र तथा ज्ञान की पिपासा वाले अन्य शिक्षार्थी थे। मुनियों के पुत्र तप द्वारा ज्ञानार्जन करते थे जबकि अग्रसेन गुरुजी के मुख (वाणी) से ही ज्ञान प्राप्त करने को अच्छा समझते थे।

ज्ञान निरुक्त ज्युतिष व्याकरणा। कल्पऽरु शिक्षा छंद प्रवीणा।।
अल्पकाल सब विद्या पाई। वेद विशारद अग्र कहाई।।

(3) निरुक्त ज्ञान, ज्योतिष, व्याकरण, कल्प-शिक्षा और छंदों में अग्रसेन जी ने शीघ्र ही प्रवीणता प्राप्त कर ली। अल्पकाल में ही अग्र ने सारी विद्यायें सीख लीं और उन्हें वेदविशारद कहा जाने लगा।

वेद के षड् अंगों को सीखा। गुरू कृपा से अमिय सरीखा।।
विधिवत् विद्याँ विशुद्ध पाई। सिख ने पूरण ध्यान धराई।।
विनय-भाव से गुरु-सेवा से। सर्व ज्ञान पाया देवा से।।

(4) अग्रसेन जी ने गुरु-कृपा से अमृत सरीखे वेद के छहों अंगों की भी शिक्षा ग्रहण की। शिष्य अग्रसेन जी ने पूरे ध्यान से विधिवत विशुद्ध शिक्षाओं को ग्रहण किया। यह सारा ज्ञान विनय-भाव से, गुरु की सेवा के व्रत से तथा सर्व अर्पण एवं सेवा के भाव से अग्रसेन जी ने पाया था।

दो0: वीरऽरु श्रुतिधर अग्र ने, सीखे चारों वेद।
शस्त्र समूह रहस्य सँग, धनुर्वेद सुखवेद।। क।।

दो० : (क) वीर और श्रुतिधर अग्रसेन जी ने चारों वेद, रहस्यसंग शस्त्र समूहों का ज्ञान तथा सुखवेद रूपी धनुर्वेद सीखे।

'अति प्रिय अग्र' गुरहि भए, गुरहू अग्र प्रियहि।
दोनों इक दूजहि गहे, दो नहिं एक भयहि।।ख।। (17)

(ख) यदि अग्रसेन जी गुरुजी के अति प्रिय हुये तो गुरुजी भी अग्र के लिये अति प्रिय हुये। गुरु-शिष्य दोनों में इनती आत्मीयता हो गयी कि वे अब दो नहिं वल्कि 'एक' होने का आभास देने लगे। (17)

छं०: **परघि असि तोमर व प्रासौ शक्ति छोड़न की कला।**
अभ्यास-बल से सीख ली छुटि लौट संधानति कला।।
संहार विधि सँग अस्त्र-शस्त्रन रहसयुत अद्भुत कला।
सीखी सभी ने एक सँग पर अग्र की अद्भुत कला।।1।।

छं : (1) श्री अगसेन जी ने परघि, तलवार, तोमर, प्रास और शक्ति छोड़ने की कला तथा वापस बुलाने और शस्त्र-संधान की समस्त कला अभ्यास बल से सीख ली। संहार की कला, विधि सहित अस्त्र-शस्त्रों की रहस्यमयी अद्भुत कला को वैसे तो सभी शिक्षार्थियों ने सीखीं किन्तु अग्रसेन जी इन सबमें अद्भुत थे।

विऽशिष्ट प्रतिभा अग्र की सो श्रेष्ठतम प्रियतम भए।
बुद्धि बल उत्साह मन से शीघ्र सम्पन् हो गए।।
ज्ञान की जिज्ञासा जिहि मन गुरु के प्रति अनुराग है।
वो हि प्यारा अग्र है वो अग्र है वो अग्र है।।2।।

(2) किशोर अग्र विशिष्ट प्रतिभा के धनी थे। इसलिये वह गुरुजी के श्रेष्ठतम तथा प्रियतम शिष्य हो गये। अग्रसेन जी बुद्धि, बल, उत्साह एवं मन से भी सम्पन्न हो गये। जिस शिष्य के मन में ज्ञान के प्रति जिज्ञासा तथा अपने गुरु के प्रति अनुराग का भाव है ऐसा तो एक ही शिष्य है हमारा आपका सबका प्यारा अग्रसेन। वो अग्र है, वो अग्र है, वो अग्र ही है।

अग्र सुत बुधिमान का जब चौधवाँ पूरा हुआ।
दिवस वर्धापन मनाने स्वस्ति उच्चारण हुआ।।
एक ऋषि-कन्या विचरती आइ तपसी भेष में।
एक नृप देखा उसे था काम के आवेग में।।3।।

(3) पुत्र अग्रसेन जी का जब चौदहवाँ वर्ष पूर्ण हुआ तब उनका वर्धापन दिवस मनाने के लिए आश्रम में स्वस्तिवाचन प्रारम्भ हुआ। तभी एक ऋषि-कन्या विचरती हुयी उस आश्रम के उपवन में तपस्विनी के भेष में आई जहाँ एक राजा ने उसे देखा। राजा काम के आवेग में आ गया।

देने प्रलोभन बहु लगा ऋषिकन्यही पापात्मा।
उर 'शुभा' का काँपता पीछे हटी रोषात्मा।।
व्याकुल अती था वह मगर उत्साह ना दूरातमा।
बोली 'शुभा' नृप नहिं उचित यह जाग हे पुण्यात्मा।।4।

(4) वह पापात्मा उस ऋषि-कन्या को बहुत से प्रलोभन देने लगा। शुभा का हृदय काँपने लगा और वह गुस्से से पीछे हटने लगी। वह पापी वैसे तो बहुत व्याकुल था किन्तु उस दुरात्मा का उत्साह जाता रहा था। शुभा बोली- हे राजन! यह उचित नहीं है। तुम पुण्यात्मा हो। जागिये। सँभालिये अपने आपको।

'स्पर्श मम तन को न कर, 'फटकार नृप भगने लगी।
'रक्षा करो रक्षा करो' इत-उत वो चिल्लाने लगी।।
सहसा थामा छोर ओढ़नि कामलोलुप राज ने।
खींचा पकड़कर फिर बिठाया रथ पे उसको बाज ने।।5।।

(5) राजा के न मानने पर वह राजा को फटकारते हुए बोली - हे राजन! 'मेरे शरीर को हाथ मत लगाना' ऐसा कहकर वह कन्या वहाँ से भागने लगी। मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो- ऐसा कहकर वह इधर-उधर चिल्लाने लगी। सहसा उस कामलोलुप राजा ने उस कन्या की ओढ़नी के

छोर को पकड़ लिया। उस बाज ने उसे खींचा, पकड़ा और फिर उस अबला को अपने रथ पर घसीट लिया।

करुण स्वर सुनते ही आश्रमवासि आ पहुँचे वहाँ।
स्वस्तिवाचन छोड़कर वह दुष्ट रावण था जहाँ।।
गुरुकुल कुमारों से घिरा वह सोचता जाऊँ कहाँ?
प्राण अब कैसे बचैं ? भागन लगा दुर्जन महाँ।।6।।

(6) अबला का करुण स्वर सुनते ही सभी आश्रमवासी स्वस्ति वाचन बीच में छोड़कर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ वह दुष्ट रावण था। गुरुकुलकुमारों से स्वयं को घिरा हुआ देखकर वह पापी सोचने लगा कि मैं अब कहाँ जाऊँ ? मेरे प्राण अब कैसे बचेंगे ? तब वह महा दुर्जन वहाँ से भागने लगा।

सहसा पीछे दौड़कर अति वेग से पकड़ा उसे।
पापी रतीन्द्रहि अग्र ने अरु केश से जकड़ा उसे।।
सिर पकड़ थप्पड़ हैं मारे अन्य मारैं लात से।
पद प्रहारैं मुक्के मारैं चोट देवैं बात से।।7।।

(7) अचानक अग्रसेन जी ने उस दुष्ट के पीछे तेजी से दौड़कर उसे पकड़ा और पापी रतीन्द्र को केश सहित अपने हाथों में जकड़ लिया। उन आश्रम कुमारों में से कुछ ने उसको सिर से पकड़ा और कुछ ने उसे थप्पड़ों से मारा। कुछ अन्य कुमार उसे लातों से मारने लगे। कोई उस पर पद-प्रहार कर रहा था। कोई उस पर मुक्के बरसा रहा था और कोई अपशब्द कहकर उस पर चोट वर्षा कर रहा था।

मार डालो पापि को आश्रम कुमार्यों बोलते।
व्यर्थ में कन्या सतायी सब उसे धिक्कारते।।
मारना नहिं है उचित दऽयालु अग यों बोलते।
पंक मुख पर मल दिया यह दण्डुचित दुर्गति मते।।8।।

(8.) आश्रम कुमारों ने कहा कि इस पापी को मार डालो। इस पापी ने व्यर्थ में एक कन्या को सताया है – ऐसा कहकर वे उसे धिक्कारने लगे। तब दयालू अग्र बोले – मेरी राय में इसे जान से मारना उचित नहीं है। ऐसा कहकर अग्रसेन जी ने उस दुष्ट के मुख पर कीचड़ मल दिया। उस पापी के लिये दुर्गति रूपी यह दण्ड सभी को उचित लगा।

उठने लगा पापातमा तो बाँध रथ में रख दिया।
पीटने से धूल से लथपथ रती बेहुश हुआ।।
आके आश्रम दुष्ट को मुनि ताण्ड्य के सम्मुख किया।
छोड़ दो इस पापि को धिक्कार तुअ व्यर्थहिं जिया।।9।।

(9.) धीरे-धीरे वह पापात्मा कीचड़ पर से उठने लगा तो अग्रसेन जी ने उसे गठरी की तरह बाँधकर उसी के रथ में रख दिया। पीटने के कारण धूल से लथपथ पापी रतीन्द्र तब अचेत हो गया। आश्रम में पहुँचकर उन सबने उस अनाचारी को गुरु ताण्ड्य के सम्मुख किया। गुरुजी बोले – इस पापी को छोड़ दो। हे पापी! तेरे जीवन को धिक्कार है। तू व्यर्थ ही जिया।

दो0 : बोले गुरु अब जा अधम, तू बड़ नीच पुरुष।
फिर ऐसा कूकृत्य नहिं, चल दीन्हे अध खुश।। (18)

दो0 : गुरु जी बोले – हे अधम! अब तू यहाँ से चला जा। तू बड़ा नीच पुरुष है। 'फिर कभी तू ऐसा कुकृत्य अर्थात् घिनौना कर्म मत करना।' और तब गुरू जी अर्धखुश अवस्था में वहाँ से आश्रम की ओर चल पड़े। (18)

चौ0 : जब देखा मुनि ताण्ड्य महर्षी। विद्या-पारंगत अग्रषी।।
अग्रहि दीन्हा अन्तिम वाचन। इसको मन में कर लो धारन।।

चौ0 : (1) जब मुनि ताण्ड्य महर्षि ने ऋषि की तरह लगने वाले किशोर अग्रसेन जी को समस्त विद्याओं में पारंगत देखा तो गुरूजी अपना अन्तिम उपदेश देते हुए बोले – आप सब मेरे इस उपदेश-ज्ञान को मन में धारण कर लीजिये।

वश में करना काम क्रोध को।लोभ दम्भ अरु कुटिल कपट को।।
धर्मपूर्ण आचरणहि करना। शिष्ट पुरुष सम व्यवहार धरना।।

(2) काम, क्रोध, लोभ, दम्भ तथा कुटिल कपट को सदा वश में रखना। सदा धर्मपूर्ण आचरण करना। सदैव शिष्ट पुरुष की तरह अपना व्यवहार रखना।

गुरु की सेवा सत्य बोलना। क्रोध-अभाव दान का करना।।
शिष्टाचारी के सद्गुण ये। अग्रऽरु अन्य कुमारन हित ये।।

(3) गुरु की सेवा करना, सदा सत्य बोलना, क्रोध का अभाव होना तथा नित्य दान करना – ये सभी शिष्टाचार से युक्त प्राणी के गुण कहे जाते हैं। हे अग्र ! तुम्हारा और आश्रम के सभी कुमारों का इसी में हित है।

शस्त्र-शास्त्र में दक्ष आप सब। मात पिता सेवा करिये अब।।
तात मात में प्रभु रहते हैं। धीजन ऐसा ही कहते हैं।।

(4) गुरुजी बोले – हे शिष्यों ! आप सभी शस्त्र-शास्त्रों में दक्ष हो चुके हैं। अब आप वापस जाकर अपने माता-पिता की सेवा करिये। माता-पिता में प्रभु का वास होता है – ऐसा बुद्धिमान कहते हैं।

दो0 : हाथ जोड़ कीन्हे ग्रहण, गुरु वचनन निर्देश।
परिकम्मा गुरु की लगा, अग्र चले निज देश।।क।।

दो0 : (क) गुरु के वचनों और निर्देशों को शिष्यों ने हाथ जोड़कर ग्रहण किया। गुरु जी की चतुष्कोणीय परिक्रमा लगाकर अग्रसेन जी अपने देश को चल दिये।

पितु आज्ञा को मानकर, अग्र करत चर्या।
अपने सद्गुण से ढँके, निज पित सद्गुणया।।ख।।

(ख) अपने राज्य में, किशोर अग्रसेन जी पिता की आज्ञा मानकर अपनी दिनचर्या सम्पन्न करते हैं। अग्रसेन जी ने अपने सद्गुणों से शीघ्र ही अपने पिता के सद्गुणों को ढक दिया।

धृति स्थिरधी सहिष्णुता, करुणा सऽरलता।
अविलच गुण सौहार्द्र सँग, अग्र हृदय पलता।।ग।।

(ग) धृति, स्थिरबुद्धि, सहिष्णुता, करुणा, सरलता, सत्य, सौम्यता तथा सौहार्द्रता जैसे महान गुण अग्रसेन जी के ही हृदय में पलते हुए शोभायमान होते हैं।

प्रजा जु वल्लभ चाहती, अब चाहत अग्रहि।
"विष्णुदास" निज सद्गुणन, अग्र होत अग्रहि।।घ।।(19)

(घ) प्रतापपुरी की प्रजा जो पहले महाराज वल्लभसेन जी को चाहती थी वह अब अग्रसेन जी को चाहने लगी। विष्णुदास कहते हैं कि अग्रसेन जी अपने सद्गुणों के कारण और अग्र होने लगे। (19)

अध्याय दो 'शिक्षा एवं दण्ड' पूर्ण हुआ।

:::::

निज विचार

अग्र भावना जो रखैं, कहुँ उनसे सादर।
निज पुत्रन दें गुण यही, जा ते हों 'फादर'।।

कवि कहता है कि जिनके हृदय में आगे बढ़ने और आगे बढ़ने की महान भावना होती है मैं उनसे सादर निवेदन करता हूँ कि वे अपने पुत्रों को इन्हीं सद्गुणों से युक्त करें जिससे वे (अन्य वर्णों के लिए के लिये भी) फादर अर्थात् पिता की भूमिका निभा सकें।

卐 अध्याय तीन (महाभारत में शौर्य प्रदर्शन) 卐

चौ० : ऋषी जैमिनी कथा सुनावैं। जनमेजय मन में हरषावैं।।
प्रसँग महाभारत अब सुनिये। अग्रसेन सम मन ते गुनिये।।

चौ० : (1) जैमिनी ऋषि अग्रसेन जी की पुरुषार्थ कथा सुनाते हैं जिसे सुनकर जनमेजय मन में हर्षित होते हैं। जैमिनी जी कहते हैं - हे जनमेजय! अब आप महाभारत की कथा सुनिये और अग्रसेन जी की तरह इसे मन से गुनिये।

इक दिन बैठे थे नृप वल्लभ। राजभवन में अग्रसेन सँग।।
एक दूत आया ढिंग उनके। हाथ जोड़ जो बोला जिनके।।

(2) एक दिन महाराज वल्लभसेन राजभवन में बैठे हुए थे। अग्रसेन जी भी उनके निकट बैठे हुए थे। तभी एक दूत उनके समीप आकर हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोला।

पाण्डुसुतन विऽराट पठाया। द्रुपदराज संदेशा लाया।।
धर्म-युद्ध में भाग है लेना। निज सेना सँग साथ है देना।।

(3) हे महाराज! मुझे महाराज पाण्डु के पुत्रों तथा राजा विराट ने आपको पास भेजा है। मैं राजा द्रुपद का संदेश लाया हूँ। हे महाराज वल्लभसेन जी! आपको सेनासहित इस धर्मयुद्ध में भाग लेकर पाण्डवों का साथ देना है।

वल्लभ! आप हैं ज्ञानी ध्यानी। निर्णय लेवन बुद्धि सयानी।।
दुर्योधन को प्रभु! तुम जानो। पाण्डुसुतन कौं भी पहचानो।।

(4) हे वल्लभसेन जी! आप ज्ञानी हैं। आप ध्यानी हैं। उचित निर्णय लेने में आपकी बुद्धि सयानी है। दुर्योधन को तो आप जानते ही हो। आप पाण्डु के पुत्रों को भी पहचानते हो।

दो० : दुर्योधन ने छल किया, पाण्डुसुतों के संग।
द्रोपदि चीर हरण हुआ, देखा सबने नंग।।20।।

दो० : दुर्योधन ने पाण्डु-पुत्रों के साथ छल किया। द्रौपदी का चीर-हरण हुआ। यह नंगापन आप सभी ने देखा। (20)

चौ० :बारह वर्ष रहे जंगल में। पाण्डव द्रौपदि रानी सँग में।।
फिर अज्ञातवास इक कीया। जोड़ प्रभू से निज निज हीया।।

चौ० : (1) हे महाराज वल्लभसेन जी! पाण्डव रानी द्रौपदी के साथ बारह वर्ष जंगलों में रहे। फिर उन्होंने एक साल का अज्ञातवास किया। यह कठिन समय पाण्डवों ने प्रभु के नाम लेने-देने में बिताया था।

पाँच गाम पाण्डव ने माँगे। हाथ जोड़ विनवत अनुरागे।।
किन्तू दुर्योधन नहिं माना। नृप धृतराष्ट्रहु रहे अजाना।।

(2) पाण्डवों ने मात्र पाँच गाँव ही कौरवों से माँगे थे। उन्होंने उनके बहुत हाथ-पैर जोड़े। अनुरागसहित उनकी बहुत विनय की। किन्तु दुर्योधन नहीं माना। नृप धृतराष्ट्र भी इन सबसे अनजान रहे।

दूत-रूप में कृष्ण गये थे। भरी सभा में समझाए थे।।
पर ये दुर्मति कतहु न माने। लगे कृष्ण को ही समझाने।।

(3) हे महाराज! श्रीकृष्ण ने दूत बनकर कुरुसभा में जाकर उन सबको बहुत प्रकार से समझाया। किन्तु वे दुर्मते नहीं माने। उल्टा वे भगवान श्री कृष्ण को ही समझाने लगे।

बिना युद्ध के हम नहिं देंगे। सुई नोंक सम भू-नहिं देंगे।।
वृहतसेन पाण्डू के प्रिय थे। दोनों इक दूजे के हिय थे।।

(4) कौरव बोले - बिना युद्ध किये हम पाँच गाँव तो क्या सुई की नोंक के बराबर भी भूमि नहीं देंगे। हे महाराज! शायद आपको मालूम हो कि महाराज वृहत्सेन और महाराज पाण्डु में बड़ी मित्रता थी। वे दोनों दो नहीं, एक थे।

दो० : धर्म-पक्ष का साथ दैं, कृष्णहु पाण्डव साथ।
विजयश्री को प्राप्त कर, करहु अनाथ सनाथ।।क।।

दो० : (क) आप धर्म-पक्ष का साथ दीजिये। श्रीकृष्ण भी पाण्डवों के साथ हैं। आप विजयश्री को प्राप्त करके अनाथ पाण्डवों को सनाथ बनाइये।

धर्म चाह जिन्ह क्षत्रि की, वे पाण्डव की ओर।
विजय पाण्डवन होयगी, चहुँ ओरे यह शोर।।ख।। (21)

(ख) जिन क्षत्रियों की लालसा धर्म की है, वे सभी पाण्डवों की ओर हैं। चारों ओर एक ही शोर उठ रहा है कि विजयश्री पाण्डवों को ही मिलेगी। (21)

चौ० : वल्लभ जी ने हाँ कर दीन्ही। सौगँध धर्म संग की लीन्ही।।
राजकुमार अचानक बोले। सुनो सभासद वच अनमोले।।

चौ० : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि महाराज वल्लभ ने तुरन्त 'हाँ' कहकर धर्म का साथ देने की प्रतिज्ञा कर ली। तब राजकुमार अचानक बोले। उपस्थित सभासद अग्र के अनमोल वचनों को सुनने लगे।

धर्म-युद्ध में भाग जु लेता। प्रभु उसको सुख स्वर्गहि देता।।
किंतू जो मृत्यू से डरता। वो प्राणी जीते जी मरता।।

(2) जो वीर धर्म-युद्ध में भाग लेता है, परमात्मा उसे स्वर्ग में स्थान देता है। किन्तु जो प्राणी मृत्यु से डरता है वो जीते जी मरा हुआ समझा जाता है।

दो० : गीता- जो तू भाग न लेयगा, धर्मयुक्त समरहिं।
कीर्ति धर्म बिसराएगा, फँसे पाप ग्रामहिं।।

वीरन चहिये रण में जायें। वहाँ शौर्य अपना दिखलायें।।
सूर्यवंश है युधवीरों का। एक से एक शूरवीरों का।।

(3) वीरों को चाहिये कि वे रण-भूमि में जायें और वहाँ अपना शौर्य-प्रदर्शन करें। सूर्यवंश एक से एक बढ़कर युद्धवीरों एवं शूरवीरों का वंश है।

मैं भी इस युध में जाऊँगा। अनुमति दें अति सुख पाऊँगा।।
वल्लभ बोले वय है छोटी। फिरहू बात करत हो मोटी।।
साढ़े पन्द्रह के बस तुम हो। रण में जाने को उत्सुक हो?

(4) हे माननीय! मैं भी इस धर्म युद्ध में जाऊँगा। आप मुझे अपनी अनुमति दीजिये। मैं अति सुख को प्राप्त होऊँगा। तब महाराज वल्लभ बोले, पुत्र! अभी तुम्हारी अवस्था छोटी है। फिर भी तुम मोटी अर्थात् बड़ी-बड़ी बातें कर रहे हो। अभी तुम मात्र साढ़े पन्द्रह वर्ष के हो और फिर भी तुम युद्ध में जाने के लिये इतने उतावले हो रहे हो।

दो0 : यह अनुकूल न धर्म के, ना हि न्याय-संगत।
मेरे आने तक यहीं, रहो यही मम मत।। (22)

हे पुत्र! ऐसा करना ना तो धर्म के अनुकूल है और ना ही न्याय-संगत। मेरे विचार से वापस आने तक तुम्हें यहीं रहकर मेरी प्रतीक्षा करनी चाहिये। (22)

चौ0 : जैमिनि बोले हे जनमेजय। धर्मयुक्त वचनन पित मतिमय।।
हाथ जोड़ रोवत सुत कहते। वीर युद्ध से विरत न रहते।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि नृप जनमेजय से कहते हैं कि पिता वल्लभसेन जी से धर्मयुक्त और बुद्धिपूर्ण वचनों को कहकर पुत्र ने दोनों हाथ जोड़कर रोते हुए कहा- हे पिताश्री! वीर युद्ध से कभी पीछे नहीं हटते।

धर्म-युद्ध में जो नहिं जावै। वो कुल-द्रोही बोझ कहावै।।
बैल यदी बैठा ही रहवे। बोझ न ढोवै व्यर्थहि जीवे।।

(2) जो (पुत्र) युद्ध में नहीं जाता है, वो कुलद्रोही और बोझ कहलाता है। यदि बैल एक स्थान पर बैठा ही रहे, वह बोझ न ढोवे, तो वह व्यर्थ ही जीवित कहलाता है।

योद्धारूपहिं ना ले चलिये। द्वितिय सहायक में ले चलिये।।
अग्र पिता ने गले लगाया। बोले सुत बड़भागी जाया।।

(3) हे तात! योद्धारूप में ना सही द्वितीय सहायक के रूप में ही मुझे ले चलिये। यह सुनकर पिता ने पुत्र को गले लगाकर कहा - मुझ बड़भागी ने वास्तव में पुत्र जाया है।

जीत सुनिश्चित होती उसकी। संतति साथ देत है जिसकी।।
चलने की तैयारी करिये। माँ-आज्ञा से झोली भरिये।।

(4) जीत उसी की निश्चित समझी जाती है जिसकी संतति उसका साथ देती है। हे पुत्र! चलने की तैयारी करो। बस, पहले तुम माँ की आज्ञा से अपनी झोली भर लो।

दो० : माता को परनाम कर, आज्ञा माँगी अग्र।
विजयी होकर लौटना, कहा मात हो व्यग्र।।क।।

दो० : (क) माँ के पास जाकर उन्हें प्रणाम करके अग्रसेन जी ने उनसे युद्ध में जाने की आज्ञा माँगी। माँ ने व्यग्र होकर कहा- विजयी होकर ही लौटना पुत्र।

सत्य धर्म रक्षार्थ तुम, जाओ मेरे वीर।
शौर्य पराक्रम स्वयं के, दिखलाओ महावीर।।ख।।

(ख) हे वीर! सत्य और धर्म की रक्षा के लिये तुम अवश्य जाओ। हे महावीर! वहाँ जाकर अपना शौर्य और पराक्रम सबको दिखाओ।

माँ के पद-स्पर्श कर, बैठे दिव्य रथहिं।
गमन किया सेनासहित, अग्र धर्मक्षेत्रहिं।।ग।। (23)

(ग) तब माँ के पद-स्पर्श करके अग्रसेन जी दिव्य रथ में बैठ गये। अग्रसेन जी ने सेनासहित धर्मक्षेत्र के लिये प्रस्थान किया। (23)

चौ० : कुरूक्षेत्र में पुण्य नदी थी। हिरणवती जलमय रहती थी।।
शिविरों का निर्माण कराया। नदी किनारे सबको भाया।।

चौ० : (1) जैमिनी जी कहते हैं कि वहाँ कुरुक्षेत्र में हिरण्यवती नाम की एक पुण्य नदी थी जो सदा जल से परिपूर्ण रहती थी। उसी के पावन किनारों पर शिविरों का निर्माण कराया गया था। व्यवस्था का यह विचार सबको अच्छा लगा।

श्रीकृष्ण थे इसके पीछे। बाकी थे आँखों को मींचे।।
इत में सब राजा ठहरे थे। चारों ओर लगे पहरे थे।।

(2) इस व्यवस्था के पीछे श्रीकृष्ण थे। शेष तो दर्शक थे जो अपनी आँखे बन्द कर यह सब देख रहे थे। सारे राजा यहीं ठहराये गये थे। चारों ओर कड़े पहरे की व्यवस्था की गई थी।

सबने फिर संकल्प है लीया। जिससे हर्षित हुआ हीया।।
धृष्टद्युम्न से वीर सेनपति। चतुरंगिनि सेना के अधिपति।।

(3) फिर सब आगन्तुक वीरों ने जो संकल्प लिया उससे सभी का हृदय बहुत हर्षित हुआ। धृष्टद्युम्न जैसे वीर को उस चतुरंगिनी सेना का सेनापति घोषित किया गया।

गुण अनुसार नियुक्ती कीन्ही। जिम्मेदारी वीरन दीन्ही।।
वज्र-व्यूह की रचना कीन्ही। पाण्डव निजहि सुरक्षा दीन्ही।।

(4) गुण अनुसार नियुक्ति देकर हर वीर को उत्तरदायित्व प्रदान कर दिया गया। वज्र-व्यूह की रचना करके पाण्डवों ने अपने पक्ष को और सुरक्षित कर लिया।

शंख मृदंगहु बाजन लागे। गज-चिंघाड़ भयानक लागे।।
सिंहनाद शूरों ने कीया। पार्थ मध्य शोकित अति हीया।।

(5) तब शंख-मृदंगादि बाजे बजने लगे। हाथी भयानकता से चिंघाड़ने लगे। शूरवीर पुरुष सिंह की तरह निनाद कर उठे और तभी उभय पक्ष की सेनाओं के मध्य खड़े हुए अर्जुन शोक से युक्त हो गये।

श्रीकृष्ण ने तब समझाया। सच्चाई का भान कराया।।
धर्म से बड़ा न कोई नाता। जो है आता वो है जाता।।

(6) तब शोकितमना अर्जुन को भगवान् श्रीकृष्ण ने समझाया और सच्चाई का भान कराया। हे पार्थ! धर्म ही सबसे बड़ा नाता है। इस जगत् में धर्म से बढ़कर दूसरा और कोई सम्बन्ध नहीं होता। जो इस जगत में आता है उसे एक न एक दिन यहाँ से जाना ही होता है।

दो० : अर्जुन पुनि धारण किये, धनुष बाण तूणीर।
पाण्डव जन हर्षित भये, किया घोष रणवीर।। (24)

दो० : अर्जुन ने पुन: तूणीर सहित धनुष-बाण धारण किये। पाण्डव-पक्ष हर्षित हो उठा और सभी रणवीर हर्षयुक्त घोष करने लगे।(24)

चौ० : युद्ध हो रहा जोर-जोर से। वीर-वीर से लड़ैं भोर से।।
धर्मयुद्ध अऽधर्महिं बदला। जो जस चाहा करने चऽला।।

चौ० : (1) महाभारत के इस युद्ध में जोर-जोर से युद्ध हो रहा था। भोर से ही वीर से वीर लड़ रहे थे। अचानक धर्म-युद्ध अधर्म युद्ध में बदल गया और जिसने चाहा वो वैसा करने लग गया।

वीर से पैदल रथ से हाथी। बदल गए रणक्षेत्र के साथी।।
सैनिक ऐसे जाते काटे। पकी फसल जस किसान छाँटे।।

(2) वीर से पैदल और रथ से हाथी लड़ने लग गया। रणक्षेत्र में साथी बदल गये। सैनिक इस प्रकार काटे जा रहे थे जिस प्रकार किसान बेदर्दी से पकी फसल को छाँटता है।

युद्ध अती वीभत्स हो गया। मानो नरक प्रगट हो गया।।
खूं की नदियाँ बहने लागी। अस्थि-समूह शिला सम लागी।।

(3) युद्ध अत्यन्त वीभत्व हो गया। ऐसा लगता था मानो वहाँ साक्षात् नरक प्रकट हो गया हो। खून की नदियाँ बहने लगी। हड्डियों का ढेर चट्टान की तरह लगने लगा।

केश लगैं सेवार घास सम। रथ भँवरहि घोड़े मत्स्यहिं सम।।
मस्तक पत्थर के टुकड़ों सम। गज दीखत विशाल ग्राहहि सम।।

(4) केश सेवार की घास के समान, रथ भँवरों के समान, घोड़े मछलियों के समान, मस्तक पत्थर के टुकड़ों के समान और हाथी विशाल मगर के समान लगते थे।

कवच मुकुट पगड़ी फेनहि सम। धनुष प्रवाह खड्ग कच्छप सम।।
लाशें रक्तनदी कगार सम। झण्डी ध्वज नदि-तट के तरु सम।।
मांसाहारी खग हंसन सम। रक्त-नदी यम की सत्ता सम।।

(5) वीरों के कवच, पगड़ी और मुकुट समुद्र के फेन की तरह, धनुष उसके प्रवाह की तरह, खड्ग कछुवों की तरह, लाशें रक्तनदी के कगार की तरह, झण्डियाँ और ध्वज नदी के किनारों पर स्थित वृक्षों की तरह और मांसाहारी पक्षी हँसों की तरह लगने लगे। रक्त की बहने वाली यह नदी साक्षात् यमराज की सत्ता की तरह लगती थी।

दो0 : नौ दिन तक चलता रहा, ऐसा भीषण युद्ध।
दसवें दिन प्रारम्भ हुआ, भीषम पाण्डव युद्ध।।क।।

दो0 : (क) यह भीषण युद्ध नौ दिनों तक चलता रहा। दसवें दिन भीष्म पितामह और पाण्डवों के मध्य भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ।

जब गंगासुत भीष्म ने, रौंदी रिपु-सेना।
विरऽट शिखण्डी धृष्टद्युम्न, ले आऐ सेना।।ख।।

(ख) जब गंगापुत्र भीष्म ने पाण्डव-सेना को रौंद डाला तो राजा विराट, सेनापति धृष्टद्युम्न और शिखण्डी भीष्म के सामने अपनी-अपनी सेना लेकर आ डटे।

पाण्डव-सेना ने किये, घायल भीष्म पितर।
भीषम छोड़ैं भीष्म शर, वीरन इधर-इधर।।ग।।

(ग) पाण्डवों की सेना ने भीष्म पितामह को घायल कर डाला। तब क्रोध में आकर भीष्म पितामह ने पाण्डव-पक्ष के वीरों पर एक से एक भीष्म बाण छोड़े जिससे पाण्डव वीर इधर उधर भागने लगे।

वल्लभ भी करने लगे, उनसे दो-दो हाथ।
तात सामने आ पड़े, कोइ नहीं था साथ।।घ।।

(घ) वल्लभसेन जी भी भीष्म से दो-दो हाथ करने लगे। तभी वल्लभ महाराज पितामह के समाने आ पड़े। उस समय कोई और वीर उनके साथ नहीं था।

शत्रूसूदन भीष्म ने, छोड़े बाण अनेक।
घायल होकर गिर पड़े, अग्रसेन पित नेक।।ड.।।

(ङ) शत्रूसूदन भीष्म ने अनेकों बाण वल्लभ जी पर ह अग्रसेन जी के नेक पिता घायल होकर युद्ध भूमि पर गिर पड़े।

तन से खूँ इतना बहा, हुआ रक्त अस्नान।
जस टेसू फूलन लदे, तरु पावसहिं महान।।च।।

(च) वल्लभसेन जी के शरीर से इतना खून बहा जिससे उनका रक्त स्नान हो गया। ठीक वैसे ही जैसे कि वर्षा ऋतु में वृक्ष टेसुओं के लाल-लाल फूलों से लद जाते हैं।

शिव महालक्ष्मी करु नमन, अरु देखत सुत अग्र।
वल्लभ तन तज चल दिये, स्वर्गहि बन रण-अग्र।।छ।। (25)

(छ) भगवान शिव और माता महालक्ष्मी को नमस्कार करके तथा पुत्र अग्रसेन जी की ओर देखते हुये महाराजा बल्लभसेन रणक्षेत्र में अग्र बनकर अपने प्राणों का त्याग करके स्वर्ग को प्रस्थान कर गये। (25)

चौ० : धृष्टद्युम्न भर गये क्रोध से। भीष्म पे शर बरसात छोभ से।।
भीष्म समक्ष शिखण्डी आये। शर से घायल भीष्म कराये।।

चौ० : (1) धृष्टद्युम्न क्रोध में भरकर पितामह भीष्म के ऊपर क्षोभ से बाण-वर्षा करने लगे। तभी शिखण्डी भीष्म के सामने आ गये और उन्होंने अपने बाणों से भीष्म को घायल कर दिया।

भू पर गिरे वेग से भीष्महि। मध्यहिं रुके तात शर-भूमहि।।
त पित मारे गये देखकर। अग्रहि छोड़ैं तीक्ष्ण-तीक्ष्ण शर।।

(2) भीष्म पितामह बड़ी तेजी से भूमि पर गिर पड़े किन्तु बीच में ही वह बाणों पर ठहर गये। उधर पिता को मारा गया देखकर अग्रसेन जी ने तीक्ष्ण बाण वर्षा करनी शुरू कर दी।

शत्रू-सेना भागन लागी। खूँ से रँग गइ भूमि अभागी।।
वीर रथी गजरोही मारे। क्रोध में भर-भर के हुंकारे।।

(3) शत्रु-सेना भागने लगी। अभागी भूमि खून से रँग गयी। अग्रसेन जी ने वीरों को, रथियों को तथा गजरोहियों को मार डाला। क्रोध में भरकर अग्रसेन जी जोर-जोर से हुंकार भरने लगे।

देख समर पाण्डव हरषाये। श्रीकृष्ण के मन अति भाये।।
कृप द्रोणरु अशुथामा सन्मुख। जयद्रथ और वृहद्बल सन्मुख।।
अग्र ने भीषण शौर्य दिखाया। शत्रूवीरन शीष झुकाया।।

(4) अग्र-समर देखकर पाण्डव हर्षित हुए। अग्रसेन जी श्री कृष्ण के मन को बहुत भाये। कृपाचार्य, द्रोण, अश्वत्थामा, जयद्रथ और वृहद्बल के सम्मुख अग्रसेन जी ने भीषण शौर्य-प्रदर्शन किया। उन्होंने बड़े-बड़े शूरवीरों के सिर को झुका दिया।

दो0 : अट्ठारह दिन तक चला, महाभारत का युद्ध।
जाने कितने मर गए, कितने हो गए शुद्ध।।क।।

दो0 : (क) महाभारत का यह युद्ध अठारह दिनों तक चला। इस युद्ध में ना जाने कितने लोग मरे और कितने शुद्ध हुए?

सौ वाली पर एक नहिं, छह वाली पर पाँच।
किसी ने सच ही है कहा, साँच न आवे आँच।।ख।।(26)

(ख) जिसके पास सौ थे, उसके पास एक भी नहीं और जिसके पास छह थे उसके पास अब पाँच ही बचे थे। किसी ने सच ही कहा है कि साँच को कभी आँच नहीं आती। (26)

चौ0 : अग्रसेन देखा पित भू पर। रोवन लागे अग्र वीरवर।।
अति शोकित बिलापयुत अग्रहि। युधी सान्त्वना देवैं अग्रहि।।

(1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि जब अग्रसेन जी ने पिता वल्लभसेन को भूमि पर पड़े हुए देखा तो वह वीर रोने लगा। अत्यन्त शोकित और विलाप से युक्त अग्रसेन जी को युधिष्ठिर सान्त्वना देने लगे।

आँख से आँसू रुक नहिं पावैं। शोक अग्र का और बढ़ावैं।।
कृष्ण अग्र के ढिंग तब आये। छाती से अपनी लिपटाये।।

(2) किसी के भी नेत्रों से आँसू रुक नहीं पा रहे हैं। ये आँसू अग्रसेन जी के शोक को और बढ़ा रहे हैं। तब भगवान श्री कृष्ण ने आगे आकर किशोर अग्र को अपनी छाती से लिपटा लिया और कहा -

जो है आता वो है जाता। किससे किसका कैसा नाता?।।
सब सम्बन्ध जगत में बेटा। स्वारथ में लिपटे हैं बेटा।।

(3) हे पुत्र! इस जगत में जो आता है, एक न एक दिन उसे जाना ही होता है। यहाँ किससे किसका कैसा नाता ? हे पुत्र? इस संसार में सबका सबसे स्वार्थ का सम्बन्ध है।

दो० : **यह आत्मा है जन्मता मरता कबहुँ केहि काल ना।**
उत्पन्न हूआ यह कभी ना और होगा फेर ना।
क्योंकी अजन्मा अरु सनातन नित्य यह पुरातना।
यह तन ही पावे मृत्यु पर यह कबहुँ पावे मरण ना।।

अर्थ—श्री कृष्ण बोले—हे पार्थ ! यह आत्मा किसी भी काल में ना तो कभी जन्म लेता है और ना ही कभी मृत्यु को प्राप्त होता है। यह आत्मा ना तो कभी उत्पन्न हुआ है और ना ही भविष्य में ऐसी सम्भावना ही है क्योंकि आत्मा अजन्मा है, सनातन है, नित्य और पुरातन है। यथार्थत: यह शरीर ही मृत्यु को प्राप्त होता है। आत्मा कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता।

पिता तुम्हारे मरे नहीं हैं। वास्तव में वे आज जिये हैं।।
धर्मयुद्ध में जो तन तजता। परमात्मा भी उसको भजता।।

(4) तुम्हारे पिता मरे नहीं है। वास्तव में वह अभी जनमे हैं। धर्मयुद्ध में जो प्राणी अपना शरीर त्याग करता है, उसका भजन तो परमात्मा भी करता है।

दो० **जीर्ण वस्त्र जस तन त्यागत है। नव वसनन यह पुनि पहनत है।।**
वैसेहि आत्मा काया छोड़े ! नव से तुरतहि निजता जोड़े।।

(5) श्री कृष्ण कहते हैं—हे पुत्र ! जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नव वस्त्रों को धारण करता है वैसे ही यह जीवात्मा पुराने शरीर को छोड़कर नये शरीर को धारण कर लेता है।

दो० : **शोक त्यागकर शांत हो, सुनो हमारी बात।**
कर्तव्-पथ पर जो मिटे, स्वर्ग जात वो भात।।क।।

दो० : हे पुत्र! अब तुम शोक त्यागकर शांत होकर मेरी बात सुनो। कर्त्तव्य के पथ पर मिटने वाला प्राणी भात बनकर स्वर्ग को जाता है।

श्राद्ध-कर्म कीन्हे वहीं, दान दिये बहुभाँत।
अश्रूपूरित नेत्र से, कथा कही ना जात।।ख।। (27)

(ख) वल्लभसेन जी के श्राद्ध-कर्मों को वहीं सम्पन्न किया गया। बहुत प्रकार के दान-कर्म किये गये। जैमिनी जी कहते हैं कि नेत्रों में आँसू आ जाने के कारण अब मुझे आगे की कथा कही नहीं जा रही है। (27)

अध्याय तीन 'महाभारत में शौर्य प्रदर्शन' पूर्ण हुआ।

:::::

(श्री कृष्ण और श्री अग्रसेन का समयकाल)

चौ० :कृष्ण जन्म की तिथि अब सुनिये। उर में रखिये मन में गुनिये।।
भाद्रमास का कृष्ण पक्ष था। तिथी अष्टमी दिवस बुद्ध था।।
शुभ ग्रह रोहिणि रात्रि वारा। जिसको गाता त्रिभुवन सारा।।
कलि द्वापर में पैंसठ अन्तर। शास्त्र प्रमाणन पुष्ट निरन्तर।।
अब से बाबन चौंतिस पहले। जनमे वसू देवकी गहले।।
युद्ध समय श्रीकृष्ण रहे थे। इक सौ सोलह अर्ध कहे थे।।
कृष्ण अग्र में रहा थ अन्तर। शत एकम् का कहते इन्दर।।
इक सौ पच्चिस कृष्ण अवनि पर। इक सौ आठ अग्र अग्र हर।।
दोहा—इक सौ साढ़े सोलहा, औ साढ़े पन्द्रह।
महाभारत में जब मिले, चर्चा जल थल ग्रह।।

卐 अध्याय चार (श्रीकृष्ण कृपा) 卐

चौ० : ऋषी जैमिनी आगें बोले। जनमेजय सुन रहे अबोले।।
कुरूवंश-क्षय जैसे हुआ। जो समुझहि दुख अति उहि हुआ।।

चौ० : (1) जैमिनी ऋषि आगें की कथा सुना रहे हैं जिसे जनमेजय चुप होकर सुन रहे हैं। कुरुवंश का क्षय जिस तरह से हुआ, जिसने भी इस रहस्य को समझा उसे बहुत दुख हुआ होगा।

शूल भाँति हिरदय में चुभता। हर युग टीस कसक उत्पतिता।।
मरे हों चाहे पापी पुण्यी। शेष हेतु पुँड कर्म जरूरी।।

(2) यह प्रसंग शूल की तरह हृदय में चुभता है। यह प्रसंग हर युग में टीस उत्पन्न करेगा - यह निश्चित है। इस युद्ध में चाहे पापी मरे हों या फिर पुण्यवान। शेष बचे हुओं के लिये पुण्य कर्म करते रहना बहुत आवश्यक है।

युद्ध-भूमि में मर गए जो जन। उन हित कीन्हे श्राद्धरु तर्पन।।
महाराज यूधिष्ठिर कीन्हा। पुण्य कर्म सब हो अति दीना।।

(3) युद्ध-भूमि में जिन वीरों ने अपने प्राणों को त्यागा उनके लिये महाराज युधिष्ठिर ने अत्यन्त दीनतापूर्वक श्राद्ध और तर्पन कर्म सम्पन्न किये।

जीवित राजा कहैं धर्म से। युध जीता श्रीकृष्ण-कर्म से।।
अब हम सब हैं जाना चाहते। धर्मराज वच कहैं नेह ते।।

(4) बचे हुए जीवित राजाओं ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा कि यह युद्ध श्री कृष्ण की कृपा से जीता गया है। हे महाराज! अब हम सब वापस जाना चाहते हैं। तब धर्मराज ने स्नेह युक्त वाणी में उन राजाओं से इस प्रकार कहा-

सबने अपना धर्म निभाया। नष्ट होन से धर्म बचाया।।
वासुदेव श्रीकृष्ण कृपा सँग। हूँ आभारी कहूँ सौंह गँग।।

(5) आप सभी ने इस नष्ट होने वाले धर्म को बचाकर अपना कर्त्तव्य निभाया। वासुदेव श्री कृष्ण की महान कृपा के साथ मैं आप सबका भी अत्यन्त आभारी हूँ।

दो0 : यथायोग्य सम्मान करु, विदा किये सब लोग।
धर्मराज भ्राता सहित, भर हिरदय अति सोग।। क।।
दो0 : (क) धर्मराज युधिष्ठिर ने भ्राताओं सहित यथायोग्य सम्मान करके शोकयुक्त हृदय से उन सभी अतिथि राजाओं को विदा कर दिया।

पृथ्वीपति महाराज थे, गिनती में त्रय शत।
जावत भए देखत रहे, धर्मराज हो नत।।ख।। (28)
(ख) वे पृथ्वीपति महाराज लगभग तीन सौ थे। धर्मराज सिर झुकाकर उन सबको वहाँ से जाता हुआ देखते रहे। (28)

चौ0 : अग्रसेन हू जावन लागे। धर्मराज बोलत अनुरागे।।
तुम्हें महाबल प्रभु ने दीया। इसको रखना सदा हि हीया।।
चौ0 : (1) जब किशोर अग्रसेन जी भी जाने लगे तब धर्मराज युधिष्ठिर उनसे इस प्रकार अनुराग पूर्ण शब्द बोले - हे वीर! प्रभु ने तुम्हें महाबल दिया है। इसे सदा सँभालकर रखना।

युद्धकला अरु युक्तिशक्ति अति। धर्महिबल सँग दयालुता अति।।
यही महाबल कहलाता है। जिसमें ये शत्रुन भाता है।।
(2) युद्धकला, युक्तिशक्ति और धर्मबल जिसमें दयालुता का गुण भी विद्यमान हो- इसे ही महाबल कहा जाता है। जिस वीर में उक्त बल होता है वह शत्रुओं को बहुत भाता है।

पिता तुम्हारे जिसने मारे। उन पर भी तुम कृपा किया रे।।
सबका वध तुमने नहिं कीया। शरणागत जीवन नहिं लीया।।
(3) हे वीर! तुम्हारे पिता को जिसने मारा था, तुमने उस पर भी दया की। तुमने सबको नहीं मारा। तुमने शरण में आये हुए का भी वध नहीं किया।

युद्ध बाद जिहि उर रह करुणा। सच में वो ही वीर सुघरणा।।
अग्र प्रणाम किये तब कृष्णहि। धर्मराज सँग अन अरु ज्येष्ठहि।।
(4) हे अग्र! युद्ध-समाप्ति के बाद जिसके हृदय में दया भाव रहता है उसे ही श्रेष्ठ वीर समझा जाता है। तब अग्र ने श्री कृष्ण को प्रणाम किया।फिर धर्मराज एवं अन्य ज्येष्ठियों को अग्रसेन जी ने नमस्कार किया।

दो0 : यह तो प्रेम है आपका, जो देखै सद्गुण।
सत्य धर्म नित आपमें, वा ते मैं मयगुण।।क।।

दो0 : (क) अग्रसेन जी ने कहा - हे माननीय! यह तो मेरे प्रति आपका निश्छल प्रेम है जिस कारण आपको मुझमें सद्गुण दिखायी देते हैं। वास्तव में सत्य और नित्य धर्म तो आपमें है। इसी कारण मैं आपको गुणवान मालूम होता है।

मम वरिष्ठ अरु माननिय, पितृ भाँति तव हाथ।
बड़े भाग्य से ही मिलै, साधुजनन का साथ।।ख।।

(ख) आप सब मेरे वरिष्ठ हैं। मेरे माननीय हैं। आपके हाथ मेरे लिये पिता की तरह हैं। साधुजनों का संग तो बड़े भाग्य से किसी-किसी को मिलता है।

भीम भाँति सुत अग्र तुम, कहते धर्मात्मा।
स्नेहयुक्त यों वचन सुन, प्रसन् अग्र आत्मा।। ग।। (29)

(ग) तब धर्मात्मा ने कहा पुत्र ! तुम मुझे भ्राता भीम की तरह प्रिय हो। युधिष्ठिर के इन स्नेहयुक्त वचनों को सुनकर अग्रसेन जी की आत्मा प्रसन्न हो गयी। (29)

चौ0 : श्रीकृष्ण से कहैं अग्र यों। हृषीकेष! तव चरण न छोड्यों।।
तीनों लोकों के स्वामी हो। जग के आश्रय परमात्मा हो।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि तब अग्रसेन जी ने भगवान श्री कृष्ण से कहा- हे प्रभो! मैं आपके चरण नहीं छोड़ूँगा। आप तीनों लोकों के एकमात्र स्वामी हैं। आप ही जन-जन के आश्रय हैं। आप ही सब आत्माओं के परम आत्मा हैं।

प्रभु-चरणों को छूवन लागे। कृष्ण लगाये उर सनुरागे।।
सुनो अग्र! मम बात ध्यान से। युग लेगा तव नाम मान से।।

(2) जैसे ही दयार्द्र अग्र प्रभु के चरण कमलों का स्पर्श करने के लिये नीचे तक झुके कि भगवान श्रीकृष्ण ने श्री अग्र को अनुराग सहित अपने

हृदय से लगा लिया और कहा- हे अग्र! तुम मेरी बात ध्यान पूर्वक सुनो। आने वाला युग सम्मानपूर्वक तुम्हारा नाम लेगा।

भू कीर्ती यश श्री मिल उनही। सत्याश्रित आचरणहि जिनही।।
नव-विचार-स्थापन कीजै। सुख से झोली सबै भरीजै।।

(3) भू, कीर्ति, यश और श्री उन्हीं को मिलती है जिनका आचरण सत्य पर आश्रित होता है। तुम नव विचार की स्थापना करो और सुख से सबकी झोली भरो।

छोट-बड़े की सोच न रखना। समता-खीर सदा ही चखना।।
चारों वर्ण सदा ही रहते। हर प्राणी में शास्त्र ये कहते।।
अग्र पुत्र तुम 'अग्र' कहाओ। समता-सरिता सदा बहाओ।।

(4) हे पुत्र ! तुम अपने अन्दर छोटे-बड़े की सोच कभी मत रखना। तुम सदा समता रूपी खीर ही चखना। हर प्राणी में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चारों वर्णों का समयानुकूल वास रहता है - शास्त्रों का ऐसा ही कहना है। पुत्र अग्र! तुम सदा अग्र (अग्रतम) ही कहाओ। तुम सदैव समतारूपी सरिता सब ओर बहाओ।

दो0 : आशिष पाकर कृष्ण का, जो थे श्री भगवान।
चरणों में धर शीश करु, पुनि-पुनि अभिवादन।। (30)

दो0 : श्रीकृष्ण जो कि वास्तव में भगवान श्री हरिविष्णु ही थे - का आशीष पाकर अग्रसेन जी ने अपने सिर को प्रभु के श्री चरणों में रख दिया और वह बार-बार प्रभु का अभिनन्दन करने लगे। (30)

चौ0 : हे प्रभु! अब मो जावन दीजै। पितृ युधिष्ठिर अज्ञा कीजै।।
दक्षिणावर्त प्रदक्षिणा करके। चल दीन्हे निज पुर जी भर के।।

चौ0 : (1)जैमिनी ऋषि कहते हैं कि तब अग्रसेन जी ने भगवान श्रीकृष्ण जी से निवेदन किया - हे प्रभो! अब आप मुझे जाने की आज्ञा दीजिये। पितृ युधिष्ठिर! आप भी मुझे अनुमति दीजिये। भगवान श्रीकृष्ण की दक्षिणावर्त परिक्रमा करके अग्रसेन जी अपनी पुरी को चल पड़े।

अश्रु नेत्र से नहिं थे रुकते। बढ़ते जाते अग्र सिसकते।।
पिता खो गया पुत्र रो गया। दुखी हृदय में सुःख सो गया।।

(2) अग्रसेन जी के नेत्रों से आँसू रुकते नहीं थे। वह सिसकते हुए रास्ते पर बढ़ते चले जा रहे थे। पिता खो गया, पुत्र रो गया और दुखी हृदय में सुख तो मानो सो ही गया।

शोकित मन से निज पुर आए। प्रति वस्तू जन दुखमय पाए।।
माता के ढिंग आकर राजन। चरणन गिर रोवत द्वय राजन।।

(3) अग्रसेन जी शोकयुक्त मन से अपने नगर में वापस आए। वहाँ उन्हें हर वस्तु और हर व्यक्ति दुखी दिखायी दिया। माता वैदर्भी के निकट जाकर अग्र उनके चरणों में पछाड़ खाकर गिर पड़े। माँ-बेटे दोनों विलाप करने लगे।

जैमिनि बोले हे जनमेजय। माँ-सुत-मिलन दृश्य करुणामय।।
देखै सुनै कहै जो रोवत। आँसू कौन सकै अब रोकत??
तब माता बोली सुत से यों। जो आता वो जाता दुख क्यों?।।

(4) जैमिनी बोले - हे जनमेजय! माँ-बेटे का यह दृश्य करुणा से पूर्ण है। यह प्रसंग जो देखता है, सुनता है अथवा जो इस दृश्य-प्रसंग को कहता है, वो रोने लगता है। भला, अब (श्रोता भी) कौन अपने आँसुओं को रोक सकता है ? तब माता भगवती ने पुत्र से इस प्रकार कहा- हे पुत्र! जो आता है, वो जाता ही है। फिर इस विषय में इतना दुख क्यों ?

दो0 : ऐसा कह धीरज रखैं, माँ-बेटा दोऊ।
होनी तो होकर रहै, कहा करै कोऊ।।क।।

दो0 : (क) ऐसा कहकर माँ-बेटा दोनों धीरज रखते हैं अर्थात् एक-दूसरे को धैर्य बँधाते हैं। कवि कहता है कि होनी तो होकर रहती है। भला, कोई इसमें क्या कर सकता है ?

शोक त्याग धीरज रखो, पितृकर्म करु पुत्र।
ऐसा कह रोवन लगी, वैदर्भी सँग पुत्र।।ख।। (31)

(ख) हे पुत्र! अब तुम शोक त्यागकर धैर्य धारण करो और पितृ सम्बन्धी कर्मों को पूरा करो। ऐसा कहकर माता वैदर्भी पुत्रसहित पुनः हिलकारे भरने लगी। (31)

चौ0 : अग्रसेन सँग महारानी ने। मंत्री प्रोहित पुरवासिन ने।।
अश्रूपरित नेत्रों से दी। नृप वल्लभ को जलांजली दी।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि - तब महारानी भगवती ने पुत्र अग्र के साथ तथा मंत्री सहित पुरवासियों ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से महाराज वल्लभ को जलाञ्जलि दी।

लोक-सँबन्धी कर्म कराये। अनुष्ठान विधिवत् पुरणाये।।
राजपुरोहित आगें आये। अग्र-शौर्य दोनों समझाये।।

(2) ब्राह्मणों ने उनसे लोक-सम्बन्धी सब कर्म करवाये। विधिवत सभी अनुष्ठान भी करवाये गये। तब राजपुरोहित सौम्य आगे आये। अग्र-शौर्य दोनों भाइयों को समझाते हुए वह बोले -

भूमी पर से उठो पुत्र अब। निज कर्तव् का भान करो सब।।
भूख-प्यास हो शोक मोह हो। या फिर जरा-मृत्य सा द्वँद्व हो।।

(3) हे पुत्रों! भूमि पर से उठो और अपने कर्त्तव्यों का भान करो। भूख हो या प्यास हो, शोक हो या मोह हो, अथवा फिर जरा और मृत्यु सा द्वन्द हो।

इन्हें रोकना है नहिं सम्भव। शोकयुक्त रहना अनुचित तव।।
उत्तम गति को गए हैं तव पित। इसमें शंका करो न अब मित।।

(4) इन्हें रोक पाना संभव नहीं। तुम्हारा इस प्रकार शोकयुक्त रहना किसी भी प्रकार से उचित नहीं पुत्र। हे पुत्रों ! तुम्हारे पिता को उत्तम गति प्राप्त हुई है। मेरी इस बात में तुम्हें तनिक भी शंका करने की आवश्यकता नहीं है।

दो0: शोक त्याग सामान्य हो, मन धारा सन्तोष।
हे गुरुवर आदेश दैं, अग्र कहा मय होष।।क।।

(क) श्री अग्रसेन ने शोक को त्यागा, सामान्य अवस्था में आये और मन में संतोष धारण किया। होश में आने पर (चैतन्यावस्था में) अग्रसेन जी ने कहा – हे गुरुवर! अब मेरे लिये आपका क्या आदेश है?

जनमेजय से ऋषि कहैं, दीप भाँति आख्यान।
उर के तम अज्ञान को, दूर करे यह गान।।ख।। (32)

(ख) ऋषि जैमिनी नृप जनमेजय से कहते हैं कि यह आख्यान दीपक की तरह प्रकाशमान है। यह पावन गान उर के समस्त अज्ञानंधकार को दूर कर देने में समर्थ है। (32)

अध्याय चार 'श्रीकृष्ण कृपा' पूर्ण हुआ।

:::::

(दोहे के अन्त में गाइये)

अग्रवर अग्रसेन पद गहि शरणम्
लक्ष्मी हरि ओम जय विश्वेश्वर
जय करुणेश्वर जय समतेश्वर

卐 अध्याय पाँच (कुंदसेन का षड़यन्त्र) 卐

चौ0 : प्रात होत सब आए द्विजगण। ब्राह्मण मंत्री राजमहलजन।।
गद्दी पर अब किसे बिठाना? चर्चा होन लगी बुधिमाना।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि – प्रात:काल होते ही प्रतापपुरी के राजभवन में सभी द्विजगण आये। ब्राह्मण और राज्य के मंत्री भी वहाँ उपस्थित हुये। उन बुद्धिमानों में चर्चा होने लगी कि राज्यगद्दी पर अब किसे बिठाया जाए ?

राजपुरोहित से जब पूँछा ? नाम अग्र का लिया समूचा।।
बुद्धी नय नीती अनुसारा। राज्यहितार्थ अग्र अति प्यारा।।

(2) जब सबने राजपुरोहित जी से पूँछा तो उन्होंने एक ही नाम लिया – अग्रसेन। हे धीमानों! बुद्धि, नय एवं नीति के अनुसार राज्य के हित के लिये प्यारे अग्रसेन जी ही उपयुक्त हैं।

एकमात्र अधिकारी ये ही। तिलक करो सब संग सनेही।।
कुंदसेन से कहा पुरोहित। देर न अब ज्यादा करिये पित।।

(3) अग्रसेन ही राज्य सिंहासन के एकमात्र अधिकारी हैं! हमें स्नेहीजनों के साथ अग्र का राजतिलक कर देना चाहिये। पुरोहित सौम्य ने चाचा कुन्दसेन जी से कहा – हे अग्र-पित! अब विलम्ब करना उचित नहीं है।

यदपि अग्र की वय है थोड़ी। गुण में लेकिन हैं बेजोड़ी।।
सत्य दया इनमें है भारी। वेद ज्ञान धर्महु उर न्यारी।।

(4) यद्यपि अग्रसेन जी की आयु कम है किन्तु गुणों में यह बेजोड़ हैं। इनमें सत्य-दया की प्रचुरता है। वेद, ज्ञान और धर्म का भी इनके हृदय में स्थायी निवास है।

दो0 : जैमिनि जनमेजय कहैं, सबके प्रिय अग्रज।
याते राजतिलक करो, सद्गुणयुत अग्रज।। (33)

दो0 : जैमिनी ऋषि ने नृप जनमेजय से कहा कि अग्रसेन जी सबके प्रिय थे। इसलिये सबने कहा कि सद्गुणों से युक्त अग्र का राजतिलक करना भलीभाँति उचित है। (33)

चौ0 : कुंदसेन-सुत वज्रसेन था। दुखमय क्रोधित भरे नैंन था।।
ईर्ष्या भर आयी हिरदय में। कुन्द से बोला ऐकान्त में।।

चौ0 : (1) कुन्दसेन के पुत्र का नाम था वज्रसेन। यह सब देखकर वह दुखी था। उसके नेत्रों में भयानक क्रोध आ गया था। उसके हृदय में भारी ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी। वह अपने पिता कुन्दसेन को एकान्त में ले जाकर इस प्रकार बोला -

कोइ उपायै ऐसा करिये। राज्य हमें मिल जाय सुँदरिये।।
अग्रसेन जीवित है जब तक। राजा नहिं होंगे हम तब तक।।

(2) हे पिताजी ! आप कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे यह सुन्दर और सम्पन्न राज्य हमें प्राप्त हो जाये। गुस्से में आकर वह दृढ़तापूर्वक बोला - हे पिताश्री ! जब तक अग्रसेन जीवित हैं तब तक यह राज्य हमें नहीं मिल पाएगा।

यासों अग्रहि शत्रू समुझइ। जीवित याकूँ कतइ न छोड़इ।।
कुंदसेन दुविधा में पड़ गए। पाप-विचार मनहिं उर बस गए।।

(3) इसलिये अग्रसेन को अपना शत्रू समझकर हमें इसे कतई जीवित नहीं छोड़ना चाहिये। कुन्दसेन पुत्र की बात सुनकर दुविधा में पड़ गये। उनके मन और हृदय में कुटिल भाव उमड़ने-घुमड़ने लगे।

कौन बचा है लोभ-मोह से? कुन्द वज्र फिर बचते कइसे??
शत्रु अग्र का कोइ नहीं है। राज्य छीनना क्या ये सही है??

(4) लोभ-मोह से कौन बचा है ? फिर भला कुन्दसेन और वज्रसेन कैसे बच पाते ? जैमिनी जी कहते हैं कि अग्रसेन जी का कोई शत्रू नहीं। तो फिर ऐसे निश्छल व्यक्ति से राज्य छीनना क्या सही है ?

दो0 : अग्र है बलशाली अती, प्रजा सैन्य भी संग।।
कैसे सम्भव होयगा, बिना कपट करु जंग।।क।।

दो0 : (क) वज्रसेन बोला - पिताजी ! अग्रसेन बड़ा ही बलशाली है। सारी प्रजा और सेना भी उसी के साथ है। बिना कपट की जंग के ऐसा कैसे सम्भव हो पायेगा ?

कपटी-सुत जनकहि कहा, सब हैं धन के दास।।
यासों ऐसा ही करो, फिर होंगे सब खास।।ख।। (34)

(ख) हे पिताजी ! सब लोग धन के दास हैं। इसलिये हम ऐसा ही करते हैं। ऐसा करने से ये सब हमारे खासमखास हो जाएँगे। (34)

चौ0 : पराक्रम से यदि कार्य न होवै। छल से निश्चित ही सिध होवै।।
अग्रसेन को धोखा देकर। कैद करो विश्वास में लेकर।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि पराक्रम से यदि कार्य सिद्ध ना हो पा रहा हो तो वह छल से निश्चित सिद्ध हो जाता है। वज्रसेन बोला- हे पिताजी ! अग्रसेन को धोखा देकर और अपने विश्वास में लेकर कैद कर लिया जाना उचित होगा।

गुप्तरूप से निज वीरों को। अति विश्वासी शूरवीर कौं।।
नियत करैं पित चारो ओरहिं। अग्रहि घेरे में फिर लैं वहिं।।

(2) गुप्तरूप से अपने अति विश्वस्त वीरों और शूरवीरों को अग्रसेन के चारों ओर स्थापित करके फिर वहीं उसे घेरे में ले लिया जाये पिता जी।

त्रय प्रकार के वीर सजाये। अग्रसेन कुँद ने घिरवाये।।
दूसर सदा दूसरा रहता। सत्य कहा भाई दुख सहता।।

(3) तीन प्रकार के वीरों को सजाकर कुन्दसेन ने अग्रसेन जी को घिरवा दिया। किसी ने सच ही कहा है कि दूसरा सदा दूसरा ही रहता है। भाई का दुख भाई ही सह सकता है।

तन का रोग करे ना हित है। वन की औषधि सच में मित है।।
कुन्दसेन ने बन्दि बनाए। अग्रसेन जब सोय कहाए।।

दो0 : अग्र है बलशाली अती, प्रजा सैन्य भी संग।।
कैसे सम्भव होयगा, बिना कपट करु जंग।।क।।

दो0 : (क) वज्रसेन बोला - पिताजी ! अग्रसेन बड़ा ही बलशाली है। सारी प्रजा और सेना भी उसी के साथ है। बिना कपट की जंग के ऐसा कैसे सम्भव हो पायेगा ?

कपटी-सुत जनकहि कहा, सब हैं धन के दास।।
यासों ऐसा ही करो, फिर होंगे सब खास।।ख।। (34)

(ख) हे पिताजी ! सब लोग धन के दास हैं। इसलिये हम ऐसा ही करते हैं। ऐसा करने से ये सब हमारे खासमखास हो जाएँगे। (34)

चौ0 : पराक्रम से यदि कार्य न होवै। छल से निश्चित ही सिध होवै।।
अग्रसेन को धोखा देकर। कैद करो विश्वास में लेकर।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि पराक्रम से यदि कार्य सिद्ध ना हो पा रहा हो तो वह छल से निश्चित सिद्ध हो जाता है। वज्रसेन बोला- हे पिताजी ! अग्रसेन को धोखा देकर और अपने विश्वास में लेकर कैद कर लिया जाना उचित होगा।

गुप्तरूप से निज वीरों को। अति विश्वासी शूरवीर कौं।।
नियत करैं पित चारो ओरहिं। अग्रहि घेरे में फिर लैं वहिं।।

(2) गुप्तरूप से अपने अति विश्वस्त वीरों और शूरवीरों को अग्रसेन के चारों ओर स्थापित करके फिर वहीं उसे घेरे में ले लिया जाये पिता जी।

त्रय प्रकार के वीर सजाये। अग्रसेन कुँद ने घिरवाये।।
दूसर सदा दूसरा रहता। सत्य कहा भाई दुख सहता।।

(3) तीन प्रकार के वीरों को सजाकर कुन्दसेन ने अग्रसेन जी को घिरवा दिया। किसी ने सच ही कहा है कि दूसरा सदा दूसरा ही रहता है। भाई का दुख भाई ही सह सकता है।

तन का रोग करे ना हित है। वन की औषधि सच में मित है।।
कुन्दसेन ने बन्दि बनाए। अग्रसेन जब सोय कहाए।।

(4) शरीर में उत्पन्न रोग से शरीर का हित नहीं होता। उस समय वन की औषधि ही सच्ची मित्र होती है। अग्रसेन जब सोये हुए थे तभी कुन्दसेन ने उन्हें बन्दी बना लिया।

दो0 : बेड़िन जकड़ा अग्र को, अरु बाँधा कसकर।
माँ-भाई भी कर लिये, कैद कुन्द कायर।।क।।

दो0 : (क) अग्रसेन जी को बेड़ियों में जकड़कर और कसकर बाँध दिया गया। इतना ही नहीं, कायर कुन्दसेन ने अग्रमाता और भ्राता को भी बन्दी बना लिया।

धर्म यहाँ हारा मगर, जीता कुरुक्षेत्रे।
अग्र उपाय न सूझता, छोड़ा प्रारब्ध पे।।ख।। (35)

(ख) अफसोस! धर्म की यहाँ हार हुई जबकि कुरुक्षेत्र में उसकी जीत हुई। जब अग्रसेन जी को छुटकारे का कोई उपाय नहीं सूझा तब उन्होंने सब कुछ प्रारब्ध पर छोड़ दिया। (35)

चौ0 : अग्र क्रोध से मन में जलते। हाथन मलते साँस खींचते।।
शांत हृदय महाराज हो गए। जस अग्नी-ज्वाला है हुवए।।

चौ0 : (1) बन्दी अग्रसेन जी क्रोध से मन में जलते हैं। वह कभी अपने हाथों को मलते है तो कभी लम्बी-लम्बी साँसे खींचते हैं। थक हारकर अग्रसेन जी शांत हृदय हो गये जैसे अन्त में अग्नि की ज्वाला शांत हो जाती है।

अग्रसेन बोले काका से। राज्य गहैं हे तात! प्रेम से।।
आप बड़े हैं शासन कीजै। मुझे न इच्छा प्रेम से लीजै।।

(2) अग्रसेन जी काका कुन्दसेन से बोले -हे तात! आप प्रेम से इस सम्पूर्ण राज्य को ले लें। आप बड़े हैं। आप शासन करिये। मुझे इसकी कोई इच्छा नहीं है। आप प्रेम से राज्य को ग्रहण कीजिये।

राज्यऽभिषेक करायें अपना। सत्य वचन वह था इक सपना।।
स्वप्न कभी ना सच्चा होता। जो जगता उत वो इत सोता।।

(3) आप अपना राज्याभिषेक कराइये। मेरा सत्य वचन है कि मैं इस सबको एक सपना समझूँगा। स्वप्न कभी सत्य नहीं होता। उधर जो जागता है वो इधर सोता है।

अग्र कुन्द के पाँयन गिर गए। फूट-फूटकर रोवत भए।।
मैं अपराधी क्षमा करो मो। आप पिता सम चाचाजी मो।।

(4) अग्रसेन जी कुन्दसेन के पैरों में गिरकर फूट-फूटकर रोने लगे। मैं अपराधी हूँ। मुझे क्षमा कीजिये। हे चाचाजी! अब आप ही मेरे लिये पिता की तरह हैं।

दो0 : ठोकर मारी माथ पे, कुलद्रोही कुँद ने।
गलती क्या थी अग्र की ? सोचा प्रारब्ध ने ।।क।।

दो0 : (क) इसके विपरीत कुलद्रोही कुन्दसेन ने अग्रसेन जी के माथे पर ठोकर मार दी। तब प्रारब्ध भी सोचने लगा आखिर अग्रसेन की क्या गल्ती थी ?

जीवित रहना चाहता, तो हो जा मम दास।
वचन कुटिल कुँद यों कहे, अग्रहि कर उपहास।।ख।। (36)

(ख) अग्रसेन जी का उपहास करते हुए कुन्दसेन इस प्रकार कुटिल बचन बोला – अग्रसेन! यदि तू जीवित रहना चाहता है तो तू दासत्व ग्रहण कर ले। (36)

चौ0 : अग्र क्रोध में अब हैं आये। कुन्दसेन को यों चेताये।।
शब्द कटू यदि अब बोलोगे। वैसा ही उत्तर पाओगे।।

चौ0 : (1) जैमिनी जी कहते हैं कि अब अग्रसेन जी क्रोध में आये और चेतावनी भरे शब्दों में कुन्दसेन से बोले – यदि अब तुम एक भी कटु वचन बोलोगे तो बदले में तुम वैसा ही उत्तर पाओगे।

धूर्त क्रूरकर्मी लम्पट तुम। योधन से मक्कार अती तुम।।
सूर्यवंश की कीर्ति लजायी। क्रूर कर्म से हे दुखदायी।।

(2) तुम धूर्त हो, तुम क्रूरकर्मी हो, तुम लम्पट हो। तुम दुर्योधन से भी अधिक मक्कार हो। हे दुखदायी। तुमने अपने इस क्रूर कर्म से महान सूर्यवंश की धवल कीर्ति को लज्जित कर दिया। उसे गँदला कर दिया।

तृष्णाओं को पूरा करना। इन्द्रहु लागे बस इक सपना।।
कुन्दसेन काका फिर तुम क्या? हाल तुम्हारा को करि बऽयाँ।।

(3) तृष्णाओं को पूरा करना तो देवराज इन्द्र के लिये भी स्वप्नवत् है। काका कुन्दसेन! फिर तुम क्या चीज हो ? (मजाक बनाते हुए) तुम्हारी दुर्दशा तो कोई बयान भी नहीं कर पाएगा।

अग्रसेन सिर टक्कर मारी। छाती में कुँद गिरा पछारी।।
हो बेहोश गिरा भू-तल पे। वज्रसेन उठ आया झट से।।

(4) तदनन्तर अग्रसेन जी ने अपने सिर की जोरदार टक्कर कुन्दसेन की छाती में मारी। कुन्दसेन पीछे की ओर लड़खड़ाया और बेहोश होकर भू-तल पर गिर पड़ा। झट से वज्रसेन वहाँ आ पहुँचा।

कहा वज्र ने योद्धाओं से। अग्रसेन पकड़ो केसों से।।
ले जाओ भू पर घसीटकर। कारागृह में फेंक आव फिर।।

(5) वह अपने योद्धाओं से बोला - अग्रसेन को बालों से पकड़ लो। इसे भूमि पर घसीटते हुए ले जाते हुए कारागार में फेंक आओ।

दो0 : वज्रसेन-दुष्कृत्य लख, प्रजा भई भयभीत।
तन सबका काँपन लगा, छिप गए सच्चे मीत।। (37)

दो0 : वज्रसेन का यह दुष्कर्म देखकर सारी प्रजा भयभीत हो गयी। उनका शरीर काँपने लगा। अग्र के जो सच्चे मीत और हितैषी थे वे जाकर छिप गये। (37)

चौ0 : परवश प्रजा कहे आपस में। दुष्ट स्वारथी भाव द्वयन में।।
यह कुदृश्य देखा ना कबहूँ। जी चाहत मर जाऔ अबहूँ।।

चौ0 : (1) परवश प्रजाजन एक-दूसरे से फुसफुसाहट भरे स्वर में कहने लगे कि बाप-बेटे दोनों में स्वार्थ भरा पड़ा है। हमने पहले कभी ऐसा कुदृश्य नहीं देखा। जी चाहता है कि हम अभी मर जायें।

पर मरना आसान नहीं है। रो-रो जीना क्या ये सही है?? होनी तो होकर रहती है। उसके आगें ना चलती है।।

(2) पर मरना आसान थोड़े ही है। तो क्या रो-रोकर जीना! क्या ये सही है? होनी तो होकर के रहती है। (ऊपर की तरफ देखकर) उसके आगें किसी की नहीं चलती।

चौ० : प्रभु की लीला प्रभु ही जानैं। कबहूँ मानैं कबहुँ न मानैं। कबहुँ रुलावैं कबहुँ ठठावैं। कबहूँ रंजित बात बनावैं।।

(3) जैमिनी ऋषि बोले—हे राजन् ! प्रभु की लीला प्रभु ही जानते हैं। वह कभी तो सहजता से मान जाते हैं तो कभी उन्हें चाहे जितना मनाओ, उनकी लाख चिरौरी करो फिर भी, वह नहीं मानते। प्रभु कभी रुलाते हैं तो कभी ठठाते हैं। कभी-कभी प्रभु मन को सुख प्रदान करने वाली रंजित बतियाँ (मनगढ़न्त ही सही) भी बनाते हैं।

चौ० : यासों प्रभु पर छोड़ो अब सब। वही करेगा कोई करतब।। अग्रसेन की दशा देखकर। प्रजा बिचारी कहे न डरकर।।

(4) इसलिये अब सब कुछ परमात्मा पर छोड़ दो। वो ही कोई करतब करेगा। अग्रसेन जी की दीन-दशा देखकर प्रजा कुछ कहना चाहती है परन्तु डर के मारे कुछ कह नहीं पाती।

चौ० : संतजनन उर ग्लानी भारी। कहैं कुन्द की मति गइ मारी।। वज्रसेन कंसहु सम लागै। जा तें कोउ न उहि अनुरागे।।

(5) संतों के मन में भारी ग्लानि का भाव है। वे कहते हैं कि कुन्दसेन की मति मारी गयी है। वज्रसेन तो कंस की तरह लगता है। इसीलिये वज्र से कोई प्रेम नहीं करता।

दो० : इन्हें देखना पाप है, दोनों भए विकृत।
अब कैसे रह पायेंगे, करेंगे ये कूकृत।।क।।

दो० : (क) संत बोले - इन्हें देखना पाप है। क्योंकि ये अब विकृत हो गये हैं। प्रजाजन बोले - अब हम यहाँ कैसे रह पाएँगे ? क्योकि ये कुकर्म करने से बाज थोड़े ही आएँगे।

ऋषि जनमेजय से कहैं, जब संकट आवै।
मन में धीरज राखिये, सब संकट जावै।।ख।।

(ख) जैमिनी ऋषि जनमेजय से कहते हैं कि आप पर जब कभी संकट आ जाये तो मन में धीरज रखिये। आप का सारा संकट शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा।

"विष्णुदास" की बात सच, होनी बड़ी प्रबल।
अति बलशाली भी भए, भाग्य समछ निर्बल।।ग।। (38)

(ग) विष्णुदास जी की यह बात बिल्कुल सत्य है कि होनी बड़ी बलवान होती है। भाग्य के सामने तो बड़े-बड़े बलशाली भी निर्बल हो जाते हैं तो फिर ये बाप-बेटे क्या चीज हैं। (38)

अध्याय पाँच 'कुंदसेन का षड़यन्त्र' पूर्ण हुआ।

:::::

卐 अध्याय छः (कारागृह से मुक्ति) 卐

दो0 : ऋषि जनमेजय से कहैं, अग्र विचार करैं।
जब अपने मारन लगैं, फिर किहि ध्यान धरैं?।।क।।

दो0 : (क) जैमिनी ऋषि जनमेजय से कहते हैं कि बन्दी अग्रसेन जी विचार करते हैं कि जब अपने ही आपको मारने लगें तो फिर आप सहायता के लिए किसका ध्यान करेंगे?

फूट-फूटकर रोवते, धीर-वीर-युवराज।
प्रभु से करते प्रार्थना, तुमहि सँवारो काज।।ख।।

(ख) धीर-वीर युवराज फूट-फूटकर रोते हैं। वह प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि अब आप ही मेरा काम सँवारें अर्थात् मुझे इस दारुण दुख से मुक्ति दिलवायें।

चौ0 : उधर कुंद ने कहा वज्र से। राजतिलक करु ममहि वेग से।
कैसा भी पण्डित ले आओ ? स्वस्तीवाचन शीघ्र कराओ।।

चौ0 : (1) उधर कुन्दसेन ने अपने पुत्र वज्रसेन से कहा कि शीघ्र मेरा राजतिलक करो। कैसा भी पण्डित मिले ? ले आओ। स्वस्ति-वाचन शीघ्र कराओ।

मुख सेवक मागध चारण सँग। हितकारी जो सब भेजो सँग।।
राजमुकुट मोतिन माला अरु।कर आभूषण छत्र चँवर धरु।।

(2) हमारा हित चाहने वाले मुख्य सेवक, मागध, चारण और हमारे शुभाकांक्षियों को इकट्ठा करो। अपने सिर पर राजमुकुट धारण करके, गले में मोतियों का हार पहनकर, हाथों को आभूषणों से सजाकर तथा अपने सिर के ऊपर स्वर्ण-छत्र और चँवर धारण करके -

राजसिंहासन अधमी बैठा। मादक रस पी लगत बरैठा।।
फूहड़ नर्तन होवन लागा। काम रती मनु भावत कागा।।

(3) अधमी कुन्दसेन आखिरकार प्रतापपुरी की राजगद्दी पर बैठ ही गया। उस समय वह दुष्ट मादक रस पीने वाले बरैठा की तरह लग रहा

था। राजा बनने की खुशी में वहाँ राजभवन में फूहड़ नाच-गाना होने लगा। उस समय वह नीच ऐसा प्रतीत होता था मानो कौए के मन में काम की भावना जागृत हो गयी हो।

कमर नितम्ब उरोज उछलते। सुधिजन हू अब दिखे थिरकते।।
वातावरणहु भया काममय। उत बंदीगृह अग्र रुदन भय।।

(4) नर्तकियों की कमर, नितम्ब और उरोज इतनी अश्लीलता से ऊपर-नीचे हो रहे थे कि सुधीजन भी उनके साथ थिरकने का लोभ नहीं छोड़ पा रहे थे। सारा वातावरण काममय हो रहा था। उधर बंदीगृह में अग्रसेन जी का रुदन बढ़ता ही चला जा रहा था।

दो0 : तब ही देखा अग्र ने, ढिंग आवत जन एक।
बोला मंत्री जेल हूँ, लगा इरादा नेक।।क।।

दो0 : (क) तभी अग्रसेन जी ने एक व्यक्ति को अपनी ओर आते हुए देखा। आगन्तुक स्वयं ही बोला कि मैं आपके राज्य का कारागार मंत्री हूँ। अग्रसेन जी को उसका इरादा नेक मालूम पड़ा।

धिक्कारा वह कुन्द को, धूर्त विकृति मति को।
राज्य-शांतिहर्ता भया, पावे धिक् गति को।।ख।। (39)

(ख) उस कारागार-अमात्य ने धूर्त एवं विकृति बुद्धि वाले कुन्दसेन को धिक्कारते हुए कहा कि यह दुष्ट राज्य की शांति का हरण करने वाला है।निश्चित ही यह धिक्कारने योग्य (नीच गति) गति को प्राप्त होगा। (39)

चौ0 : दुखकारी यह पल मम हित है। अंधकार-बन्धन में रवि है।
वृहत्सेन थे तुम्हरे बाबा। जिनकी ख्याति जगत है गाबा।।

चौ0 : (1) कारागार मंत्री बोला - यह पल मेरे लिये दुख का पल है। आज सूर्य अंधकार के बन्धनों में जकड़ा हुआ है। महाराज व्रहत्सेन आपके बाबा थे जिनकी ख्याति आज भी सारा संसार गाता है।

उनके सँग मैं बहुत रहा था। गुरुकुल में निज भ्रात कहा था।।
यासों मुझको अपना समझो। धीरज मन में भारी रक्खो।।

(2) मैं उनके साथ बहुत रहा था। गुरुकुल में अध्ययन के समय उन्होंने मुझे "निज भ्राता" कहकर सम्बोधित किया था। इसलिये हे युवराज! तुम मुझे अपना ही समझो। तुम अपने मन में धीरज जैसे महान गुण को बनाये रखो।

कष्ट तुम्हारे दूर करूँगा। शपथ प्रभू की विपति हरूँगा।।
स्नेहयुक्त वाणी सुन रोये। मानो सम्मुख वल्लभ होये।।

(3) हे वीर! मैं तुम्हारे कष्ट को दूर करूँगा। परमात्मा की सौगन्ध! मैं तुम्हारी सारी विपत्तियों का हरण करूँगा। अमात्य की सान्त्वनायुक्त मधुर वाणी को सुनकर विपत्ति में फँसे अग्रसेन जी पुनः रोने लग गये। उन्हें ऐसा लगा कि अमात्य के भेष में उनके स्वर्गीय पिता महाराज वल्लभ उनके सम्मुख खड़े हों।

नमस्कार अग्रहि उहि कीन्हा। श्यामरँगी आशिष नृप दीन्हा।।
बोला पहले विपति भगाओ।धर्म-नीति फिर अमल में लाओ।।
जैसे के सँग तैसा बनिये। वरना बनकर रहोगे धनिये।।

(4) तब अग्रसेन जी ने उन हितैषी मान्यवर को नमस्कार किया। उस श्यामवर्णीय भद्र ने बन्दी अग्र को अपना शुभाशीष दिया। वह बोले- पुत्र अग्र! सबसे पहले तुम अपनी इस विपत्ति को दूर भगाओ। उसके बाद तुम धर्म-नीति को अमल में लाओ। पुत्र अग्र! जैसे के संग तैसा बनिये। नहीं तो तुम्हें धनिया बनकर रहना होगा अर्थात् तुम बार-बार कूटे जाओगे।

दो० : गुप्त सुरँग है इक यहाँ, मुख्य द्वार जिहि बंद।
मुझको उसका ज्ञान है, कुन्द नहीं मति गंद।।क।।

दो० : (क) हे पुत्र! इस कारागार में एक गुप्त सुरंग है जिसका मुख्य द्वार बन्द ही रहता है। उस गुप्त सुरंग की जानकारी केवल मुझे ही है। कुन्दसेन को उसकी कोई जानकारी नहीं है।

बात मिरी मानो यदी, तुरतहि उठ लीजै।
प्राण बचाने के लिये, इत ते भग दीजै।।ख।।

(ख) यदि तुम मेरी बात मानो तो तुरन्त उठो और अपने प्राण बचाने के लिए यहाँ से शीघ्रता से पलायन करो।

धर्म कहे यह नहिं उचित, भागूँ फिर कैसे ?
मरना ही मो श्रेष्ठ है, अग्र कहैं ऐसे।।ग।।

(ग) अग्रसेन जी ने अमात्य के सुझाव का प्रतिवाद करते हुए कहा - हे भद्र! धर्म-नीति के अनुसार ऐसा करना उचित नहीं है। फिर भला मैं यहाँ से कैसे भाग सकता हूँ ? अग्रसेन जी ने कहा- इससे तो मेरे लिये मरना ही श्रेष्ठ है।

माँ भाई प्रियजन प्रजा, को छोड़ूँ कैसे?
दुष्ट सतायेगा इन्हें, कहा करूँ कैसे?।।घ।। (40)

(घ) अरे, मैं अपनी माता, अपने भ्राता तथा अपनी प्रिय प्रजा को इसके भरोसे कैसे छोड़ दूँ? यह दुष्ट इन्हें फिर सताएगा ? मेरी समझ में नही आ रहा है कि मैं क्या करूँ ? और कैसे करूँ ? (40)

चौ0 : माँ-भाई की चिंता छोड़ो। निज हित से बुद्धी को जोड़ो।।
राजमहल से उन्हें निकाला। राजपुरोहित सब कर डाला।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि तब अमात्यश्री ने कहा हे चिंतितमना! आप अपने माता-भ्राता की चिंता छोड़िये। इस समय आप केवल अपने हित में ही अपनी बुद्धि को लगाइये। राजपुरोहित जी ने पहले ही उन्हें राजमहल से बाहर निकाल दिया है।

हे नृप! अब चिंताँ को तजिये। मुक्ति-प्रभु को मो सँग भजिये।।
उचित राय पौरुष डटकर रन।अदृश पलायन आपत में धन।।

(2) हे राजन्! अब आप सारी चिंताओं को त्यागकर मेरे साथ उस मुक्ति-प्रभु का भजन कीजिये। हे राजन्! कठिनाई में उचित परामर्श, युद्ध के मैदान में डटकर पौरुष-प्रदर्शन, शत्रु के हाथ पड़ जाने पर छिपकर बचकर निकल जाना और आपत्तिकाल में अपने पास का ही धन ही व्यक्ति के काम आता है।

अग्रसेन तब शीष झुकाया। स्वामिभक्त को यह मत भाया।।
बन्धन काटे अग्रसेन के। सुरँग से निकले बिन कण्टक के।।
देखा उनको नहीं किसी ने। अग्र गया भग कहा किसी ने।।
पूर्व नियोजित था यह सबही। शंका मंत्रिहि काउ न हुवही।।

(3.4) तब अग्रसेन जी ने अपना शीश झुकाया। अग्रसेन जी का यह निर्णय उस स्वामिभक्त को बहुत अच्छा लगा। अमात्यश्री ने बन्दी अग्र के बन्धनों को काट डाला। उन दोनों को वहाँ से भागकर जाते हुए किसी ने नहीं देखा। तभी किसी ने शोर मचा ही दिया - देखो, बन्दी भाग गया। चूँकि यह सब पूर्वनियोजित था इसलिये किसी को कोई शंका नहीं हुयी।

भेद न लेकिन छुप पाता है। छलिया दण्ड अवश पाता है।।
गर्दन काटी राज्य-भक्त की। स्वामिभक्त की वृहत्भक्त की।।

(5) लेकिन ध्यान रहे, भेद कैसा भी हो ? छिप नहीं पाता। छलिया दण्ड अवश्य पाता है। कुन्दसेन ने राज्यभक्त-स्वामीभक्त वृहद्भक्त अमात्यश्री की गर्दन काट ही दीन्ही।

दो0 : बड़े भाग्य सों मिलत है, गुणग्राही स्वामी।
उससे भी अति कठिन है, सेवक गुणग्रामी।।क।।

(क) गुणग्राही स्वामी बड़े भाग्य से मिलता है। लेकिन उससे भी अधिक कठिन है गुणग्रहण करने वाले सेवक का मिलना।

स्वामी हित सेवक करे, निज प्राणन उत्सर्ग।
"विष्णुदास" वाकूँ मिलै,निश्चित उत्तम सर्ग।।ख।। (41)

(ख) विष्णुदास कहते हैं कि जो सेवक अपने स्वामी के रक्षार्थ अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देता है, उसे निश्चित ही उत्तम स्वर्ग की प्राप्ति होती है। (41)

चौ0 : कुंदसेन तब कहा कटकु से। वन को घेरो चहूँ ओर से।
एकत्रित करिये लकड़ों को।शुष्क काष्ठ अरु फूस तृणों को।।

चौ0 : (1) तब कुन्दसेन ने अपनी सेना से कहा - जाओ और वन को चारों ओर से घेर लो। बड़े-बड़े लकड़ों को, सूखी लकड़ियों को घास-फूस तथा तृणों को इकट्ठा करो।

फिर इसमें तुम आग लगा दो। अग्र का झण्झट दूर भगा दो।
वन के जीव लगे सब जलने। उधर अग्र लागे कर मलने।

(2) फिर उसमें आग लगा कर सदा के लिये अग्रसेन का झण्झट दूर भगा दो। इधर तो अग्नि से वन के जीव जलने लगे और उधर अग्रसेन जी गुस्से से अपने हाथों को मलने लगे।

छिपे थे थककर एक गुफा में। रोवत जाते अती व्यथा में।।
धूम्र से व्याकुल हो गइ सेना। वन से भाग गई सब सेना।।

(3) थकान के कारण अग्रसेन जी पेड़ों से बनी एक गुफा में जाकर छिप गये थे। वन के जीव-जन्तुओं को अपने कारण मरता हुआ देखकर श्री अग्र व्यथित होकर रोये जा रहे थे। उस दुष्ट की सेना जब धुएँ से बेचैन हो उठी तो वह जानबचाकर उस जंगल से भाग गयी।

महातेजस्वी अनँगपाल थे। जो वल्लभ के संबंधी थे।।
छिपकर पहुँचे अग्र-पास में। मैं तव फूफा कहा कान में।।

(4) महातेजवान अनंगपाल स्वर्गीय महाराज वल्लभसेन जी के एक सम्बन्धी थे। वह छिप छिपाते हुए अग्र के पास पहुँचे और फुसफुसाते हुए उनके कान में बोले- कि मैं तुम्हारा फूफा हूँ।

दो0 : मूढ़मते कुँदसेन की, बुद्धी हो गइ मन्द।
सो मैं उसको तज दिया, पुत्र अग्र गुलकंद।।क।।

दो0 : (क) दुर्बुद्धिवाले कुन्दसेन की बुद्धि मंद अर्थात् स्वार्थ में लिप्त हो गयी है। इसलिये गुलकंद जैसे मीठे पुत्र अग्र! मैंने उसका त्याग कर दिया है।41

लौटा नहिं होगा अभी, ढूँढ़ रहा होगा।
सो मृत-भूमी छोड़कर, अग्र चलो वेगा।।ख।।

(ख) वह अभी वन से लौटा नहीं होगा। वह तुम्हें ही ढूँढ रहा होगा। इसलिये मृतभूमि को छोड़कर यहाँ से जल्दी निकल चलो बेटा।

जनमेजय पूँछा गुरहि, वन जल जाने पर।
अग्र जला नहिं क्यों प्रभो ? कहो कथा हितवर।।ग।।42।।

(ग) जनमेजय ने पूँछा – हे गुरुवर! वन के जल जाने पर श्री अग्रसेन क्यों नहीं जले ? इस हितकारी रहस्य को भी मुझे बतलाइये प्रभो। (42)

चौ0 : दैवयोग से पवन चला तब। अग्नी का रुख पलट गया सब।।
सो रह पूर्ण सुरक्षित अग्रज। बाल न बाँका हूआ अग्रज।।

चौ0 : (1) जैमिनी जी ने बतलाया – हे जनमेजय ! दैवयोग से उस समय पवन चलने लगा था जिससे अग्नि का रुख विपरीत दिशा की ओर पलट गया। इसलिये अग्रसेन जी बच गये। उनका बाल भी बाँका नहीं हुआ।

जैसे लंका जल गइ सारी। भक्त विभीषण बचे सुखारी।।
शेष सैनिकन्ह अग्रहि देखा। ढाल खड्ग सँग करत परेखा।।

(2) जिस प्रकार लंका तो सारी जल गई। (भक्तों को सुख देने वाले) भक्त विभीषण ही जीवित बच रहे। वन में डटे हुए शेष सैनिकों ने जब अपने दोनों हाथों में ढाल और खड्ग लेकर आते हुए अग्रसेन जी को देखा तो वे उन्हें परखने लगे कि वह अब क्या करेंगे ?

कालस्वरूप अग्र थे उस पल। भागन लागे सब मय प्राणन।।
अग्र वेग से आगें आये। भय से सब सैनिक घबड़ाए।।

(3) उस पल अग्रसेन जी साक्षात् कालस्वरूप थे। शत्रु का दल जान बचाने के लिये इधर-उधर भागने लगा। अग्र तेजी से आगें की ओर आये जिससे भयभीत सैनिक घबड़ा उठे।

वज्रसेन शूरन सँग धाया। कहा अग्र से रुक मैं आया।।

(4) तभी वज्रसेन अपने शूरवीरों के साथ श्री अग्र की ओर दौड़ा और बोला – रुक, तू रुक मैं अभी आया।

छोड़े दस शर वज्र अग्र पै। वीर ने लीन्हा उन्हें खड्ग पै।।
चहूँ ओर से अग्रहि घेरे। अभिमन्यू जस कौरव घेरे।।

(5) वज्रसेन ने दस बाण आग्रसेन जी की ओर छोड़े जिन्हें वीर अग्र ने अपने खड्ग पर ले लिया। उन तथाकथित वीरों ने अग्रसेन जी को उसी प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कौरवों ने अभिमन्यू को घेरा था।

दो0 : लक्ष्य शौर्य बल शस्त्र में, नहिं कोई सम अग्र।
फुर्ती में भी कोइ ना, देख भए रिपु व्यग्र।। (43)

दो0 : लक्ष्य, शौर्य, बल तथा शस्त्र-विद्या में उनमें से काई भी वीर अग्र के समान नहीं था। फुर्ती में तो कोई था ही नहीं। यह देखकर रिपु सैनिक व्यग्र हो उठे। (43)

चौ0: तब असि अनँगपाल से लीन्ही। लौह कठोर बनी प्रिय चीन्ही।
पैदल कुन्दसेन ढिंग धाये। जो थे रथ से शर बरसाये।।

चौ0 : (1) तब, कठोर लोहे से बनी हुयी तलवार को फूफा अनंगपाल के हाथों से लेकर अग्रसेन जी पैदल ही कुन्दसेन की ओर दौड़े जो रथ से उनकी ओर वाणों को बरसा रहा था।

शीर्ष-सारथी धड़ से काटा। रथ को असि से तिल-तिल छाँटा।।
रक्षक दल को ढेर कर दिया। कुन्दसेन का हाथ ले लिया।।

(2) अग्रसेन जी ने कुन्दसेन के रथ के सारथी के सिर को धड़ से अलग कर दिया। साथ ही रथ को तलवार से तिल-तिल कर दिया। ऐसा लगा कि किसी कुशल हलवाई ने रथरूपी बेसन को लड्डुओं के लिए महीन-महीन छाँटा हो। रक्षक-दल को ढेर करके उन्होंने अपनी तलवार से काका कुन्देसन का दाँया हाथ काट डाला।

हाहाकार मची सेना में। व्याकुलता फैली सेना में।।
दूसर कर में ले तलवारा। कुन्दन अनँगपाल संघारा।।

(3) शत्रु सेना में हाहाकार मच गई और उनमें पहले से अधिक व्यग्रता फैल गयी। बहादुर कुन्दसेन ने भी तुरन्त ही अपने दूसरे हाथ में तलवार ले ली और अपने बहनोई अनंगपाल का वध कर डाला।

अग्र कुन्द के पीछे दौड़ा। भागा कुन्द बैठ निज घोड़ा।।
सेना जान बचाकर भागी। अग्र रुके फूफा ढिंग लागी।।
(4) अब अग्र कुन्द के पीछे दौड़े। परन्तु कुंद घोड़े पर बैठकर अपनी जान बचाकर तेजी से वहाँ से भाग गया। सेना भी जान बचाकर भागने लगी। अग्रसेन भी शत्रु के पीछे दौड़े परन्तु जैसे ही उन्होंने फूफा जी को भूमि पर गिरते हुए देखा तो वह वहीं ठहर गये।

दो0: अग्रसेन रोवन लगे, देख दशा फूफा।
वीरगती को प्राप्त कर, बस गए उर फूफा।। (44)
दो0 : अपने इकलौते प्रिय फूफा अनंगपाल की दशा को देखकर अग्रसेन रोने लगे। फूफा जी वीरगति को प्राप्त होकर सदा के लिये भतीजे के हृदय में बस गये। (44)

चौ0: आगें बढ़ते गये अग्र फिर। हितकारिन का सुमिरन कर कर।।
वन में सिंह चीते रुरु मृग थे। व्याघ्र जंगली भैंसे भी थे।।
चौ0 : (1) जैमिनी जी कहते हैं कि फिर अपने प्रियजनों का स्मरण करते हुए अग्रसेन जी वन में आगें की ओर बढ़ते गये। उस वन में सिंह, चीते, रुरु मृग, व्याघ्र और जंगली भैंसे भी थे।

कँदराओं में म्लेच्छ बसत थे। नाग पिशाच भीमरूपहु थे।।
पार अन्त में सरिता कीन्ही। जो प्रतापपुर सीमा चीन्ही।।
(2) कंदराओं में म्लेच्छों का निवास था। विभिन्न नागों तथा बड़े भंयकर पिशाचों का भी वहाँ डेरा था। अन्त में उन्होंने प्रतापनगर के सीमा-चिह्न रूपी सरिता को पार कर दिया।

विषम मार्ग तज समतल आए। फेर बालुका वन पधराए।।
शिला विशाल स्वर्णमय देखी।अति विस्मय सँग करत परेखी।।
(3) वह नदी कूर्म, ग्राह और मछलियों से भरी हुयी थी। टापुओं के कारण नदी की शोभा अवर्णनीय थी। अब अग्रसेन जी विषम मार्ग को छोड़कर समतल मार्ग पर आ गये। उसके बाद वह बालुका वन में पधारे।

अग्र कुन्द के पीछे दौड़ा। भागा कुन्द बैठ निज घोड़ा।।
सेना जान बचाकर भागी। अग्र रुके फूफा ढिंग लागी।।

(4) अब अग्र कुन्द के पीछे दौड़े। परन्तु कुंद घोड़े पर बैठकर अपनी जान बचाकर तेजी से वहाँ से भाग गया। सेना भी जान बचाकर भागने लगी। अग्रसेन भी शत्रु के पीछे दौड़े परन्तु जैसे ही उन्होंने फूफा जी को भूमि पर गिरते हुए देखा तो वह वहीं ठहर गये।

दो0: अग्रसेन रोवन लगे, देख दशा फूफा।
वीरगती को प्राप्त कर, बस गए उर फूफा।। (44)

दो0 : अपने इकलौते प्रिय फूफा अनंगपाल की दशा को देखकर अग्रसेन रोने लगे। फूफा जी वीरगति को प्राप्त होकर सदा के लिये भतीजे के हृदय में बस गये। (44)

चौ0: आगें बढ़ते गये अग्र फिर। हितकारिन का सुमिरन कर कर।।
वन में सिंह चीते रुरु मृग थे। व्याघ्र जंगली भैंसे भी थे।।

चौ0 : (1) जैमिनी जी कहते हैं कि फिर अपने प्रियजनों का स्मरण करते हुए अग्रसेन जी वन में आगें की ओर बढ़ते गये। उस वन में सिंह, चीते, रुरु मृग, व्याघ्र और जंगली भैंसे भी थे।

कँदराओं में म्लेच्छ बसत थे। नाग पिशाच भीमरूपहु थे।।
पार अन्त में सरिता कीन्ही। जो प्रतापपुर सीमा चीन्ही।।

(2) कंदराओं में म्लेच्छों का निवास था। विभिन्न नागों तथा बड़े भंयकर पिशाचों का भी वहाँ डेरा था। अन्त में उन्होंने प्रतापनगर के सीमा-चिह्न रूपी सरिता को पार कर दिया।

विषम मार्ग तज समतल आए। फेर बालुका वन पधराए।।
शिला विशाल स्वर्णमय देखी।अति विस्मय सँग करत परेखी।।

(3) वह नदी कूर्म, ग्राह और मछलियों से भरी हुयी थी। टापुओं के कारण नदी की शोभा अवर्णनीय थी। अब अग्रसेन जी विषम मार्ग को छोड़कर समतल मार्ग पर आ गये। उसके बाद वह बालुका वन में पधारे।

शोकयुक्त दुखकृषित उदासहि। अंग अंग में पीड़ा होवहि।।
धूल धूसरित केश हो गये। थककर एक शिला तल बिठये।।

(4) वहाँ बालुका वन में उन्होंने स्वर्णमयी विशाल शिलाओं को देखा। विस्मय से उन्हें देखकर वे वहाँ का वातावरण परखने लगे। उस समय शोक ग्रस्त, दुख से और दुखी उदास मना अग्रसेन जी के अंग-अंग में भयंकर पीड़ा हो रही थी। उनके बाल धूल से सन गये थे। थकान के कारण अग्रसेन जी एक शिला के नीचे बैठ गये।

दो0 : चिंता ग्रस्तऽति हो गये, याद करत इतिहास।
अग्रसेन मन सोचते, सो गए धर उपवास।।क।।

दो0 : (क) अपने पूर्व इतिहास को याद करते रहने से अग्रसेन जी पुनः चिंताग्रस्त हो गये। मन में सोच करते-करते आखिर में बिना कुछ खाये-पिये उपवास रखकर वह वहीं सो गये।

ऋषि जनमेजय से कहैं, मन हूआ भारी।
कर लूँ कुछ विश्राम मैं, फिर कहुँ आगारी।।ख।।

(ख) जैमिनी ऋषि नृप जनमेजय से कहते हैं कि अब मेरा भी मन भारी हो रहा है। कुछ देर विश्राम करने के बाद ही मैं आगे की कथा कह पाऊँगा।

पर दुख में जो नहिं दुखी, वो नहि है इन्सां।
पर हम सब असहाय हैं, कहा करे इन्सां?।ग।।

(ग) दूसरे की दुख से जो दुखी ना हो उसे इन्सान नहीं कहा जाता। पर हम सब असहाय हैं। इन्सान करे तो क्या करे ?

जितना संभव हो सके, उतना तो करिये।
सबका नहिं तो एक का, दुक्ख सदा हरिये।।घ।।

(घ) जितना सम्भव हो सके आप उतना तो करिये ही। अरे, सबका नहीं तो कम से कम किसी एक का दुख तो दूर करिये ही।

हर कोई आधीन है, ईश्वर के राजन।
धर्म कर्म रत सो रहो, कहते दुखभाजन।।ड.।।(45)

(ङ) हर व्यक्ति ईश्वर के आधीन है। इसलिये व्यक्ति को चाहिये कि वह सदा धर्म-कर्म करता रहे। दुख का भंजन करने वाले महात्माओं का ऐसा ही कहना है।(45)

अध्याय छः 'कारागृह से मुक्ति' पूर्ण हुआ।

:::::::

निवेदन

दो0: अग्रसेन सा पुत्र हो,यदि सबके घर में।
मात-पिता सुख पावते, बात रखो उर में।।क।
एक पुत्र हो आपका, दीजे सारा ज्ञान।
शस्त्र-शास्त्र व्यवसायमति, होय सफल सँग मान।।ख।।
राजनीति में भाग लो, क्षत्रिय भाव गहो।
ऐसा नहिं कीया यदी, खोत रहोगे अहो!।।ग।।
'मत' डालो सब वैश्यजन, आलस नाहिं करो।
क्योंकी संख्याबल बड़ा, उर यह बात धरो।।घ।।
वैश्य खड़ा यदि है किया, सबकी सम्मति से।
उसे जिताओ प्रेम से, जनसंख्या-गति से।।ड.।।
सत्ता को भी लीजिए, 'ना' ना कभी कहो।
हो सरकारी नौकरी, जैसी मिले गहो।।च।।
धन-सार्थकता है तभी, शक्ती हो जब पास।।
शक्ती सत्ता में बसी, करो न अब उपहास।।छ।।

卐 अध्याय सात (गर्गाचार्य जी से भेंट) 卐

दो० : जनमेजय से ऋषि कहैं, कथा सुनो आगे।
गर्गाश्रम आ गिर पड़े, अग्र महाभागे।।क।।

दो० : (क) जैमिनी! ऋषि नृप जनमेजय से कहते हैं कि अब तुम आगें की कथा को सुनो। महाभाग अग्रसेन जी गर्ग ऋषि के आश्रम में आकर गिर पड़े।

कुलगुरु थे श्रीकृष्ण के, नामकरण जिहि कीन्ह।
कृष्णऽरु संकर्षण यही, नाम इन्हीं का दीन्ह।।ख।।

(ख) गर्गाचार्य जी नन्दराय जी के कुलगुरु थे जिन्होंने श्रीकृष्ण का नामकरण किया था। कृष्ण और संकर्षण ये दो नाम इन्हीं के द्वारा दिये गये नाम हैं।

चौ० : तीक्ष्ण शूल पाँयनहि चुभे थे। पीड़ा अग्रहि अती देत थे।।
पैरों से था रक्त बह रहा। प्रभु ही जाने कैसे सह रहा??

चौ० : (1) अग्रसेन जी के पैरों में तीक्ष्ण शूल चुभे हुए थे जो उन्हें भयानक पीड़ा दे रहे थे। उनके दोनों पैरों से ढेर सारा रक्त बह रहा था। प्रभु ही जानता है कि अग्रसेन जी यह सब कैसे सह रहे थे ?

कहा करूँ अरु कित जाऊँ मैं ? या जीवन तज मर जाऊँ मैं।।
सहसा गार्ग्य मुनी उत पाए। यज्ञ-काष्ठ हित जो वन आए।।

(2) अग्रसेन जी मन में विचार करते हैं कि मैं क्या करूँ? मैं कहाँ जाऊँ? या फिर जीवन त्यागकर मर ही जाऊँ। गर्गाचार्यजी जो उस समय यज्ञ की समिधा के लिये वन को आये हुए थे। अग्रसेन जी ने उन्हें अपने सम्मुख पाया।

दुखी अग्र को देखा मुनि ने। लज्जित क्यों? पूँछा धीमति ने।।
को हो किस कारण इत आये? क्यों लगते हो अति घबराये??

(3) मुनि ने जब दुखी अग्र को देखा तो पूँछा, तुम इतने लज्जित से क्यों हो ? तुम कौन हो ? तुम यहाँ किसलिये आए हो ? तुम इतने डरे-डरे और घबड़ाये हुए से क्यों लग रहे हो ?

मुनि-चरणों में किये प्रणामा। कहा अग्र ने यह मम नामा।।
वल्लभ-सुत युवराज प्रतापहि। भाग्य-प्रकोपे इहि गति पावहि।।

(4) मुनि के चरणों में प्रणाम करके उन्होंने कहा- मेरा नाम अग्रसेन है। मैं प्रतापनगर का युवराज तथा स्वर्गीय महाराज वल्लभसेन जी का पुत्र हूँ। भाग्य के प्रकोप से मैं इस (कु)गति को प्राप्त हुआ हूँ।

दो0 : अति सुख से पाला हमें, पित श्री वल्लभसेन।
स्वर्ग गए महाभारते, छोड़ गए दुख बेन।। (46)

दो0: पिता श्री वल्लभसेन जी ने हमें बड़े सुख से पाला था। महाभारत के युद्ध में वह हमारे लिये दुख के शब्द छोड़कर स्वर्ग को चले गये। (46)

चौ0 : भोगासक्ती ने मति मारी। चित्तहु हरा कुन्द अति भारी।।
कुँद काका हैं पूज्य हमारे। द्वेषयुक्त त्यागा मो हारे।।

चौ0 : (1) अग्रसेन जी मुनि गर्ग से कहते हैं कि - हमारे काका कुन्दसेन जी की मति तो भोग और आसक्ति ने मार दीन्हीं। उनका चित्त भी पूरी तरह से हर लिया गया है। वैसे तो कुन्दसेन काका हमारे बहुत प्रिय हैं परन्तु द्वेष के कारण मुझ हारे हुए का उन्होंने त्याग कर दिया है।

राज्यभिषेक आज मो होगा। ज्योतिष-वाणी देत वियोगा।।
दोष मिरा क्या? मैं नहिं जानूँ। भाग्य छला मो इहि सच मानूँ।।

(2) आज मेरा राज्याभिषेक होगा ? ज्योतिषियों की ऐसी भविष्यवाणी मुझें बार-बार वियोगावस्था की ओर ले जाती है। इसमें मेरा क्या दोष है ? मैं नहीं जानता। मेरे भाग्य ने ही मेरे साथ छल किया है। मैं इसी को सच जानता हूँ।

छल से मो मरवाना चाहा। जंजीरों से भी बँधवाया।।
जन्मभूमि तज इत मैं आया। भाग्य मुझे तव चरनन लाया।।

(3) मेरे काका ने छल करके मुझे मरवाना चाहा। मुझे उन्होंने कठोर जंजीरों से भी बँधवाया। अपनी जन्मभूमि छोड़कर मैं यहाँ आया हूँ। हे मुनिवर! मेरा प्रारब्ध मुझे आपके श्रीचरणों में ले आया है।

इस अनाथ को प्रभू बचाओ। जो हो उचित वही बतलाओ।।
बुद्धी मेरी काम न करती। जीने की इच्छा भी मरती।।

(4) हे प्रभो! इस अनाथ को बचाइये। साथ ही मेरे लिए जो उचित हो वो मुझे बताइये। इस समय मेरी बुद्धि काम नहीं कर रही है। मेरे जीने की सारी इच्छा भी मर गयी है।

दो0 : राज्य ही होते हैं प्रभो, युद्धों के कारण।
क्यों ना दूर करूँ प्रभो, इस युध का कारण।।क।।

दो0 : (क) हे प्रभो ! ये राज्य ही युद्धों के कारण होते हैं। क्यों ना मैं इस युद्ध के कारण को ही दूर कर दूँ?

महाभारत को देखिये, मर गये कितने वीर।
स्त्रियाँ विधवा भईं, राज्यहि कारण पीर।।ख।।

(ख) महाभारत को देखिये, इसमें न जाने कितने वीर मर गये और कितनी स्त्रियाँ विधवा हो गयीं? ये युद्ध ही इनकी पीर का मूल कारण हैं।

भीख माँगना है भला, यामै राग न द्वेष।
मेरी मति कहती यही, यामै सुःख हमेश।।ग।।(47)

(ग) हे प्रभो! इसकी अपेक्षा भीख माँगना अधिक श्रेष्ठ है। इसमें ना राग है और ना द्वेष। मेरी बुद्धि यही कहती है। भिक्षा में हमेशा सुख ही सुख है प्रभो! (47)

चौ0 : गर्ग सान्त्वना देने लागे।वचन अग्र से कहँ अनुरागे।।
माया का यह खेल है सारा। हारा जीतत जीतत हारा।।

चौ0 : (1) तब, गर्ग ऋषि दुखी अग्र को सान्तवना देते हुए उनसे अनुरागपूर्ण वचन बोले- ये सब माया का खेल है। कभी हारा हुआ जीत जाता है और कभी जीता हुआ हारने लग जाता है।

सुर नर मुनि सबको यहि मोहे। विष्णू माया काउ न सोहे।।
बीते का क्या शोक है करना? खेल भाग्य का बनन बिगड़ना।।

(2) सुर, नर, मुनि सबको यही मोहित करती है। विष्णुमाया किसी को नहीं सुहाती। अरे! बीते हुए का क्या शोक करना ? यह बनना- बिगड़ना भाग्य का ही तो खेल है।

जो प्राणी पुरुषार्थ न करई। भिक्षुक या सन्यासी हुवई।।
दोषयुक्त कर्मन में लिपई। जीवन उसका सुफल न कतई।।

(3) जो प्राणी पुरुषार्थपूर्ण कर्म न करके भिक्षुक या सन्यासी का रूप धारण करके यदि दोषयुक्त कर्म में लिप्यमान हो जाता है तो उसका जीवन कभी सुफल नहीं होता।

जो प्राणी दुर्बल कातर हैं। कर्म करन को नहिं समर्थ हैं।।
संन्यासी बन धर्म विनष्टत। अग्रसेन! यह मेरा है मत।।

(4) जो प्राणी दुर्बल या कातर हैं या फिर कर्म करने में सामर्थ्यवान नहीं है ऐसे प्राणी सन्यासी बनकर धर्म का विनाश करने वाले समझे जाते हैं। हे अग्रसेन! यह किसी और का नहीं बल्कि मेरा अपना निजी विचार है।

दो0 : परऽक्रमरहितऽसमर्थ जो, डरपोकहु निस्तेज।
यश पुरुषार्थहु नाशता, धैर्यहीन बिन तेज।।क।।

दो0 : (क) जो पराक्रम से रहित है, जो सामर्थ्यवान नहीं है, जो डरपोक और कायर है या फिर जो तेज से रहित है। ऐसे बिना तेज वाले धैर्यहीन व्यक्ति का यश और पुरुषार्थ नष्ट हुआ ही समझो।

प्राप्त करैं तपश्रेष्ठ से, मुनिजन जिहि अमरत्व।
पराक्रम से निज क्षत्रि वो, प्राप्त करैं गुण-तत्व।।ख।।

(ख) मुनिजन जिस अमरत्व को महान तपस्या से प्राप्त करते हैं, उस गुण-तत्त्व को क्षत्रिय अपने पराक्रम से प्राप्त कर लेता है।

महाक्लेश जो है मिला, तुमको स्वजनन से।
चिन्ता छोड़ो अरु उठो, दूर करो बल से।।ग।।(48)

(ग) हे अग्र! तुम्हें अपने सम्बन्धियों से जो महान दुख मिला है अब उसकी चिंता छोड़ो। उठो और उन्हें अपने पराक्रम-बल से प्राप्त कर लो। (48)

चौ0 : विषम परिस्थिति कैसिहु आवै। सदाचार मन में पधरावै।।
स्वर्ग राज्य दोनों मिल जावैं। संशय यामै तनिक न लावैं।।

चौ0 : (1) गर्गाचार्य जी कहते हैं - हे अग्रसेन! आपके जीवन में कैसी भी विषम परिस्थिति उत्पन्न हो जाये? आप सदाचार को ना छोड़ें। सदाचार से स्वर्ग और राज्य दोनों की प्राप्ति सम्भव है। इस विषय में किसी को कोई शंका नहीं करनी चाहिये।

व्याकुलता जिसके चित भैया। आश्रम उसकी सच्ची छैया।।
आशा होती अति बलवाना। इससे दामन नहीं छुड़ाना।।

(2) जिस प्राणी के हृदय में व्याकुलता छा जाये उस समय आश्रम ही उसकी सच्ची छैया है। आशा बहुत बलवान होती है। आशा कभी नहीं छोड़नी चाहिये।

अकर्मण्यता को तज दे तू। मन में आशा-दीप जला तू।।
तुझे राज्य यश कीर्ति मिलेंगे। सिद्ध मनोरथ निश्चित होंगे।।

(3) हे पुत्र! तू अकर्मण्डयता को त्यागकर अपने मन में आशा का दीप जला। तुझे तेरा राज्य तो मिलेगा ही। तुझे यश-कीर्ति भी प्राप्त होंगे। तेरे सारे मनोरथ निश्चित ही सिद्ध होंगे।

क्षत्रिन ने बल प्राप्त किया है। ऋषियन-आश्रम में जो जिया है।।
सुरथ समाधी रामऽरु सीता। लव-कुश पाण्डव हे मनजीता!।।
थोड़ा समय यहाँ रहकर तुम। करु अभ्यास परम विद्या तुम।।

(4) जिन क्षत्रियों ने आश्रमों में जीवन जिया है। उन्होंने वहीं से बल प्राप्त किया है। फिर चाहे राजा सुरथ हों या फिर समाधि वैश्य, चाहे श्रीराम हों या फिर माता सीता, चाहे लव-कुश हों या फिर पाण्डव। हे मनजीते! तुम थोड़ा समय यहाँ आश्रम में व्यतीत करो और परम विद्या का अभ्यास करो।

दो0 : कायरता उर-अबलता, अरु भय तज उठिये।
करऊँ ऐसा कुछ अवश, जासों तुम पुजिये।। (49)

दो0 : हे अग्रसेन! कायरता, हृदय की दुर्बलता और अपने अन्दर के भय को त्यागो और चैतन्यावस्था को प्राप्त होओ। मैं तुम्हारे लिये अवश्य ही ऐसा कुछ करूँगा जिससे तुम जगत में पूजित हो जाओगे। (49)

चौ0 : तव दरशन वचनन से भगवन। धन्य हुआ अति मेरा जीवन।।
मुख में शब्द न कोई आवै। नव उत्साह मनहिं अति भावै।।

चौ0 : (1) तब चैतन्यमना अग्रसेन जी ने कहा – हे भगवन! आपके दर्शन और कृपापूर्ण वचनों से मेरा जीवन अति धन्य हो गया। आपकी कृतज्ञता ज्ञापित करने के वास्ते मेरे मुख में शब्द नहीं हैं। हे प्रभु! अब मेरे मन में नव उत्साह प्रकट हो आया है।

मुनि के पीछे अग्र चलत गए। गर्गाश्रम वह वेग आ गए।।
आश्रम आकर गर्ग नमन करु।सुत सम अग्रहि मुनि आश्रम धरु।।

(2) मुनि के पीछे चलते हुए अग्रसेन जी गर्ग ऋषि के आश्रम में आ गये। आश्रम में आकर अग्रसेन जी ने पुनः गर्गाचार्य जी को पूर्ण ऋद्धा एवं समर्पण भावना के साथ दण्डवत प्रणाम किया। मुनि ने अग्रसेन जी को पुत्र की तरह आश्रम में प्रवास कराया।

प्रीति पगी दोनों में ऐसी। पिता-पुत्र में होती जैसी।।
आश्रम अग्रहि रुचिकर लागा। मन्द पवन शुभ मन अनुरागा।।

(3) दोनों में ऐसा प्रेम उत्पन्न हो गया जैसा कि पिता और पुत्र के मध्य होता है। अग्रसेन जी को आश्रम रुचिकर लगने लगा। वहाँ बहने वाली मन्द शुभ पवन से मन में अनुराग उत्पन्न होने लगता था।

पुष्प पाख तहँ भाँति-भाँति के। अग्निहोत्र साधन शांती के।।
पुण्य नदी के दर्शन कीये। देवलोक सम आश्रम हीये।।

(4) आश्रम में भाँति-भाँति के पुष्प और पक्षी थे। वहाँ शांति के लिये अग्निहोत्र एवं अन्य साधन किये जा रहे थे। वहाँ बहने वाली पुण्य नदी के दर्शन जब अग्रसेन जी ने किये तब अग्रसेन जी को वह आश्रम देवलोक की तरह लगने लगा।

दो0 : चीते विचरैं संग मृग, तजकर मत्सरता।
व्याघ्र सिंह क्रीड़ा करैं, धेनु संग मुदिता।। (50)

दो0 : उस आश्रम में चीते मत्सरता को त्यागकर हिरन के संग विचरण करते थे। व्याघ्र और सिंह जैसे हिंसक जीव गायों के साथ प्रेम-भाव से क्रीड़ा करते थे। (50)

चौ0 : जीतेन्द्रिय महाभागे तपसी। स्वर्गलोक के मुनि अभिलासी।।
सब अपने कर्मों में रत थे। आसक्ती से सभी विरत थे।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि गर्ग ऋषि के उस आश्रम में इन्द्रियों को जीतने वाले महाभाग्यशाली, बड़े-बड़े तपस्वी और स्वर्गलोक की इच्छा रखने वाले मुनिजन आसक्ति से विरक्त होकर अपने-अपने कर्मों में संलग्न थे।

वेद वहाँ पढ़ते थे ऋत्विज। यज्ञभिज्ञ यजु वेद विशेषज।।
ब्रह्मचारि ब्रह्म-चर्चा करते। साम अथर्व गान ऋषि करते।।

(2) ऋत्विज वहाँ वेदों का अध्ययन करते थे। यज्ञभिज्ञ यज्ञों में तथा वेदुच्छुक यजुर्वेदादि में विशेषज्ञता प्राप्त करते थे। ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्या में रत रहते थे तथा ऋषियों के समुदाय सामवेद और अथर्ववेद का सस्वर गायन करते थे।

ऋषिपत्नी ऋषिपुत्र सभी तहँ। तपसी साधू भी देखे तहँ।।
अग्रसेन आश्वस्त हो गये। जीवन के प्रति भावुक हो गये।।

(3) वहाँ ऋषियों की पत्नियाँ और उनके पुत्र भी थे। तपस्ती एवं साधू भी वहाँ देखे गये। ये सब देखकर और आश्वस्त होकर अग्रसेन जी अपने भावी जीवन की सोचकर भावुक हो उठे।

अग्रसेन आश्रमजन प्रणमइ। शुभ आशीष सबन्ह तें लेवइ।।
पर्णकुटी में रहवन लागे। ज्ञान गहैं ऋषि सैं सनुरागे।।

(4) अग्रसेन जी ने सभी आश्रमवासियों को प्रणाम किया और उनसे उनका शुभाशीष प्राप्त किया। अब वह पर्णकुटी में रहने लगे। अग्रसेन जी ऋषिवर से अनुरागसहित ज्ञान की शिक्षा लेने लगे।

दो0 : जिहि घर तपसी सिध रहैं, हवन होत विधि संग।
मंगल बसता नित वहीं, होत न रँग में भंग।।क।।

दो0 : (क) जिस किसी के भी घर में तपस्वी या साधुओं का वास हो या फिर जहाँ विधिसहित हवन होता हो, वहाँ मंगल का बसेरा होता है। वहाँ कभी रंग में भंग नहीं पड़ता।

गर्गाश्रम स्थान जहँ, सुख-शांती मिलती।
प्रभु -प्राप्ती भी होत सिध, उर-कलियाँ खिलतीं। ख

(ख) गर्गाश्रम एक ऐसा पुण्यस्थल है जहाँ सुख और शांति मिलती है। परमात्म-प्राप्ति भी यहाँ सम्भव है। उदास हृदय में सुख की कलियाँ भी यहाँ खिलने लगती हैं।

ऋषि जनमेजय से कहैं, कुछ विशेष होवहि।
"विष्णुदास" जब संत से, मिलन होत आपहि।।ग।।(51)

(ग) जैमिनी ऋषि नृप जनमेजय को सावधान करते हुए कहते हैं कि अब कुछ विशेष घटना घटने वाली है। विष्णुदास कहते हैं कि ऐसा तब सम्भव होता है जब किसी संत से अपने आप आपकी भेंट हो जाये। (51)

अध्याय सात 'गर्गाचार्य जी से भेंट' पूर्ण हुआ।

::::::::

(दोहे के अन्त में गाइये)

अग्रवर अग्रसेन पद गहि शरणम्
लक्ष्मी हरि ओम जय विश्वेश्वर
जय करुणेश्वर जय समतेश्वर

卐 अध्याय आठ (तपस्या) 卐

दो0 : शोकयुक्त युव अग्र को, जब देखा मुनि ने।
हितकारी अरु शुभ कथा, गर्ग लगे कहने।।क।।

दो0 : (क) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि जब मुनि गर्गाचार्य ने युवा अग्र को शोक से युक्त देखा तो वह उनसे एक हितकारी और शुभ कथा कहने लगे।

चिंता चिता समान है, इनसे दूर रहो।
एक जलाती चित्त को, दूजी नूर अहो।।ख।।

(ख) हे अग्र! चिंता और चिता दोनों समान हैं। चिंता चित्त को जलाती है और चिता नूर अर्थात् रूप के मद को जला डालती है।

ना निराश उत्साह ही, है समृद्धि कारण।
परमं सुख-आधार भी, कर्महु रत कारण।।ग।।

(ग) समृद्धि का कारण निराशा नहीं बल्कि उत्साह है। उत्साह ही सुख का परम आधार है। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह निराशा से उबारने सम्बन्धी कर्मों को करता रहे।

कार्य सफल होता तभी, जब हो उर उत्साह।
तज विषाद धीरज धरो, आतम बलहु अथाह।।घ।।

(घ) उत्साह से युक्त हृदय होने पर ही कार्य में सफलता मिलती है। अतः तुम विषाद को त्यागकर धैर्य धारण करो साथ ही अपने आत्मबल को भी जागृत करो।

दुख अति होवै दूर मम, सो उपाय कहिये।
असमंजस सी स्थिती, विवेक न मति रहिये।।ङ।।

(ङ) तब युवा अग्रसेन जी ने निवेदन किया - हे गुरुवर! आप मुझे कोई ऐसा उपाय बतलाइये जिससे मेरा यह महान दुख नष्ट हो जाये। इस समय मेरी असमंजस की सी स्थिति है। विवेक भी मेरी बुद्धि का साथ नहीं दे पा रहा है।

गर्ग कहैं सुत अग्र से, कथा पतित पावन।
मार्कण्डेय ने जो कहा, वो उत्तम आख्यान।।च।।

(च) तब मुनि गर्ग अग्र सुत को एक पतितपावनी कथा कहने लगे। वह उत्तम आख्यान जिसे मार्कण्डेय मुनि ने राजा सुरथ और समाधि वैश्य से कहा था।

नोट :-दुर्गा सप्तशती में अध्याय 1 श्लोक 1 से 58 तक पढ़ें तथा अध्याय 5 में श्लोक 12 से 82 तक पढ़ें।

मेधा ऋषि से पूँछते, सुरथ जोड़ द्वय हाथ।
पूजा किहि रूपहिं करूँ ? देवी हो मम साथ।।छ।।

(छ) राजा सुरथ और समाधि वैश्य हाथ जोड़कर मेधा मुनि से प्रश्न करते हैं - हे मुनिवर! मैं (हम) देवी जगदम्बे की किस रूप की पूजा करूँ (करें) जिससे देवी की कृपा (उसका साथ) हमें प्राप्त हो जाये।

यह रहस्य अति गोपनीय, कहा न सबहिन जाय।
पर तुममें भक्ती भरी, सो कहुँ अति मन भाय।।ज।।

(ज) मेधा मुनि ने उत्तर देते हुए कहा, हे भक्त (तों)! देवी के इस अति गोपनीय रहस्य को हर किसी से नहीं कहा जा सकता। क्योंकि तुममें अत्यन्त भक्ती का वास है इसलिये मन को अत्यन्त भाने वाली इस पतितपावनी एवं परम कल्याणकारी कथा को मैं तुमसे कहता हूँ।

छ0 : त्रिगुणमयि परमेश्वरी महालक्ष्मि आदी कारणहिं।
दृश अदृश्यहिं रूप से जग व्याप्त करुँ माँ स्थितहिं।।
सौभाग्यशालिनि कांतिरूपा सत्य अरु सनातना।
सैहस्त्र भुज पर चतुर्भुज में ही उचित है पूजना।।(1)

छन्द : (1) हे राजा सुरथ और समाधि वैश्य। त्रिगुणमयी परमेश्वरी माता महालक्ष्मी ही सबका आदि कारण हैं। माता अपने दृश्य अदृश्य रूप में इस सकल जगत को व्याप्त करके सबमें स्थित हैं। माता कांतिरूपा हैं। माता महालक्ष्मी सौभाग्य शालिनी, सत्य और सनातनी हैं। वैसे तो माता की सहस्त्रों भुजाएँ हैं किंतु माता को चतुर्भुज रूप में ही पूजना श्रेष्ठ है।

चक्र गऽदा शंखयुत वरदायिनी महालक्ष्मी।
पद्म कमला श्री तुमहि रुकमाम्बुजासन धारिणी।।

भगवान विष्णू संग माता जग का तुम पालन करो।
भक्ति सँग जो पूजते त्रय लोक उन हित वश धरो। (2)

(2) वरदायिनी माता महालक्ष्मी शंख, चक्र और गदा को धारण करने वाली हैं। हे रुकमाम्बुज आसन को धारण करने वाली माता! आप ही पद्मा, कमला एवं श्री देवी हैं। हे माता! भगवान विष्णु के साथ आप सकल जगत का पालन करती हो। हे माता! जो भक्त भक्तिसहित आपकी पूजा करते हैं, आप तीनों लोकों को उनके वश में कर देती है।

निर्गुण सगुण नाना प्रकारे रूप माता तू धरे।
हर नाम में वर्णन तुम्हारा पूर्णतः माँ को करे?।
मेधा मुनी से सुनके इस अति गोपनीय रहस्य को।
नृप सुरथ अरु वैश्य दोनों चल पड़े तप करन को।।(3)

(3) हे माता! तू कभी निर्गुण, कभी सगुण आदि नाना रूपों को धारण करती है। हे माता! हर नाम में तेरा ही वर्णन है। तेरे सम्पूर्ण नामों का वर्णन भला कौन कर सकता है ? मेधा मुनि से माता के इस अत्यन्त गोपनीय रहस्य को सुनकर राजा सुरथ और समाधि वैश्य तप करने के लिये चल पड़े।

आराधना की आत्म से जगधारिणी प्रमुदित भईं।
राज्य स्थिर सुरथ को पर मोक्ष वैश्यहु दे गईं।।
पऽरम्परागत रूप अरु प्रभाव जो मैंने कहा।
महात्म अति है गूढ़तम जपयोग्य जयदाता महा।।(4)

(4) उन दोनों ने आत्मा से माता की आराधना की। जगधारिणी माता उनसे अति प्रसन्न हुईं। माता राजा सुरथ को स्थिर राज्य और समाधि वैश्य को परम मोक्ष का वरदान देकर अन्तर्ध्यान हो गयीं। गर्ग ऋषि कहते हैं – हे अग्र! माता महालक्ष्मी भगवती जगदम्बा के जिस परम्परागत रूप और प्रभाव का वर्णन मैंने तुमसे किया है, उसका महात्म्य अत्यन्त गूढ़ है। यह महात्म्य जपे जाने योग्य है क्योंकि यह महात्म्य ही समस्त जयों को प्रदान करने वाला है।

सर्वमंगलकारिणी पुण्यदायिनी परमं शिवम्।
अऽभीष्ट प्राप्तीकारणा रैऽहस्यमयि आख्यायनम्।।
लक्ष्मी-आराधना सब शोक चिंता मेटती।
आयू बढ़ाती उत्तमोत्तम ऐश्वर परम हू देवती।।(5)

(5) माता का यह शुभ आख्यान सर्वमंगलकारिणी है। यह पुण्यों को देने वाला है। यह परम शिव है। यह रहस्यमयी आख्यान समस्त अभीष्ट प्राप्ती का कारणभूत है। माता महालक्ष्मी की आराधना सारे शोक और चिंताओं को मिटाने वाली है। यह प्रार्थना आयु बढ़ाने वाली और उत्तमों से भी उत्तम एवं परमऐश्वर्यों को प्रदान करने वाली है।

सर्वशक्ती प्राण तुम अरु व्याप्त हो सृष्टी सकल।
प्राणशक्ति व्यवस्थिता शक्तीपरा तुम माँ सकल।।
भगवान विष्णू जगत हित जब जो जो जो हैं सोचते।
उन सबको नारी भाव से माता व्यवस्थित प्रेम ते।।(6)

(6) तब अग्रसेन जी ने कहा- हे माता महालक्ष्मी! आप समस्त शक्तियों की प्राण हैं। आप सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त हैं। हे माता! आप प्राणशक्ति हैं। आप ही सकल जगत को व्यवस्थित करने वाली पराशक्ति हैं। भगवान विष्णु लोक-कल्याण की इच्छा से जब जब जो-जो सोचते हैं उन सबको नारी-भाव से आप ही सुव्यवस्थित करती हो माता।

चर अचर संसार का उद्भव प्रलय कारण है जो।
चिन्तन मनन कर पूजिये रैहस्यमयि है मात जो।।
भूख से पीड़ित जु बालक माँ से भोजन माँगता।
कल्याण की इच्छा से प्राणी लक्ष्मि माँ को ध्यावता।।(7)

(7) जो माता इस चर-अचर संसार का उद्भव, प्रलय और कारण है। जो माता रहस्यों से भी अति रहस्यमयी है उसका चिंतन करिये, उसका मनन करिये और उसकी पूजा करिये। जिस प्रकार बालक भूख से विवश होकर अपनी माता से भोजन की माँग करता है वैसे ही हे माता महालक्ष्मी! मैं अपने कल्याण की इच्छा से आपका ध्यान करता हूँ।

दो0 : प्रकृति परा ऐश्वर्ययुत, करुणाश्रय दात्री।
कृपा से जिसकी होत है, "विष्णु" सकल प्राप्त्री।। (52)

दो0 : माता महालक्ष्मी ही प्रकृति, परा, ऐश्वर्य, करुणा, आश्रय एवं सकल पदार्थों की देने वाली हैं। विष्णुदास कहते हैं कि यदि उसकी कृपा हो जाए तो फिर क्या प्राप्त नहीं हो सकता अर्थात् उसकी कृपा से सब कुछ प्राप्त हो जाता है। (52)

चौ0 : जैमिनि बोले जनमेजय से। अग्र कहैं ऋषि श्रेष्ठ गर्ग से।।
हे हितकारी! जस बतलाया। करुँ वैसा दृढ़ चित भाया।।

चौ0 : जैमिनी ऋषि नृप जनमेजय से कहते हैं कि तब धीरमना अग्रसेन जी ऋषियों में श्रेष्ठ गर्ग मुनि से कहते हैं - हे हितकारी! आपने अभी जैसा मुझे बतलाया है, मैं वैसा ही करूँगा। आपका उपदेश मेरे चित्त में दृढ़ता से स्थापित हो गया है।

आश्रम-माटी-मूर्ति बनाई। मंत्रोक्त विधि 'थापना करायी।।
आश्विन मासे शुक्ल पक्ष में। जप तप प्रारँभ किया दशम में।।

(2) तब महालक्ष्मी जी की मिट्टी की मूर्ति बनाकर विधि सहित मंत्रों का उच्चारण करके आश्रम में माता की स्थापना करायी गयी। आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दसवीं तिथि को माता का जप-तप प्रारम्भ किया गया।

ध्यान किया फिर महालक्ष्मि का।जप तप लीन हुआ उर नृप का।।
मन बुधि आत्महिं विलीन करके। हित इच्छा से निरा संग के।।

(3) फिर अग्रसेन जी ने माता महालक्ष्मी की ध्यान-आराधना प्रारम्भ की। धीरे-धीरे भावी राजा का हृदय जप-तप में लीन हो गया। मन-बुद्धि को आत्मा में विलीन करके अनासक्त भाव से कल्याण की इच्छा करके

पूर्व दुःख तज हो इकाग्रचित। तप में स्थिर हूआ धीमति।।
ऐसा तप जो जन करता है। उसकी कौन नहीं सुनता है?।।

(4) पूर्व के दु:खों को बिसारकर एकाग्रचित्त होकर वह बुद्धिमान तप में स्थिर हो गया। जैमिनी जी कहते हैं कि जो साधक ऐसा तप करता है भला उसकी कौन नहीं सुनता -

दो0 : एक पाँव पर हो खड़ा, तप-रत महायोगी।
घोर तपस्या करत है, नियम से अगयोगी।। (53)

दो0 : एक पाँव पर खड़े होकर, तप में रत महायोगी अग्रसेन माता महालक्ष्मी की घोर तपस्या करने लगे। (53)

(सम्पुट)

छ0 : करते नमन महालक्षमी बस आपको करते नमन।
परिवार सँग हे जगत्माते! आपको करते नमन।।टेक।।

हे माता महालक्ष्मी ! हम आपको केवल आपको ही नमस्कार करते हैं। हे जगत्माते ! हम परिवारसहित बार-बार आपको नमस्कार करते हैं।

अग्रसेन द्वारा महालक्ष्मी स्तवन

पूर्व में रक्षा करी भक्तों की माँ कइ रूप में।
ऋषियों ने जैसी करी वैसे ही मैं मृदुरूप में।।
भूख से बेचैन बेटा जैसे माँ-विनती करे।
वैसे श्रेयस कामना से विनयवत् पत्नी हरे!।।(क)

छन्द : (क) अग्रसेन जी माता महालक्ष्मी-स्तवन का पाठ करते हुए माता से निवेदन करते हैं - हे माता ! आपने पहले भी अपने कई रूपों में भक्तों की रक्षा की है। ऋषियों ने जिस मृदुरूप में आपकी पूजा की है वैसे ही मैं भी करता हूँ। हे माता ! जिस प्रकार क्षुधा से पीड़ित बेटा माँ से विनती करता है वैसे ही हे श्री हरि की पत्नी माता महालक्ष्मी ! अपने कल्याण की इच्छा से मैं आपकी विनय करता हूँ।

शिशु के पोषण हेतु स्तन मुख में जस माँ डालती।
पोषिये हमको भी वैसे मातृरूपे शुभमती!।।
मातृ-अमृत के बिना शिशु फिर भी जीवित रह सके।
आपकी किरपा बिना नहिं कोइ जीवित रह सके।।(ख)

(ख) जैसे शिशु के पोषण हेतु उसकी माँ निस्संकोच अपना स्तन पुत्र के मुख में डाल देती है, वैसे ही हे शुभमते! उसी मातृ रूप में आप हमारा पोषण कीजिये। माता के पय रूपी अमृत के बिना एक बार को शिशु तो जीवित रह सकता है परन्तु हे माता! आपकी कृपा के बिना संसार में कोई भी जीवित नहीं रह सकता है।

आप शाश्वत अम्बिके प्रऽसन्न रूपहु परम अति।
हो मुदित मो दीजिये सिद्धी सभी विषयन सहित।।
आपकी किरपा से वंचित क्यों हूँ भाग्यबनायिनी?
शक्ति अपनी दीजिये पाऊँ जु खोया मानिनी!।।(ग)

(ग) हे अम्बिके! आपका रूप शाश्वत है। आप प्रसन्नरूपा हैं। आप परम से भी परम हैं। हे माता! आप मुझ पर मुदित होकर विषयोंसहित सर्वसिद्धि प्रदान कीजिये। सबके भाग्यों को बनाने वाली हे माता! मैं अब तक आपकी कृपा से वंचित क्यों हूँ ? हे मानिनी! आप मुझे ऐसी शक्ति प्रदान कीजिये जिससे मैं अपना खोया हुआ सब कुछ फिर से पा सकूँ।

जय पराक्रम सर्व परमैश्वर्यऽभीष्ट प्रदायिनी।
फलित होते आपसे ही सत्य सत्यजगायिनी।।
इन्द्र-सुर गृह वासतीं वैसे ही मम गृह आइये।
नमन करता लक्षमी माँ अभयता बरसाइये।।(घ)

(घ) हे माता! आप ही जय, पराक्रम, परम ऐश्वर्य और सकल अभीष्टों की देने वाली हैं। हे सत्य को जगाने वाली माता! सत्य आपसे ही फलित होता है। हे माँ! जिस प्रकार आप देवराज इन्द्र के घर में विराजती हैं उसी प्रकार हे माता! आप मेरे घर में भी वास करें। हे लक्ष्मी माता! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप मुझ पर अपनी अभयता यूँ ही बरसाती रहें।

ऊँकार तुम श्रीपीठ तुम सुखवन्दिते महामाय! तुम।
शंख चक्र गदा जु धारे वो महालक्ष्मी हो तुम।।
होके गरुणारूढ़ कोलासुर को डर से भर दिया।
हों मुदित तो पाप हरतीं सो नमन मैंने किया।।(ङ)

(ङ) हे माता! आप ही ओंकार हैं। श्री पीठ पर आप ही विराजती हैं। हे महामाया! सुख की इच्छा से सब लोग तुम्हारी वन्दना करते हैं। शंख, चक्र तथा गदा को धारण करने वाली हे महालक्ष्मी! आप ही तो हो। गरुण पर सवार होकर तुमने कोलासुरों को भयभीत कर दिया। मुदित होने पर आप अपने भक्तों के पापों का हरण कर लेती हो। हे माता! मैंने इस हेतु ही आपको नमस्कार किया है।

भयभीत करती कोलऽसुर माँ चढ़ गरुड़ जब आवती।
हों मुदित तो पाप हरतीं बात सबहिं सुहावती।।
सिद्धि बुद्धीदायिनी औ भुक्ति मुक्ति प्रदायिनी।
मन्त्रपूता नित्य सर्वैश्वर्य जग की दायिनी।।(च)

(च) हे माता! जब आप गरुण पर सवार होकर आती हो तो कोलासुरों को भयभीत कर देती हो और मुदित होने पर आप उनके पापों का हरण कर देती हो। आपकी यह छवि सबको सुहाती है। आप सिद्धि-बुद्धि तथा भुक्ति-मुक्ति की देने वाली हैं। मंत्रों सी पवित्र हे माता! आप ही संसार के सर्वैश्वर्यों की नित्य प्रदात्री हैं।

सर्वज्ञ माँ वर सर्वदात्री सर्वदुष्ट निवारिणी।
सर्व सिद्धि प्रदातरी हे जगत मुक्त करायिणी।।
आद्यान्त से हो दूर माँ हे आदिशक्ति महेश्वरी!।
योगजा अरु योग से सम्पूर्ण माँ योगेश्वरी!।। (छ)

(छ) हे माँ! आप सर्वज्ञ हैं। आप वरा हैं। आप ही सर्वदात्री और सर्वदुष्ट निवारिणी हैं। जगत से मुक्त कराने वाली हे माता! आप ही सर्वसिद्धियों की प्रदात्री कही जाती हैं। हे आदि शक्ति माता महेश्वरी! आप आदि-अन्त से रहित हैं। हे माता योगेश्वरी! आप योग से उत्पन्न होने वाली और योगों से सम्पूर्ण हैं।

स्थूल तुम अरु सूक्ष्म तुम महारौद्र मऽहाशक्ति तुम।
मऽहोदरा महापाप हरती जो वो देवी वो भि तुम।।
पद्मासने विराजतीं परब्रह्महिं स्वरूपिणी।
परमेश्वरी अरु जगत माता आप ही भविरूपिणी।(ज)

(ज) हे माता! आप स्थूल हैं। आप सूक्ष्म हैं। आप ही महारौद्र महाशक्ति और महोदरा है।। महान पापों को हरने वाली जो देवी हैं वो आप ही हैं माते। आप ही परमब्रह्म स्वरूप में पद्म के आसन पर विराजने वाली हैं। हे परमेश्वरी! आप ही जगत की माता और भवरूपिणी कहलाती हैं।

कनक अम्बर धारिणी नाना अलंकर शोभिनी।
जगत स्थित आपमें हे जगत माता मोहिनी।।
हो प्रसन् माँ! सामने नयनों के मेरे आइये।
कल्याणकारी दर्श देकर श्रेय पद अवगाहिये।।(झ)

(झ) हे कनक अम्बर धारिणी! आप नाना अलंकारों से सुशोभित हैं। हे जगत को मोहित करने वाली माता! यह सारा जगत आप ही में स्थित है। हे माँ! अब आप प्रसन्न होकर मेरे नेत्रों के सम्मुख आ ही जाइये।

पूर्व में भी तव शरण जो आए वो भी धन् भये।
सोचकर यह शरण आया मात हम भी तर गये।।
पुत्र हूँ मैं आपका अरु आप मेरी मा श्रिये!।
स्तनों की धार अमृतमयि से मुझको सींचिये।।(ञ)

(ञ) हे माँ! अब से पहले जो भी तेरी शरण में आये वो सभी धन्य हो गये। मैं यही सोचकर तेरी शरण में आया हूँ कि अब मेरा भी उद्धार हो जाएगा। हे माँ! मैं आपका पुत्र हूँ और आप मेरी श्रिया माता हो। आप मुझे अपने स्तनों की अमृतमयी धारा से सींचिये माता।

दीन अति दीनों में भी मैं तुम दयालुन-अग्रणी।
त्रय लोक में को दूसरा जो दीनता-क्षय-अग्रणी?।।
शरण आया आपकी प्रत्यक्ष दर्शन दीजिये।
हे मात माहालक्षमी! निज सुत पे किरपा कीजिये।।(ट)

(ट) हे माँ! मैं दीनों में अत्यन्त दीन हूँ और आप दयालुओं में सबसे अग्र हो। फिर भला तीनों लोकों में ऐसा कौन है जो दीनता का क्षय करने में आपकी तरह अग्रणी हो ? इस हेतु मैं आपकी शरण में आया हूँ। हे माता महालक्ष्मी! आप प्रत्यक्ष दर्शन देकर अपने इस पुत्र पर कृपा कीजिये।

दो0 : हरि-प्रीया-उर धार कर, अहंकार तजकर।
मौनव्रती समाधिस्थ हो, तप रत माँ चित धर।।क।।

दो0 : (क) श्रीहरि की प्रियाजू को अपने हृदय में धारण करके, अहंकार शून्य होकर तथा मौनव्रती-समाधिस्थ होकर अग्रसेन जी माँ की तपस्या मे रत हो गये।

ग्यारह सौ दिन हो गए, कर तप संयम इत।
जगजननी महालक्षमी, हूईं अति प्रमुदित।।ख।(54)

(ख) जब संयमपूर्वक तप करते-करते अग्रसेन जी को ग्यारह सौ दिन बीत गये तब जगजननी महालक्ष्मी अति प्रसन्न हुयीं। (54)

छ0 : हो मुदित पद्मासने शँख चक्र गऽदा धारके।
सहसा प्रकट भइँ अग्र सन माँ! पीत अम्बर धारके।।
नभ-अँधेरा छिप गया भा दिव्य सब ओरहि हुआ।
म्हामेघ घोर निनाद से गुंजित दिशापुर अति हुआ।(ठ)

छन्द : (ठ) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि मुदित होने पर माता महालक्ष्मी पीत वस्त्रों में शंख, चक्र, गदा धारण करके अचानक अग्रसेन के सन्मुख प्रकट हो गयीं। उस समय नभ का सारा अँधेरा छिप गया। सब ओर दिव्य प्रकाश छा गया। महामेघों के घोर निनाद से समस्त दिशाएँ गुंजायमान हो उठीं।

द्युति दिव्य से प्रऽकाशतीं जस अन् से रवि प्रकाशता।
तेज से देवी के जग घोरंध में अति दमकता।।
मातृ दिव्य प्रभा की द्युति झलमल सी ऐसी झलकती।
(मनु) नभ में तारे टिमटिमाते दीप सहसन भूमि पै।।(ड)

(ड) उस समय माता दिव्य द्युति से प्रकाशमान थीं। जिस प्रकार सूर्य अन्य प्रभा से प्रभामान होता है। देवी के दिव्य तेज से अंधकार में सारा जगत दमकने लगा। माँ के दिव्य प्रभा की द्युति झलमल की तरह चमक रही थी। उस समय ऐसा लगा मानों एक ओर तो आकाश में अनगिनत तारे टिमटिमाने लगे हों वहीं दूसरी ओर पृथ्वी में सहस्त्रों दीपक जलने लगे हों।

विनयि श्री अग्रसेन ने दर्शन किये माँ अम्ब के।
दिव् प्रभामयि तेजमयि आभामयी जगदम्ब के।।
मन इन्द्रि वश में जेहि की उसकी तपस्या सिध भई।
दर्श कर माँ अम्ब के अँख अश्रुपूरित हो गई।।(ढ)

(ढ) विनयी श्री अग्रसेन जी ने दिव्य प्रभामयी एवं दिव्य आभा से युक्त तेजमयी माता जगदम्बे के दर्शन किये। जिसने इन्द्रियों सहित अपने मन को वश में कर लिया था उसकी तपस्या आज सिद्ध हो गयी। माँ के दर्शन करके अग्रसेन जी की आँखे आँसुओं से लबालब हो गयीं।

अऽतृप्त हर्षित नयन सों इकटक वो देखैं मात को।
दर्शन करैं अनुपम छवी के पुनि झुकैं परनाम को।।
गंधर्व सुरगण सिद्धगण तव स्तुती गायन करैं।
पुण्य वायू भूमि बह वर्षा पुहुप मेघा करैं।।(ण)

(ण) अपने कभी न तृप्त होने वाले हर्षयुत नेत्रों से वह एकटक माता को देखे जा रहे हैं। माता की उस अनुपम छवि का दर्शन करके अग्रसेन जी बार-बार प्रणाम करने के लिये झुकते हैं। श्री अग्र कहते हैं- हे माते! गंधर्व, देवता एवं सिद्धों के समुदाय आपका स्तुति गायन करते हैं। तब भूमि पर पुण्य वायु चलने लगती है और आकश से पुष्प-वर्षा होने लगती है।

दो० : हो प्रमुदित माँ ने कहा, सुनो वत्स! मम बात।
तप से अति संतुष्ट हूँ, तव सेवा हू भात।।क।।

दो० : (क) प्रसन्नवदना माँ ने कहा हे वत्स! सुनों! मैं तुम्हारे तप से अति सन्तुष्ट हूँ। मुझे तुम्हारे द्वारा की गई सेवा भी बहुत भायी है।

तप-सिद्धी तुमको भई, सबहि प्रसन्न करो।
सुकृत करो भोगो सुफल, उर आशीष धरो।।ख।।

(ख) हे पुत्र! तुम्हें तप-सिद्धि प्राप्त हो चुकी है। इसलिये अब तुम सबको प्रसन्न करो। तुम अच्छे कर्म करके सुफल भोगो। मेरा यह आशीष तुम अपने उर में धारण कर लो।

तप-प्रभाव से अग्र सुत, आयी मैं सनमुख।
माँगो जो इच्छा तुमहि, होगा मो अति सुख।।ग।।

(ग) हे पुत्र! तुम्हारे द्वारा किये गये इस कठोर तप के प्रभाववश मैं तुम्हारे समक्ष प्रकट हुयी हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो। हे पुत्र! मुझे अत्यन्त सुख होगा।

जो जन करते कामना, कल्पवृक्ष उन्ह सम।
अर्थ धर्म काम्मोक्ष की, दात्री भी तुम हम।।घ।।

(घ) हे माँ! प्राणी जिस-जिस वस्तु की आपसे कामना करता है, आप उसके लिये कल्पवृक्ष के समान हैं। हे माँ! अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष हमें देने वाली आप ही तो हैं।

वर देना चाहैं यदी, दीजे मो यह वर।
तव प्रति भक्ती नित रहे, अविचल अरु स्थिर।।ड.।।

(ङ) हे माता! यदि आप वर देना चाहती हैं तो आप मुझे यही वर दीजिए कि आपके कृपालु चरणों में मेरी भक्ति सदा अविचल रहे।

जीवमात्र के प्रति दया, रहे सदा दिल में।
कर्म करूँ पर ध्यान माँ!, रह तव चरणन में।।च।।(55)

(च) हे माँ! मेरे दिल में जीवमात्र के प्रति सदा दया का भाव भरा रहे। और माँ! मैं कर्म तो करूँ किन्तु मेरा ध्यान सदा तेरे इन श्रीचरणों में ही लगा रहे। (55)

छ0 : जागते अरु सोवते माँ! स्वप्न में ध्याऊँ तुम्हें।
जग की बाधा दूर करु त्रिलोकधीश्वरि नम तुम्हें।।
जो भि सुमिरैं आपको उनका न त्यागन कीजिये।
आप ही महादेवि! दूसर वर ये मुझको दीजिये।।(त)

छन्द : (त) हे माँ! जागते में, सोते में तथा सपने में मैं तेरा ही ध्यान करूँ। हे त्रिलोक की अधीश्वरी। मैं तुम्हें नमस्कार करके यह निवेदन करता हूँ कि आप जगत की सम्पूर्ण बाधाओं को शांत करें। जो व्यक्ति जैसे भी आपका स्मरण करें, आप उन्हें कभी न त्यागें। हे माता महादेवी! आप मुझे यह दूसरा वर प्रदान कीजिये।

तप-प्रभाव से अग्र सुत, आयी मैं सनमुख।
माँगो जो इच्छा तुमहि, होगा मो अति सुख।।ग।।

(ग) हे पुत्र! तुम्हारे द्वारा किये गये इस कठोर तप के प्रभाववश मैं तुम्हारे समक्ष प्रकट हुयी हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो। हे पुत्र! मुझे अत्यन्त सुख होगा।

जो जन करते कामना, कल्पवृक्ष उन्ह सम।
अर्थ धर्म काम्मोक्ष की, दात्री भी तुम हम।।घ।।

(घ) हे माँ! प्राणी जिस-जिस वस्तु की आपसे कामना करता है, आप उसके लिये कल्पवृक्ष के समान हैं। हे माँ! अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष हमें देने वाली आप ही तो हैं।

वर देना चाहैं यदी, दीजे मो यह वर।
तव प्रति भक्ती नित रहे, अविचल अरु स्थिर।।ड.।।

(ङ) हे माता! यदि आप वर देना चाहती हैं तो आप मुझे यही वर दीजिए कि आपके कृपालु चरणों में मेरी भक्ति सदा अविचल रहे।

जीवमात्र के प्रति दया, रहे सदा दिल में।
कर्म करूँ पर ध्यान माँ!, रह तव चरणन में।।च।।(55)

(च) हे माँ! मेरे दिल में जीवमात्र के प्रति सदा दया का भाव भरा रहे। और माँ! मैं कर्म तो करूँ किन्तु मेरा ध्यान सदा तेरे इन श्रीचरणों में ही लगा रहे। (55)

छ0 : जागते अरु सोवते माँ! स्वप्न में ध्याऊँ तुम्हें।
जग की बाधा दूर करु त्रिलोकधीश्वरि नम तुम्हें।।
जो भि सुमिरैं आपको उनका न त्यागन कीजिये।
आप ही महादेवि! दूसर वर ये मुझको दीजिये।।(त)

छन्द : (त) हे माँ! जागते में, सोते में तथा सपने में मैं तेरा ही ध्यान करूँ। हे त्रिलोक की अधीश्वरी। मैं तुम्हें नमस्कार करके यह निवेदन करता हूँ कि आप जगत की सम्पूर्ण बाधाओं को शांत करें। जो व्यक्ति जैसे भी आपका स्मरण करें, आप उन्हें कभी न त्यागें। हे माता महादेवी! आप मुझे यह दूसरा वर प्रदान कीजिये।

जीतत रहूँ नित लोभ मोहऽरु क्रोध को माता श्रिये!।
मन चित्त नित वासा करैं तप सत्य हे माता क्रिये!।।
हे वत्स! सबका हो भला यह भाव तुम अति श्रेष्ठ है।
पूर्ण अभिलाषाएँ होंगी देत वर माँ श्रेष्ठ है।।(थ)

(थ) हे माता श्रिये! मैं नित्य लोभ, मोह और क्रोध पर विजय प्राप्त करता रहूँ। हे क्रियादेवी! तप और सत्य सदा मेरे मन और चित्त में वास करते रहें। तब माता महालक्ष्मी ने कहा- हे वत्स! सबका भला हो। तुम्हारा यह भाव अतिश्रेष्ठ है। हे पुत्र! तुम्हारी सम्पूर्ण अभिलाषाएँ पूर्ण होंगी- तुम्हारी माता तुम्हें यह वर भी प्रदान करती है।

लोकअक्षयवासिनी वर देय अन्तर्ध्यान भइ।
वरदान पा महालक्ष्मि से आश्रम को गति अग्रहि दई।।
सब पाप ताप त्रिविध व सब संतापनाशन स्तवन।
सब क्लेश संकट दूर होते पढ़त जो यह स्तवन।।(द)

(द) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि तभी लोकअक्षयवासिनी देवी वर देकर अन्तर्ध्यान हो गईं और माता महालक्ष्मी से अभिलाषित वर प्राप्त करके अग्रसेन जी आश्रम को चल दिये। यह स्तवन सम्पूर्ण पाप, त्रिविध ताप एवं समस्त संतापों का नाश करने वाला है। जो भक्त इस महालक्ष्मी स्तवन का नियमपूर्वक पाठ करता है उसके सारे संकट और कष्ट शीघ्र मिट जाते हैं।

जिसने शरण लीन्ही है भक्तों! भाव सँग जगदम्ब की।
उसको कभी नहिं छोड़ती है यह शपथ जगदम्ब की।
स्तवन महालक्ष्मि का सब कामना पूरण करे।
संदेह किंचित ना करो, माँ दुख सदा सबके हरे।।(ध)

(ध) जिस किसी ने भक्तिभाव सहित माँ जगदम्बे की शरण गही है माता उसे कभी नहीं छोड़ती। ऐसी माता की शपथ है। यह स्तवन समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। हे भक्तों! आप इस विषय में तनिक भी शंका ना करें। यह स्तवन सदा सबके दुखों को हरने वाला है।

श्रेष्ठ परमं सत्य दिव्यऽति स्तवन महालक्ष्मि का।
पढ़े सुने जो सिद्धियाँ सब देत उसको अम्बिका।।
आधि व्याधी जगत-भय को नाशता यह स्तवन।
कामपूर्ती भी करे वर मात का शुभ स्तवन।।(न)

(न) माता महालक्ष्मी का यह पावन स्तवन परमश्रेष्ठ, सत्य और दिव्यतम है। जो भक्त इसका पठन एवं श्रवण करता है, माता अम्बिके उसको समस्त सिद्धियाँ प्रदान करती हैं। यह स्तवन समस्त आधि, व्याधि और भय का नाश कर्ता है। यह स्तवन समस्त कामनाओं का भी पूर्तिकर्ता है - ऐसा उस माता का यह श्रेष्ठ वरदान है।

दो0 : महालक्ष्मी-स्तवन, जो अर्चइ-पूजइ।
ग्यारह सौ दिन करन से, कार्य सकल पुरणइ।।।।(56)

दो0 : जो साधक विधिसहित अर्चन-पूजन करके लगातार ग्यारह सौ दिन इस कल्याणकारी महालक्ष्मी स्तवन का पाठ करता है, उसके सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हो जाते हैं। (56)

अध्याय आठ 'तपस्या' पूर्ण हुआ।

::::::::

卐 अध्याय नौ (सम्पदा-प्राप्ति) 卐

दो0 : जैमिनि जनमेजय कहैं, महालक्ष्मि वरदान।
राजन! तुमसे सब कही, कथा पतितपावन।।

दो0 : जैमिनी ऋषि कहते हैं कि - हे जनमेजय! मैंने महालक्ष्मी वरदान की वह पतितपावनी कथा तुम्हें पूरी तरह से कह दी है।

चौ0 : देवी से अग्रहि वर लीन्हा। पूर्ण मनोरथ सबरे कीन्हा।।
सँग में अग्र पराक्रम कीया। जिससे अग्र खुशी में जीया।।

चौ0 : (1) श्री अग्रसेन जी ने देवी महालक्ष्मी से वर प्राप्त करके अपने सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण कर लिया। साथ ही अग्रसेन जी ने पराक्रम किया जिससे उनके हृदय को भी सुख प्राप्त हुआ।

अल्प अग्नि वायू सँग बढ़ती। गर्ग संग अग्रग्रहिं लभती।।
अग्रसेन तब आगें आये। प्रभू कृपा से वर द्वय पाये।।

(2) जैसे अल्प अग्नि वायु का साथ लेकर बढ़ने लगती है वैसे ही गर्ग मुनि का साथ पाकर अग्रसेन जी की अग्रता बढ़ने लगी। सब जानते हैं कि तब अग्रसेन जी ने आगें आकर प्रभु की कृपा से दो वरदान प्राप्त किये।

सत्यकर्म ध्रुव-तप का फल है। कर्म से होत समस्या हल है।।
पुत्रहीन को शोक सुखद ना। योग्य मंत्रि बिन राज्यिस्थिर ना।।

(3) गर्ग ऋषि कहते हैं - पुत्र अग्रसेन! यह सब तुम्हारे सत्य कर्म और तुम्हारे द्वारा की गयी ध्रुव तपस्या का फल है। कर्म से हर समस्या का हल निकल आता है। जिस प्रकार पुत्रहीन के लिये शोक सुखद नहीं होता तथा योग्य मंत्री के बिना राज्य की स्थिरता नहीं बनी रहती तथा

पुण्यहीन को यश नहिं मिलता।परनिंदक उर सुख नहिं खिलता।।
बिना पराक्रम यश नहिं सम्भव। गर्ग अग्र से कहा सार सब।।

(4) पुण्यहीन को यश नहीं मिलता और परनिंदक को सुख नसीब नहीं होता। उसी प्रकार पराक्रम किये बिना यश रूपी साफल्य का मिलना भी सम्भव नहीं होता। गर्ग ऋषि ने सार रूप में ये सारा रहस्य अग्रसेन जी को कह सुनाया।

दो0 : परम कीर्ति स्थापनहि, योग्य उचित कर कर्म।
पूर्वकाल में नृप किये, अग्रसेन सत्कर्म।। (57)

दो0 : परम कीर्ति की स्थापना के लिये योग्य और उचित कर्मों का किया जाना आवश्यक है। हे अग्रसेन! पूर्वकाल में तुम्हारे वंश के कई राजाओं ने इन सद्कर्मों को किया है। (57)

चौ0 : जैमिनि बोले जनमेजय से। सुनिये प्रभु कहँ अग्र दैन्य से।
हे मुनि! धन मो पास नहीं है। या बिन शक्ती राज्य न हुइहै।।

चौ0 : जैमिनी ऋषि नृप जनमेजय से कहते हैं कि तब अग्रसेन जी ने बड़ी दीनता से गर्ग मुनि से इस प्रकार कहा – हे मुनिवर! मेरे पास धन बिल्कुल भी नहीं है। धन के अभाव में ना तो शक्ति और ना ही राज्य का प्राप्त होना सम्भव है।

कोउ सहायक भी मम ढिंग ना।पूज्य पिता आशीषहु अब ना।।
स्वजनन काका हू अब प्रिय ना।राज्य गया कैसे? ऊचित ना।।

(2) कोई सहायक भी मेरे पास नहीं है। पूज्य पिता महाराज का आशीष भी अब मेरे ऊपर नहीं रहा। मेरे अपने स्वजन तथा काका कुन्दसेन भी अब मेरे प्रिय नहीं रहे। मेरा राज्य किन परिस्थितियों में मेरे हाथ से छिटक गया? इसको सविस्तार समझाना अब मुझे उचित प्रतीत नहीं होता।

आगें की अब राह न सूझत। कृपा करहु कर जोड़ मैं बूझत।।
जैमिनि पुनि बोले जनमेजहि। हो प्रमुदित मुनि अग्रसेन कहि।।

(3) अब मुझे आगे क्या करना चाहिये ? ऐसी कोई राह मुझे दिखायी नहीं देती। हे प्रभो! मैं हाथ जोड़कर आपसे यही पूछता हूँ। कृपा करके आप मेरा मार्गदर्शन कीजिये। जैमिनी ऋषि ने पुनः जनमेजय से कहा – तब मुनि ने प्रमुदित होकर अग्रसेन जी से कहा –

क्षुद्र-कर्म तव चाचा कीनहि। बदले में अपकीर्ती लीनहि।।
जस चिंतामणि देकर कोई। काँच-कौढ़ि बदले में लेई।।

(4) पुत्र अग्र! तुम्हारे चाचा ने क्षुद्र (अर्थात नीच) कर्म किया। बदले में उसे क्या मिला ? - अपकीर्ति। यह ठीक वैसा ही है जैसे चिंतामणि देकर बदले में कोई व्यक्ति काँच कौढ़ियाँ ले ले।

दो0 : दैव-कृपा सँग वर मिला, बिनु पुरुषारथ व्यर्थ।
जस बिन बोये खेत में,बीज न कोई अर्थ।। (58)

दो0 : दैव की कृपा से तुम्हें जो वर मिला है, बिना पुरुषार्थ वह व्यर्थ है। जैसे बिना बुबाई वाले खेत में बीज बोये जाने का कोई अर्थ नहीं होता। (58)

चौ0 : जो जन रुचि से कर्म हैं करते। दैवहु उनकी झोली भरते।।
कर्म करे नहिं जन जु दैववश।कुछ ना मिलई सिवाय अपयश।।

चौ0 : (1) गर्ग ऋषि कहते हैं कि जो पुरुषार्थी रुचिपूर्वक किसी कर्म को करते हैं तो देवता भी उनकी झोली भरते हैं। इसके विपरीत, जो कृपण दैव वश कर्म से जी चुराते हैं उन्हें अपयश के सिवा कुछ नहीं मिलता।

परऽक्रमयुक्त जु कर्म न करई। उन हित कीर्ती दुर्लभ रहई।।
धन ऐश्वर्य मित्र ना मिलई। उत्तमकुल उपभोग न मिलई।।

(2) जो व्यक्ति पराक्रमपूर्ण कर्म नहीं करते हैं उनके लिये कीर्ति-प्राप्ति दुर्लभ कही जाती है। उन्हें धन, ऐश्वर्य तथा मित्र-सुख भी नहीं मिलता। वे अपने उत्तम कुल में जन्म लेने का भी उपभोग नहीं कर पाते।

दैव-कृपा पुरुषार्थ से मिलती। सहायता भी उनको खिलती।।
कर्महीन को कुछ नहिं मिलता। भाग्य में हो तौऊ ना मिलता।।

(3) दैव-कृपा की प्राप्ति पुरुषार्थ से ही सम्भव होती है। सहायता भी ऐसे लोगों को पाकर खिलती है। कर्म से हीन कायर व्यक्ति को कुछ नहीं मिलता। उसके भाग्य में हो फिर भी उसे कुछ नहीं मिलता।

पूर्वहिं मरुतराज शत मख कर। प्राप्त किये थे अती दिव्य वर।।
ऐसा सुना व्यास- श्रीमुख से। महत् पराक्रम गाथा गुरु से।।

(4) पूर्वकाल में राजा मरुत ने सौ यज्ञों को करके अत्यन्त दिव्य वरों को प्राप्त किया था। ऐसा मैंने वेदव्यास जी के श्रीमुख से सुना था तथा उनकी उस महान पराक्रम-गाथा को मैंने अपने गुरुदेव से भी सुना था।

दो0 : मरुतराज पूर्वहिं किया, महायज्ञ इत एक।
विपुल दक्षिणा दी द्विजन्ह, वही दबी भू नेक।। (59)

दो0 : हे अग्रसेन! यहाँ इस स्थान पर महाराज मरुत ने पूर्वकाल में एक महायज्ञ का आयोजन किया था। उस यज्ञ में उन्होंने द्विजगणों को विपुल दक्षिणा दान में दी थी। वही त्यागा गया स्वर्ण - धन इस नेक भूमि में दबा पड़ा है। (59)

चौ0 : सब यज्ञों में यज्ञ-कर्म बड़। मरुत शपथ ले कीन्हा पूरण।।
वृहस्पती को मरुत हराया। मुनि सम्वर्तहि मान कराया।।

चौ0 : (1) गर्गाचार्य जी कहते हैं - हे अग्रसेन! सम्पूर्ण यज्ञों में कर्म रूपी यज्ञ को सब से बड़ा बताया गया है। मरुत राजा ने शपथ लेकर उस यज्ञ-कर्म को पूर्ण किया था। (ध्यातव्य है कि महाराजा मरुत ने देवगुरु वृहस्पति को हराकर सम्वर्त मुनि का मान-वर्धन कराया था।

सूर्यवंश का मान बढ़ाया। उसी वंश में तू है जाया।।
वहि धनराशि दबी अंचल में। खोद निकालो एकहि पल में।।

(2) ऐसा करके उन्होंने सूर्यवंश का मान बढ़ाया था। हे पुत्र! तू उसी महान सूर्यवंश में पैदा हुआ है। वही विपुल धनराशि इस अञ्चल में दबी पड़ी है। बिना बिलम्ब किये तुम उस राशि को खोद निकालो।

अग्रसेन बोले मुनि गर्गहि। पितर मरुत मख था अति दिव्यहि।।
स्वर्णदान कर मख यह कीया। तपसी द्विजनन संतुष्ट कीया।।

(3) श्री अग्र ने बड़ी विनम्रता से मुनि गर्ग से कहा- हे गुरुवर! पितृ महाराज मरुत का वह महायज्ञ अत्यन्त दिव्य था। तभी गर्ग मुनि ने अग्र को रोकते हुए कहा- उस महायज्ञ में उन्हीं महाराजा मरुत ने स्वर्णदान कर तपस्वियों एवं द्विजगणों को संतुष्ट किया था।

ब्राह्मण यह धन छोड़ गये थे। ले जाने में सक्षम नहिं थे।।
उनसे जितना था चल पाया। ले गए उतना शेष गड़ाया।।
त्यागा धन मैं कैसे लेऊँ? क्षत्रिय-सुत मैं मुनी! कहाऊँ।।

(4) ब्राह्मण इस धन को छोड़ गये थे क्योंकि वे सारा धन ले जा पाने में सक्षम नहीं थे। जितना धन उन ब्राह्मणों से चल पाया, वे उतना धन ही अपने साथ ले जा सके थे। शेष बचा धन आज भी इस भूमि में गड़ा हुआ है। तब अग्र बोले- हे मुनिवर! त्यागा हुआ धन मैं भला कैसे ले सकता हूँ? गुरुदेव! मैं क्षत्रिय का बेटा हूँ।

दो0 : अग्रसेन कहँ गर्ग से, यदि ऐसा करता।
मुझसे अति को निंदनिय? नृप या जग हुवता।। (60)

दोहा : तब, अग्रसेन जी गर्ग ऋषि से कहते हैं कि हे प्रभो! यदि मैं ऐसा करता हूँ तो फिर इस जगत में मुझसे अधिक निंदनीय और कौन राजा होगा? (60)

चौ0 : जो राजा ब्राह्मण धन लेई। शिला जलहिं सम गर्तहिं जेई।।
इस धन से नव राज्य रचूँगा। लोक-हास्य का पात्र बनूँगा।।

चौ0 : (1) श्री अग्र कहते हैं कि जो राजा ब्राह्मणों के धन को ग्रहण करता है उसकी वही गति होती है जैसी कि जल राशि में पड़ी हुई शिला की होती है। हे प्रभो! इस धन से नव-राज्य की संरचना करके तो मैं जगत में हँसी का पात्र बन जाऊँगा।

ऐसा कुत्सित कर्म करूँ क्यों? शास्त्रनुसार प्रभो बतलाओ।।
मात अनुज बिन राज्य गहाऊँ। धिक्कारित अति फेर कहाऊँ।।

(2) तो फिर मैं ऐसा कुत्सित कर्म करूँ ही क्यूँ? हे प्रभो ! मेरी भ्रमित बुद्धि को आप कुछ ऐसा बतलाइये जो शास्त्र-सम्मत हो। यदि मैं अपनी माता और अनुज की अनुपस्थिति में राज्य प्राप्त करता हूँ तो मुझे और धिक्कारा जायेगा।

शोकयुक्त वे रोते होंगे। अति लज्जित प्रसंग है मो ये।।
इक लज्जा नहिं खत्म हो पायी। दूसर में काहे फँस जायी?।।

(3) आज भी वे शोकयुक्त होकर रो रहे होंगे। हे मुनिवर! यह प्रसंग मेरे लिये अत्यन्त लज्जावान है। अभी मेरी एक लज्जा खत्म हो नहीं पायी है कि मैं दूसरी में और फँस जाऊँ।

गर्ग कहा तुम धन्य हो राजन। बात तुम्हारी योग्य है मानन।।
पर शंका तुम्हरी नहिं सच्ची। यह निर्मूल और अति कच्ची।।

(4) तब गर्ग मुनि ने कहा- हे राजन्! तुम धन्य हो। तुम्हारी बात मानने योग्य है। पर तुम्हारी शंका सच नहीं है। तुम्हारी यह शंका निर्मूल और अधकचरी है।

दो0 : धन त्यागा जिस क्षण द्विजन्ह, छूट गया स्वामित्व।
भूमी से धन लेत में, सिद्ध नहीं दोषत्व।।(61)

दो0 : ब्राह्मणों ने जिस क्षण उस धन का त्याग कर दिया था उसी क्षण से उस धन पर से उनका स्वामित्व समाप्त हो गया था। हे राजन्! भूमि माता से धन लेने में पुत्र को दोष सिद्ध नहीं होता। (61)

चौ0 : परशुराम भू बल से लीन्ही। दानहिं फिर कश्यप को दीन्ही।
पाप से भय करते हैं राजा। फिर क्यों भूमी लेते राजा।।

चौ0 : (1) हे अग्रसेन! परशुराम जी ने बलपूर्वक क्षत्रियों से भूमि प्राप्त की और फिर वह भूमि उन्होंने कश्यप मुनि को दान में दे दी यदि राजा पाप से भय करते हैं तो फिर वे इसे लेते क्यों हैं ?

पहले दैत्यों ने भू जीती। फिर क्षत्रिन ने उनसे जीती।।
फिर ब्राह्मण अधिकारी कैसे ? सो धारो धन-पुत्र! प्रेम से।।

(2) सबसे पहले इस भूमि को दैत्यों ने जीता था। क्षत्रियों ने दैत्यों से इस भूमि को जीता तो फिर ब्राह्मण इसके अधिकारी कैसे हो गये ? अत: हे धनपुत्र! तुम प्रेमपूर्वक इसे धारण करो।

जब राजा जिस भू को लेता। अन्दर-बाहर सब सहेजता।।
भलीभाँति मंत्रों का जप हो। उपयोगी औषधि सेवन हो ।।

(3) और हाँ, जब राजा जिस भूमि को लेता है तो उसके अन्दर और बाहर की हर वस्तु पर उसका अधिकार होता है। इस हेतु भलीभाँति मंत्रों

का जप करके भूमि के उपयोग हेतु योग्य औषधियों का सेवन किया जाना चाहिये।

योग्य प्रयत्न होय जो ढँग से। दैव कृपा निश्चित ही बरसे।।
शंकाओं को त्यागो पुत्तर। राज्य रचो भू -धन को लेकर।।

(4) हे पुत्र! ठीक तरीके से योग्य प्रयत्न किये जाने पर दैव की कृपा निश्चित ही बरसती है। हे पुत्तर! अब तुम सारी शंकाओं को त्यागो और भूमि से धन को लेकर राज्य-निर्माण में लग जाओ।

दो0 : आश्रम ढिंग मरुभूमि सुत! फैली जो पश्चिम।
बालू से है यह ढँकी, बतलाई मुनि नम।। (62)

दो0 : हे पुत्र! आश्रम के निकट की यह मरु भूमि पश्चिम तक फैली हुई है। बालू से ढकी हुयी यह भूमि ही अब तुम्हारा लक्ष्य है। यह रहस्ययुक्त बात मुनि ने धीरे से अग्रसेन जी को बतलायी। (62)

चौ0 : अग्रसेन से कहैं ऋषीवर। मेरी बात रखो निज उर धर।।
पहले चाँवर धारो नृप बन। फिर मुझसे अभिषेक गहो जन!।।

चौ0 : (1) ऋषि गर्ग ने अग्रसेन जी से कहा– हे सुत! मेरी इन बातों को तुम अपने हृदय में धारण कर लो। सबसे पहले तुम अपने ऊपर चँवर धारण करके राजा बनो और मुझसे अपना अभिषेक कराओ।

राज्यलक्ष्मी प्राप्त करो फिर। राज्य सुरम्य बसाओ नृपवर।।
उक्त कार्य कीन्हे आश्रम में। गर्ग मुनी ने पुण्याश्रम में।।

(2) उसके बाद तुम राज्य-लक्ष्मी को ग्रहण करके एक सुरम्य नगरी का निर्माण करो। उक्त कार्य गर्ग मुनि के द्वारा उन्हीं के आश्रम में सम्पन्न किये गये थे।

आश्रम-विद्वत जन ले गर्गहि। भू विमुक्त के राजा रूपहि।।
अग्रसेन-अभिषेक कर दिया। महालक्ष्मि हर्षित अति हीया।।

(3) गर्ग मुनि ने आश्रम के विद्वानों के साथ उस विमुक्त भूमि के राजा के रूप में अग्रसेन जी का अभिषेक कर दिया। यह देखकर माता महालक्ष्मी का हृदय अति प्रसन्न हुआ।

राज्य हेतु भूले नृप अग्रहि। द्विज मानित जय शब्द न भूषहिं।।
मंत्रपूत घृत से शिव तृप्तहिं। भू ढिंग अग्र चरू ले जैहहिं।।

(4) राज्य पाने की अतिरिक्त लालसा में डूबे हुए अग्रसेन जी उस क्षण ब्राह्मणों द्वारा दिये गये मान को भूल बैठे। उन्हें अपनी जैकार भी अच्छी नहीं लगी। तब मंत्रों द्वारा पवित्र किये गये घी से शिवतत्व को तृप्त करके अग्रसेन जी चरु धारण करके उस भूमि के निकट चले।

सो0 : देवप्रियहिं सब कर्म, वेदज्ञानि विदुजन किये।
भेंटऽर्चन सद्कर्म, फिर पार्षद शिव के लिये।।(63)

सो0 : वेदज्ञ ऋषि-विद्वानों ने देवताओं को प्रिय लगने वाले समस्त कर्मो को किया। विष्णुदास कहते हैं फिर उसके बाद सबके लिये अर्चन, भेंट आदि सद्कर्मों को सम्पन्न किया गया। (63)

चौ0 : सर्वप्रथम गणपति को पूजा।फिर शिव सँग अन गण को पूजा।।
सब प्रकार से पूजा करके। गर्ग ऋषी को सम्मुख धरके।।

चौ0 : (1) सर्वप्रथम गणेश जी की पूजा की गई। उसके बाद भगवान शिव तथा अन्य गणों की पूजा की गयी। इस प्रकार त्रुटिरहित पूजा करके और गर्ग मुनि को सम्मुख धरकर

अग्रसेन उस जगहा आए। रत्न स्वर्ण भू उरहिं छपाए।।
बालुन टीलों को हटवाकर। भू खुदवाने लगे अग्रवर।।

(2) अग्रसेन जी उस स्थान पर आये जहाँ भूमि अपने हृदय में रत्न-स्वर्णादि छिपाये लेटी थी। बालुओं के टीलों को हटवाकर श्रेष्ठ अग्रसेन जी उस भूमि को खुदवाने लगे।

जैमिनि बोले जनमेजय से। रम्यपुरी निर्माण प्रेम से।।
शुरू कराया पुण्य भूमि पर। नाम पुरी आग्रे अति सुन्दर।।

(3) माता महालक्ष्मी और गुरुवर की कृपा से वहाँ बहुत से रत्न और सम्पत्ति की प्राप्ति हुयी। जैमिनी जी जनमेजय से कहते हैं कि और फिर एक अति रमणीय पुरी का निर्माण कार्य प्रारम्भ किया गया।

अक्षय धन सम्पत्ति रहेगी। अग्रऽविजित यह सृष्टि कहेगी।।
गर्ग मुनी ने शुभ वर दीन्हा। तप-पूँजी से धनपति कीन्हा।।

(4) यह पुरी अक्षय धन-सम्पत्ति से युक्त रहेगी तथा यह आग्रेयपुरी सदा अविजित रहेगी - ऐसा सृष्टि कहेगी। गर्ग मुनि ने ऐसा वर देकर अग्रराजा को अपनी तप-पूँजी से धनपति बना दिया।

दो0 : जैमिनि जनमेजय कहैं, भइ ऐसे नगरी।
आग्रे अनुपम नाम से, अलौकिक पुरि सगरी।।क।।

दो0 : (क) जैमिनी ऋषि कहते हैं - हे जनमेजय! समस्त पुरियों में अलौकिक पुरी अग्रेयपुरी के अनुपम नाम से इस प्रकार निर्मित हुयी।

आगरेय सा पुर नहीं, ना ही कोइ पुरी।
मनहु विश्वकर्मा रची, पावन धर्मधुरी।।ख।।

(ख) उस समय सारे संसार में ना तो आग्रेय जैसा कोई पुर था और ना ही कोई पुरी। पुरी को देखकर ऐसा भ्रम होता था मानो धर्म की धुरी इस पावन पुरी का निर्माण विश्वकर्मा ने स्वयं अपने हाथों से किया हो।

'आग्रे' नगरी जहँ बसी, हूआ अग्रोहा।
बड़े-बड़े सुरपतिन का, जिसने दिल मोहा।।ग।।

(ग) जिस स्थान पर आग्रेयपुरी का निर्माण हुआ था, वहीं आज का अग्रोहा भव्यता से पुनः निर्मित है। बड़े-बड़े सुरपतियों का दिल इस पुरी ने सदा मोहित किया है।

सुनकर यह वृत्तांत जो, जावत अग्रोहा।
बड़भागी वह मन जिहहि, आग्रे चित सोहा।।घ।।(64)

(घ) कवि कहता है कि जो अग्रवंशी इस वृत्तांत को सुनकर अग्रोहा जाता है वह बड़भागी कहलाता है। वह मन और भी भाग्यवान है जिसके दिल में अग्रोहा बस जाता है। (64)

अध्याय नौ 'सम्पदा-प्राप्ति' पूर्ण हुआ।

:::::

卐 अध्याय दस (आग्रेयपुरी का निर्माण) 卐

चौ0 : जैमिनी बोले जनमेजय से। विजय मिले नित सिद्धि भाग्य से
बलशाली प्रमाद यदि करई। कर्म करे ना सुफल न हुवई।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि नृप जनमेजय से कहते हैं कि विजय की प्राप्ति भाग्य और कर्म-सिद्धी से होती है। बलशाली व्यक्ति प्रमादवश यदि कर्म न करे तो वह सफल नहीं होता।

भू-अर्जित सम्पति सँग लाए। अग्रसेन गर्गाश्रम आए।।
गर्ग ने स्वागत अग्रहि कीया। दीप थाल ले गार्गिहु कीया।।

(2) श्री अग्रसेन जी भूमि से अर्जित की गयी सारी सम्पत्ति लेकर गर्गाश्रम में आ गये। मुनि गर्ग ने अग्र का स्वागत किया और ऋषि पत्नी गार्गी ने दीप-थाल लेकर अग्रसेन जी की आरती उतारी।

दोनों मात-पिता सम लागे। अग्रसेन प्रगाढ़ अनुरागे।।
होन लगा उत्सव आश्रम में। भगवन्नाम जोर से लय में।।

(3) मुनि गर्ग एवं गार्गी अग्रसेन जी को माता-पिता की तरह लगने लगे। अग्र के मन में उन दोनों के प्रति प्रगाढ़ अनुराग उत्पन्न हो आया। आश्रम में जोर-जोर से भगवननाम का उत्सव-गान होने लगा।

ब्राह्मण याचक वासिन दीन्हे। वस्त्राभूषण प्रेम के चीन्हे।।
दिव्यनगर आग्रे निर्माणहि। कहा विश्वकर्माउन अग्रहि।।

(4) तदनन्तर, ब्राह्मणों, याचकों तथा समस्त आश्रमवासियों को प्रेम के प्रतीक स्वरूप वस्त्राभूषण भेंट किये गये। आग्रेयपुरी जैसी दिव्य पुरी का निर्माण करने वाले उन विश्वकर्माओं से श्री अग्रसेन जी ने कहा कि वे भी उनसे प्रेम प्राप्त कर लें।

दो0 : पहचानैं सब राज्य को, उसके चिह्न से।
नामहु ऐसा चाहिये, कहँ बुधिजन ऐसे।। (65)

दो0 : राज्य को उसके चिह्न से पहचाना जाता है। नाम भी उसके अनुरूप होना चाहिए। ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है। (65)

चौ0 : विधिवत् शांति-कर्म करवाया। फिर भूमी का माप कराया।।
पुण्य और हितकारी महि पर। रहने हेतु मुनी-आश्रय पर।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि सबसे पहले विधिवत शांति-कर्म करवाया गया। फिर उस पुण्यमयी हितकारी भूमि पर रहने के लिये उस सम्पूर्ण भू-खण्ड का माप कराया गया। यह सब मुनि के आश्रित होकर किया गया।

शुभ भूमी लक्षण सम्पन् थी। शतरँज चौसर सम चुकौर थी।।
मिट्टी ताँबहि बालू सँग थी। महालक्ष्मि-वासा हित भू थी।।

(2) सर्व शुभ लक्षणों से सम्पन्न वह भूमि शतरंज के समान चौसर और चौकोर थी। ताँबई रंग की मिट्टी बालू से युक्त थी जो माता महालक्ष्मी के निवास हेतु पूर्णतया उपयुक्त थी।

बारह योजन थी लम्बाई। चार पुरहिं योजन चौड़ाई।।
दीर्घ द्वार कापाट सुशोभित। राज्य-मार्ग स्पष्ट विभक्तित।।

(3) उस भूमि की लम्बाई बारह योजन और चौड़ाई चार योजन थी। वह बड़े-बड़े लकड़ी के द्वारों से सुशोभित थी। राज्य के मार्ग स्पष्ट और बराबर बँटे हुए थे।

उद्याने नानाविधि तरु अति। सुन्दर सीमाएँ सु-प्रतिष्ठित।।
ऊँची-ऊँची चार दिवारी। वस्त्रन भाँति घेरती नगरी।।
चारों ओरहि गहरी खाई। लागत जो करधनि की नाँई।।

(4) राज-उद्यान में नाना प्रकार के अनेकों वृक्ष थे। राज्य की सुन्दर सीमाओं पर ऊँची-ऊँची दीवारें प्रतिष्ठित की गई थीं जो वस्त्रों की भाँति उस सम्पूर्ण नगरी को घेरे हुए थी। उसके बाद चारों ओर गहरी खाई थी जो कमर में बँधने वाली करधनी की तरह प्रतीत होती थी।

दो0 : जगह-जगह मन्दिर कई, बनवाये महाराज।
शिल्पशास्त्र से सिद्ध है, पुर निर्माणहि काज।।(66)

दोहा : महाराज अग्रसेन जी ने इस पुरी में जगह-जगह पर अनेकों सिद्धपीठों का निर्माण करवाया। पुरी का सारा कामकाज शिल्पशास्त्री के अनुसार सिद्ध किया गया था। (66)

चौ० : सड़कें गलियाँ चौराहे कइ। वन उपवन पथ पुरहिं सुसज्जइ।।
राजमहल है पुरी-मध्य में। राजबीथियाँ चहूँ ओर में।।
चौ० : (1) वहाँ आग्रेयपुरी में ढेर सारी साफ-सुथरी सड़कें, गलियाँ और चौराहे थे। उद्यान और उपवन के मार्ग आकर्षक और सुसज्जित थे। राजमहल पुरी के मध्य में था जिसके चारों ओर सुन्दर-2 राजबीथियाँ थीं।

मध्य रिक्त अठ पद आकारा। सतमाले विमान-गृह न्यारा।।
वर्धमान में श्रीपीठ हैं। जहँ द्विज हर पल पूजा रत हैं।।
(2) मध्य का भाग खाली छोड़ा गया था। इसका आकार आठ पद का था। सातवें माले पर अद्‌भुत विमानगृह था। वर्धमान में श्रीपीठ थी जहाँ अहोरात्रि ब्राह्मण पूजा पाठ करते थे।

देवी-देवन पृथकहिं मन्दिर। सबरे एक-एक से सुन्दर।।
कुएँ बाबड़ी पोखर भी हैं। पुण्य भवन धर्मशालाँ भी हैं।।
(3) देवी-देवताओं के मन्दिर अलग-अलग थे जो सुन्दरता में एक से एक बढ़कर थे। पुरी में कुएँ, बाबड़ी, पोखर, पुण्य भवन और धर्मशालाएँ भी थीं।

गौशालाएँ अन्नसत्र हैं। योगेश्वरनन योग्याश्रम हैं।।
कई पौसलें भी बनबाई। जिनमें जल फल पत्रऽधिकाई।।
(4) वहाँ गौशाला, अन्नागार तथा योगेश्वरों के लिये योग्य आश्रम भी थे। कई पोंसलें भी वहाँ बनवायी गयी थीं जिसमें सदैव जल, फल और पत्रादि की अधिकता रहती थी।

दो० : अभेद्य सुरक्षित ओर सब, अस्त्र-शस्त्र संयुक्त।
शस्त्रागारन युक्त पुर, कुशलन सैं निर्मित।।(67)
दो० : अभेद्य, सब ओर से सुरक्षित, अस्त्र-शस्त्रों से परिपूर्ण तथा शस्त्रागारों से युक्त यह पुरी कुशलतम कारीगरों द्वारा निर्मित थी। (67)

चौ0 : दूर दूर से यात्री आए। चतुर्वर्ण के प्राणी धाए।।
सँग में बालक पालक लाए। बसने की इच्छा से आए।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि इस आग्रेयपुरी में चारों वर्णों के लोग रहने के लिये आये। वे अपने साथ अपने बच्चे और दास-दासियाँ भी लाये। वे पूर्णतया बसने की इच्छा से ही यहाँ आये।

उनमें संस्कारित ब्राह्मण थे। वेदज शास्त्रज कर्मकांडि थे।।
पत्नी पुत्रादिक सिख सँग थे। पीत आचरण धारी भी थे।।

(2) आगन्तुकों में संस्कारित ब्राह्मण, वेदविद्, शास्त्रों के ज्ञाता तथ्ज्ञा कर्मकांडी भी थे। उनके साथ उनकी पत्नियाँ, पुत्रादि तथा शिष्यों के समूह थे। उनमें पीत आचरणधारी भी थे।

सेठ महाजन वैश्यहु आए। जौहरी अरु सुनार उत धाए।।
दानी धर्मी शीलहु आए। शूरवीर क्षत्रिहु पग धाए।।

(3) बड़े-बड़े सेठ, महाजन, बनिया, जौहरी और स्वर्णकार भी उधर दौड़-दौड़ कर आये। बड़े-बड़े दानी, धर्मी, शीलवान, शूरवीर तथा क्षत्रियों के कदम भी उस भूमि की ओर दौड़े।

सामर्थशालिन द्रव्यधारिन को। अग्र बसाया चतुर्वर्ण को।।
विदा किये पूजन कर कर्मिन। हो आभार कहाय अग्र मुनि।।

(4) सामर्थ्यवानों एवं द्रव्यधारियों को वहाँ बसाया गया। परन्तु यह सत्य है कि अग्रसेन जी ने चारों वर्णों की प्रजा को अपने धाम में बसाया। अन्त में, उन विश्वकर्माओं का भली भाँति पूजन करके अग्रसेन जी ने उन्हें विदा कर दिया। आभार प्रकट करते हुए अग्रसेन जी ने मुनि गर्ग से कहा-

दो0 : तव किरपा से ही मिला, अनायास यह राज्य।
जो निर्जन था पूर्व में, अब सम्पन्न सुसाज्य।।क।।

दो0 : (क) हे मुनिवर! आपकी कृपा से ही मुझे इस राज्य की अनायास प्राप्ति हुयी है। जो राज्य कभी उजाड़ था वो आज सुसम्पन्न राज्य के रूप में आपके सम्मुख दृष्टव्य है।

कर्तव्-पालन के लिये, मुनि! दीजे निर्देश।
जासों सुख यश पा सकूँ, सो दें शुभ आदेश।।ख।। (68)

(ख) हे प्रभो! अब मुझे किस कर्त्तव्य का पालन करना है। मुझे निर्देश दीजिये। जिन कारणों से मुझे अक्षय सुख की प्राप्ति संभव हो, वही शुभ आदेश आप मुझे देने की कृपा करें। (68)

चौ0 : जैमिनि बोले जनमेजय से। सुनो कथा आगें अति रुचि से।।
पूर्ण किये सब मंगलकामा। सम्मति से मुनि महऽसुखधामा।।

(1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि - हे जनमेजय! अब तुम आगें की कथा को रुचिपूर्वक श्रवण करो। महान सुख के धाम गर्ग मुनि की सम्मति से अग्रसेन जी ने सारे मंगलकामों को पूर्ण किया।

बड़भागी अद्भुत तिथि आई। ज्येष्ठ शुक्ल तीसर कहलाई।।
अग्रसेन गद्दी पधराए। अग्रोहा के भाग्य बढ़ाए।।

(2) जैमिनी ऋषि कहते हैं—हे जनमेजय ! वो बड़भागी और अद्भुत तिथि आ ही गई जिसे ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया कहा जाता है। आज के दिन श्री अग्रसेन जी सृष्टि के आदि गणराज्य अर्थात् आग्रेय गणराज्य के महाराजा बनकर राजसिंहासन पर पधारे और ऐसा कर श्री अग्रसेन जी ने समाजवाद उत्प्रेरक अग्रोहा का नाम विश्व भर में फैला दिया अर्थात् अग्रोहा के भाग्य को और बढ़ा दिया।

सूत बन्दिजन स्तुति गावैं। मागध पुरजन नाचैं भावैं।।
तोरण द्वारे श्रेष्ठ दिशा जो। अग्रसेन पुर में आवत यों।।

(3) सूत बन्दीजन स्तुति-गायन कर रहे हैं और मागध तथा पुरजन भावसहित नाच रहे हैं। श्रेष्ठ दिशा में स्थापित तोरण-द्वार से राजा रूप में श्री अग्रसेन जी नगर में प्रवेश करते हैं।

शंख दुंदुभी बाजन लागे। मंत्रन-घोष उरन अनुरागे।।
जयति अग्र जैकारा होता। दृश्य देख दिल खुश हो रोता।।

(4) तभी शंख, दुंदुभी आदि बाजे बजने लगे। उस समय किये जा रहे मंत्रों के घोष उर में अनुराग पैदा कर रहे हैं। अग्रसेन जी की जै हो, राजा अग्रसेन जी की जै हो-2 का जैकारा होने लगता है। यह दृश्य देखकर दिल खुश होकर रोने लगता है।

सहसा सब यों बोलन लागे। जोर जोर से पुनि सुनरागे।।
धर्म-राज्य की जै जै होगी। आतातायिन्ह दुर्गति होगी।।

(5) इस प्रकार सब लोग प्रेम सहित जोर-जोर से यूँ बोलने लगे कि- अब धर्म के राज्य की जै जै होगी और आतताइयों की दुर्गति होगी।

अग्रसेन गज पर राजत हैं। राज्य-मार्ग पर बढ़त जात हैं।।
राजमहल के अन्दर आवैं। प्रवेश मांगलिक कार्य करावैं।।

(6) श्री अग्रसेन जी शाही हाथी पर शोभायमान होते हुए राज्य-मार्ग पर बढ़ते हुए राजमहल के अन्दर आते हैं और गृह-प्रवेश के समय होने वाले मांगलिक कार्यों को सम्पन्न कराते हैं।

दो0 : राजभवन के शिखर पर, ध्वज था परम शुभम्।
पीत रंग रवि-चिह्न से, अंकित कल्याणम्।।(69)

दो0 : आग्रेयपुरी के राजभवन के शिखर पर पीले (भगवा) रंग का एक परम शुभम् ध्वज स्थित था जिस पर रश्मियुक्त सूर्य का कल्याणकारी चिहन अंकित था। (69)

चौ0 : राज्यभवन ओरे प्रभु आवैं। पीछे सेवक चँवर डुलावैं।।
राज्यसभा में आकर बैठे। चँवर लगे सिंहासन बैठे।।

चौ0 : (1) अब राजा अग्रसेन जी राज्यसभा की ओर आ रहे हैं। उनके पीछे राज्य के सेवक चँवर ढुला रहे हैं। प्रभु अग्रसेन जी राज्य सभा में आकर चँवर लगे सिंहासन पर आकर आरूढ़ हो जाते हैं।

सभा अद्वितीय भाषित हुवती।खम्भ-खम्भ मणिमय सी लगती।।
सबसे ऊपर महालक्ष्मि हैं। जो 'आग्रे' की कुलदेवी हैं।।

(2) सभा का सौन्दर्य अद्वितीय है। सभा के स्तम्भ मणियों से युक्त हैं। सभा में सबसे ऊपर आग्रेयपुरी की कुलदेवी माता महालक्ष्मी जी स्थापित हैं।

उनके नीचे अग्रसेन हैं। फिर गर्गहि मंत्री गण अन् हैं।।
स्वर्ण छत्र मय दण्ड सुशोभित। जग के सारे पाप विनष्टित।।

(3) उनके ठीक नीचे श्री अग्रसेन जी हैं। क्रमशः गर्ग मुनि, मंत्रीजन तथा अन्य श्रेष्ठगण हैं। राजा के ऊपर स्वर्णछत्र तथा हाथ में स्वर्ण -दण्ड शोभायमान है। यह दण्ड जगत के सकल पापों का विनाश करने वाला है।

वैसे तो लक्ष्मी चंचल हैं। यहाँ मुदित अति और अचल हैं।।
जैसे स्वर्ण-लकीर है होती। कासौटी पर जाय जु खैंची।।

(4) वैसे तो लक्ष्मी चंचला कही जाती हैं किन्तु यहाँ माता अत्यन्त मुदित और अचल भाव से स्थित हैं, ठीक उस प्रकार जिस प्रकार स्वर्ण को कसौटी पर रेखा खींचकर कसा जाता है कि स्वर्ण खरा है अथवा नहीं।

दो० : यौवन रूपैश्वर्य में, कोई भी हो एक।
मदोन्मत्त होता उसे, कह गए ज्ञानि अनेक।।क।।

दो० : (क) ज्ञानीजनों का कथन है कि यौवन, रूप या ऐश्वर्य में से कोई भी एक गुण यदि किसी में हो तो वह उसके मद में उन्मत्त हो जाता है।

पर महाराजा अग्र में, हैं ये तीनों ही।
किंचित भी अभिमान ना, है नृप कौन मही?।।ख।। (70)

(ख) परन्तु महाराज अग्रसेन जी में उक्त तीनों ही गुण विद्यमान थे फिर भी उनमें तनिक भी अभिमान नहीं था। भला भू-मण्डल में ऐसा दूसरा राजा और कौन हुआ है ? (70)

चौ० : यही आगरे गणहिं राज्य है। राजधानि जिसका यह पुर है।।
नर-नारी गोधन सम्पन्नहि। कृषि उन्नति होवैं तहँ नित्यहि।।

चौ०:(1)जैमिनी ऋषि कहते हैं कि यही आग्रेय गणराज्य है जिसकी राजधानी यह आग्रेयपुरी है। यहाँ के समस्त नर-नारी गोधन से सम्पन्न हैं। यहाँ बारहों महीने कृषि की उन्नति होती है।

अठरह विधि की प्रजा बसत जहँ। लक्ष्मि-कृपा से अति उन्नति तहँ।।
गुरू शिष्य दोनों ने मिलकर। सहज किया जो कर्म था दुष्कर।।

(2) यहाँ अठारह प्रकार की प्रजा निवास करती है। सारी प्रजा माँ लक्ष्मी की कृपा से उन्नति को प्राप्त है। कवि कहता है कि गुरू और शिष्य दोनों ने मिलकर एक अत्यन्त दुष्कर कार्य को सहज बना दिया।

इक दिन अग्र सिंहासन बैठे। पुर प्रताप के परिजन देखे।।
अगवानी की सविनय पूँछा। कष्ट आपको कोइ नहीं ना?।।

(3) एक दिन जब अग्रसेन जी राजसिंहासन पर बैठे हुए थे तो उन्होंने प्रतापपुरी के परिजनों को देखा। राजा सेन ने उनकी अगवानी की और उनसे विनयसहित पूँछा कि आपको किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं है।

प्रजा सुखारी तो है उत में। राज्य पुरोहित सौम्यहु सुख में।।
माता भ्राता हैं मंगलमय। रोवन लागे जन करुणामय।।

(4) वहाँ, प्रजा सुख से तो है! राज्यपुरोहित सौम्य सुखी तो हैं ना ? हमारी माता वैदर्भी एवं अनुज शौर्यसेन का सब मंगल तो है ना ?- यह सुनकर वे करुणाश्रित जन रोने लगे।

दो० : पुर प्रतापवासिन कहा, दुखी प्रजा भारी।
क्रूरकर्मि भोगी अती, कुँद अत्याचारी।।क।।

दो० : (क) प्रतापपुरी के उन नागरिकों ने कहा - हे अग्रसेन जी! वहाँ प्रजा भारी दुख में है। क्रूरकर्मी और अत्यन्त भोगी कुन्दसेन उन पर अत्याचार करता रहता है।

इक दिन प्रोहित ने कहा, रहना नहीं उचित।
जहँ नृप कामुक दुष्ट अति, प्रजा दुखाता नित्त।।ख।।

(ख) एक दिन पुरोहित जी ने कहा कि जिस देश का राजा अत्यन्त कामुक और प्रजा को सताने वाला हो वहाँ रहना उचित नहीं होता।

ऐसा कह ऋषि जा लिए, माता-भ्राता साथ।
तज नगरी वे कित गए, सूत्र न अजहू हाथ।।ग।।(71)

(ग) ऐसा कहकर सौम्य ऋषि आपकी माताजी तथा भाई को साथ लेकर प्रतापपुरी को छोड़कर ना जाने कहाँ चले गये हैं। आज तक इसका कोई सूत्र हाथ नहीं आया है। (71)

चौ0 : अग्रसेन चिंता में डूबत। शोकित हो साँसें अति लेवत।।
शोक अमर्ष हृदय उठ आया। तीव्र क्रोध मन में है छाया।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि ऐसा सुनते ही महाराज अग्रसेन जी चिंता में डूब जाते हैं। वह शोकित होकर अग्रसेन जी लम्बी-2 साँसें लेने लगते हैं। उनके हृदय में अमर्षयुक्त शोक उठ आया। उनके मन में अत्यन्त क्रोध छा गया।

माता-भ्राता बिन नहिं चैना। राज्य व्यर्थ मुख आव न बैना।।
प्रिय बिन राज्य लगत है ऐसे ? नेत्र बिना तन लागत जैसे।।

(2) वे सोचने लगे कि माता-भ्राता के बिना मुझे चैन नहीं मिलेगा। मेरे लिये यह राज्य भी व्यर्थ है। उनके मुख में शब्द ही नहीं आ पा रहे हैं। उन दोनों के बिना ये राज्य मुझे नेत्रहीन शरीर की भाँति लग रहा है।

किससे पूँछ किसको बोलूँ ? कौन हितैषी जिसको तोलूँ?।।
अग्र द्विजन्ह धन दीन्हा भारी। ढूँढ के लाओ आँख हमारी।।

(3) उनके बारे में अब मैं किससे पूँछू ? किसको बोलूँ ? यहाँ मेरा ऐसा कौन-सा हितैषी है जिससे मैं अपनी ये सारी पीड़ा व्यक्त कर दूँ ? तब अग्रसेन जी ने द्विजों को ढेर सारा धन देकर कहा- जाइये, हमारे नेत्रों को शीघ्र ढूढ़कर लाइये।

शौर्यसेन माता को खोजो। दूँगा वो वो माँगो जो जो।।
चले गए द्विज सभी दिशन में। अग्रसेन खो गए दुखन में।।

(4) भ्राता शौर्यसेन और माता वैदर्भी को यदि तुम खोज लाओगे तो जो जो तुम माँगोगे, वो वो मैं तुमको दूँगा। द्विजगण सभी दिशाओं को प्रस्थान कर गये और इधर अग्रसेन जी दुखों में खो गये।

दो0 : सबका हित जो सोचता, को सोचत वा हित ?
पुरजन परजन सोचते, अग्रहि दिव्य चरित।।क।।

दो0- (क) जैमिनी ऋषि प्रश्न करते हैं - हे जनमेजय ! जो सबके हित के विषय में सोचता है, उसके हित के बारे में कौन सोचता है ? महाराजश्री सदा परिजनों एवं पुरजनों के विषय में सोचते रहते हैं। अग्रसेन जी का ऐसा दिव्य चरित्र है।

बुरा अग्र ने नहिं किया, जनमेजय! काउहि।
नव गाथा की भूमिका, ज्ञानी कहत इहहि।।ख।।

(ख) हे जनमेजय! अग्रसेन ने कभी किसी का बुरा नहीं किया। ज्ञानीजन कहते हैं कि यह सब तो एक नव गाथा की भूमिका थी।

जिसने यह गाथा सुनी, लक्ष्मि-कृपा पावै।
"विष्णुदास" भू-मण्डले, घूमत इतरावै।।ग।।(72)

(ग) विष्णुदास कहते हैं कि जिस किसी ने इस गाथा का श्रवण किया है वह लक्ष्मी जी का कृपा को प्राप्त करता है और भू-मण्डल में इतराता हुआ घूमता फिरता है। (72)

अध्याय दस "आधार" पूर्ण हुआ।

::::::::

चेतावनी

दो० : इक दिन ऐसा आएगा, सभी वैश्य होंगे।
ब्राह्मण क्षत्रिय शूद्र के, दर्शन नहिं होंगे।।क।।
धन ब्राह्मण भी चाहेगा, क्षत्रिय भी चाहे।
शूद्रहु पीछे ना रहे, चाहे अनचाहे।।ख।।
पूजा-पाठ हो आरती, या मन्दिर सेवा।
कोइ करे ना अर्थ बिन, क्योंकी सब लेवा।।ग।।
वैश्य से टक्कर लेयँगे, ये टीकाधारी।
धर्म कर्म मिट जाएगा, सब कुछ बाजारी।।घ।।
सो वैश्यों! तुम पर टिकी, सारी मानवता।
क्योंकि लोक-निर्वाह की, तुममें है क्षमता।।ड.।।
जितने भी लाचार हैं, उनके तुमहि विचार।
सबके सपनों को तुम्हें, करना है साकार।।च।।
कर्म जाति बन जाएगी, योनी छूटेगी।
कुल यश गाथा डोर जो, निश्चित टूटेगी।।छ।।

卐 अध्याय ग्यारह (नागलोक की यात्रा) 卐

चौ० : जनमेजय पूँछा जैमिनि से। एक बात यदि सच कहु मुझसे।।
अग्र नागकन्या के पति थे। यह वृत्तान्त कहो प्रभु! मुझसे।।

चौ० : (1) नृप जनमेजय ने जैमिनी ऋषि से पूछा – हे गुरुवर! यदि आप सच-सच बतायें तो मैं आपसे एक बात पूँछता चाहता हूँ। अग्रसेन जी नागकन्या के पति कैसे बने? यदि ऐसा है तो वह वृत्तान्त मुझे भलीभाँति बतलाइये।

जैमिनि बोले जनमेजय से। अग्र प्रजा पालत सम्यक से।।
राज्यपुरोहित गर्ग बनाये। शासन अति कठोर पर भाये।।

(2) जैमिनी बोले– हे जनमेजय ! महाराज अग्रसेन सम्यक् भाव से अपनी प्रजा का पालन करते थे। आग्रेय गणराज्य के राज्य पुरोहित का पद गर्गाचार्य जी को निवेदित किया गया था। राज्य का शासन कठोर था परन्तु सबको भाने वाला था।

न्यायावर्ती धर्मवाह थे। अग्र समृद्धऽरु महाबली थे।।
अग्रसेन नृप गर्ग पुरोहित। नीतिशास्त्र में दोउ निपुण अति।।

(3) श्री अग्रसेन न्यायावर्ती, धर्मवाह, समृद्ध और महाबल से युक्त थे। महाराज अग्रसेन और पुरोहित पद पर आसीन मुनि गर्ग, दोनों ही नीतिशास्त्र में अत्यन्त निपुण थे।

इक दिन गर्ग अग्र से बोले। नाग-देश की महिमा खोले।।
नाग मणीपुर के पारंगत। धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष मति।।

(4) एक दिन नागदेश की महिमा का बखान करते हुए मुनि गर्ग ने अग्रसेन जी को बतलाया कि मणिपुर के नाग बड़े पारंगत हैं। उनकी बुद्धि सदा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में प्रवृत्त रहती है।

दो० : वैसे तो सब हैं सुखी, आग्रे गणराज्यहिं।
कहकर ऐसे गर्ग मुनि, निज आसन तिष्ठहिं।।(73)

दो० : हे अग्रसेन! वैसे तो यहाँ आग्रेयपुरी में सब सुखी हैं किन्तु .... ऐसा कहकर मुनि गर्गाचार्य जी अपने आसन पर जाकर बैठ गये। (73)

चौ0 : राज्य की संरचना कीन्ही तुम। उत्तम प्रश्न नीतियुत है तुम।।
पर गार्हस्थहु कर्म जरूरी। सो मणिपुर तुम जाव जरूरी।।
चौ0 : (1) हे अग्रसेन! तुमने एक उत्तम राज्य की संरचना की है। लेकिन इस समय मेरा यह प्रश्न नीतिसंगत और समय के अनुकूल है। राजा के लिये राज्य के साथ-साथ गृहस्थ धर्म भी आवश्यक है। अत: तुम्हारा मणीपुर जाना बहुत आवश्यक है।

मणिपुर-नृप का नाम महीधर। पुत्रि माधवी है अति सुन्दर।।
मणिपुत्री को पत्नि बनाओ। शीघ्र यहाँ लेकर के आओ।।
(2) मणिपुर के राजा का नाम नागराज महीधर है। उनकी पुत्री का नाम देवी माधवी है जो बहुत सुन्दर है। तुम मणी की उस कन्या को अपनी पत्नी बनाकर शीघ्र यहाँ लेकर आओ।

नागलोक को जाऊँ कैसे? मिलूँ माधवी से मैं कैसे?।
नागलोक में परम पूज्य हैं। मुनि उद्दालक ममहि सखा हैं।।
(3) अग्रसेन जी ने अपनी शंका प्रकट करते हुए कहा - हे गुरुदेव! मैं नागलोक कैसे पहुँचूगा ? देवी माधवी से मेरा मिलन किस प्रकार होगा ? तब गर्गाचार्य जी ने कहा - हे पुत्र! नागलोक के परम पूज्य उद्दालक मुनि मेरे सखा रहे हैं।

तुम पर पूरी कृपा करेंगे। नाग-सन्धि में संग धरेंगे।।
सो राजन! तुम जल्दी जाओ। नागसुता को लेकर आओ।।
(4) उद्दालक ऋषि तुम पर पूरी कृपा करेंगे। साथ ही वह नाग-सन्धि में भी तुम्हारा सहयोग करेंगे। अत: राजन! तुम शीघ्र जाओ और देवी माधवी को यहाँ ले आओ।

दो0 : यह यात्रा अग्रवंशहित, होगी शुभदायिनि।
पुरहित पुरवासिन हितहु, अति ही सुखदायिनि।। (74)
दो0 : जैमिनी ऋषि कहते हैं कि - नागलोक की यह यात्रा अग्रवंश के लिये अत्यन्त शुभ देने वाली होगी। आग्रेय गणराज्य एवं वहाँ के

निवासियों के लिये भी यह यात्रा अत्यन्त सुख देने वाली सिद्ध होगी। (74)

चौ0 : हर चिंता तज कर तुम जाओ। कार्य पूर्ण हित तुरत पठाओ।।
शिरोधार्य कर गर्गादेशहि। कर प्रणाम मणिपुर प्रस्थानहि।।

चौ0 : (1) गर्ग मुनि ने कहा – हे अग्र! सारी चिंताओं को त्यागकर तुम वहाँ जाओ। अब देर न करो। कार्य पूर्ण करने के लिये तुम तुरन्त प्रस्थान करो। गुरु गर्ग के आदेश को शिरोधार्य करके और उन्हें प्रणाम करके अग्रसेन जी ने मणिलोक की ओर प्रस्थान किया।

अग्र बंग को पार किया है। ज्योतिषपुर स्पर्श किया है।।
नागलोक का द्वार ज्युतिषपुर। जिसकी शोभा है अति सुन्दर।।

(2) अग्रसेन जी ने अग्रवंश को पार करके ज्योतिषपुर का स्पर्श किया। ज्योतिषपुर नागलोक का द्वार है। इसकी शोभा अति सुन्दर है।

घोर विशाल नाग इत रहते। अतल लोक इसको ही कहते।।
वितल लोक फिर नृप हैं आए। चम्पा-पुष्प सुशोभित पाए।।

(3) यहाँ विशाल एवं भयंकर नागों का वास है। इस लोक का नाम अतल लोक है। इसके बाद अग्रसेन जी वितल लोक में आए जहाँ उन्होंने चम्पा के पुष्पों को सुशोभित पाया।

दिव्य नागकन्या इत रहतीं। अती मनोहर वायूँ बहतीं।।
देश नदी कइ पार हैं कीन्ही। तेज गती पाँवन को दीन्ही।।

(4) यहाँ दिव्य नागकन्यायें रहती हैं। यहाँ अति मनोहर वायु प्रवाहित होती रहती है। अग्रसेन जी ने फिर बहुत से देशों एवं नदियों को पार किया। अग्रसेन जी ने अपने पैरों की गति बढ़ा दी।

दो0 : सुतललोक नृप आय जो, उच्च शिखर स्थित।
सुन्दर फलयुत स्वर्णमयि, 'शमी' वृक्ष संयुक्त।। (75)

दो0 : अब वह ऊँचे शिखरों पर स्थित सुतल लोक में आ पहुँचे। यह लोक स्वर्णमयी सुन्दर फूलदार शमी के वृक्षों से युक्त था। (75)

चौ० : मनुहारी वन लाँघ अनेकहि। आय महातल युत तरु अमरहि।।
जहँ नानाविध पक्षी बैठहिं। चित्र-विचित्र लगत तिन बैठहिं।।

चौ० : (1) तदनन्तर, अनेकों मनोहारी वनों को लाँघकर अग्रसेन जी आम के पेड़ों से युक्त महातल में आये। यहाँ आम के पेड़ों पर नाना प्रकार के पक्षी बैठे रहते हैं जिनके बैठने की छवि के चित्र बड़े विचित्र लगते हैं।

सीधे लम्बे श्रीफल तरु तहँ।सत्पुरुषन कुल सम लागत रहँ।।
उगी सुपारी वृक्ष तहाँ अति। जन मुख आभा वृद्धि करैं नित।।

(2) यहाँ सत्पुरुषों की तरह लगने वाले नारियल के सीधे और लम्बे पेड़ हैं। यहाँ लोगों के मुख की शोभा में वृद्धि करने वाली उगी हुयी सुपाड़ी के पेड़ भी हैं।

वृक्ष खजूरा तहाँ अनेकहिं। सुकड़े फल तापन के हरणहिं।।
वृक्ष अनार वहाँ अति सुन्दर। टूटे फल जिन्ह शुक रहँ सुन्दर।।

(3) यहाँ खजूर के अनेकों वृक्ष हैं जिसके सुकड़े हुए फल ताप का हरण करने में समर्थ हैं। जहाँ अनार के सुन्दर-सुन्दर वृक्ष हैं जिसके टूटे फलों पर बैठे हुए प्यारे शुक शोभा को प्राप्त होते हैं।

वन-आभा मरकत सम भासत।चन्दन-गँध से मन आल्हादत।।
इस प्रदेश का नाम 'रसातल'। सब रस बसते हैं नित जिस तल।।

(4) यहाँ वनों की आभा पारे के समान लगती है। यहाँ चन्दन की महक से मन आल्हादित होने लगता है। इस प्रदेश का नाम रसातल है जहाँ सब रसों का नित्य वास रहता है।

दो० : फिर आए 'पाताल' जहँ, मणिपुर राज्यनगर।
रत्नमहल चाँदी शिलहि, जल शीतल सुखकर।।(76)

दो० : उसके बाद अग्रसेन जी पाताल लोक में आए। यहीं मणिपुर नाम का राज्य है। इस राज्य का महल रत्नों से निर्मित है। यहाँ चाँदी की शिलाओं की दीवारें-फर्श आदि हैं। यहाँ का जल शीतलता और सुखों का प्रदान करने वाला है। (76)

चौ० : लोहित नदी तहाँ इक न्यारी। वृक्षराज वट तट पै भारी।।
उद्दालक ऋषि यहाँ विराजत।मुनि के मन यह अति ही छाजत।।

चौ० : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि पाताल लोक के इस मणीप्रदेश में लोहित नामक अद्भुत नदी निरन्तर बहती रहती है। यहाँ वृक्षराज वट बहुतायत में पाये जाते हैं। उद्दालक ऋषि यहीं विराजते हैं क्योंकि यह स्थान उन्हें बहुत छजता है।

जटाजूट सिर मुनहिं सुहावत। गौर वर्ण मुख अगनसि लागत।।
दर्शन कर नृप किये प्रनामा। अग्रसेन बोले सुख धामा।।

(2) मुनि के सिर पर जटाजूट सुहा रहा है। उनके गौरवर्णीय मुख की आभा अग्नि के समाज तेजोमयी है। अग्रसेन जी ने सुख के धाम उद्दालक मुनि के दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया। वह उनसे विनयवत बोले-

गुरू गर्ग ने यहाँ पठाया। बड़भागी तव दरसन पाया।।
विशिष्ट कामना से मैं आया। सर्वज्ञानि प्रभु कहैं उपाया।।

(3) हे प्रभो! गुरुदेव श्री गर्ग ने मुझे यहाँ भेजा है। मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ जिसे आपका शुभ दर्शन पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हे प्रभु! मैं एक विशिष्ट कामना से इस लोक में आया हूँ। आप सर्वज्ञ हैं। हे प्रभु! आप उसका कोई उपाय बतायें।

राजपुरोहित गर्ग हमारे। कहा माधवी संग तुम्हारे।।
कैसे होगा ये सब सम्भव ? प्रभो! कौन सा करूँ उपक्रम?।।
सिद्धि-कामना होवै जैसे। मुनीश्रेष्ठ निर्देसैं वैसे।।

(4) हे प्रभो! गुरु गर्ग हमारे पुरोहित हैं। उन्होंने मुझसे कहा कि देवी माधवी तुम्हारे संग के लिये हैं। हे प्रभो! ये सब कैसे सम्भव होगा? हे प्रभो! मुझे ऐसा कौन-सा उपक्रम करना चाहिये? जिससे मेरा मनोरथ सिद्ध हो जाये। कृपया आप वह उपाय मुझे बतलाइये।

दो० : धर्मपूर्ण प्रीतीवचन, सुने सभी मैंने।
इसी हेतु आया यहाँ, कहा महर्षी ने।। (77)

दो० : उद्दालक मुनि कहा- हे युवा! तुम्हारे द्वारा कहे गये प्रीतीपूर्ण वचनों को मैंने सुना। अरे, मैं इसीलिये तो यहाँ आया हूँ। (77)

चौ० : अग्रसेन! तुम सब मैं जानूँ। कैसे राज्य बनाया ? जानूँ।।
कैसे कृपा भई गुरुवर की? महालक्ष्मि देवी तव कुल की?।।

चौ० : (1) मुनि उद्दालक ने कहा - हे अग्रसेन! मैं तुम्हारे बारे में सब कुछ जानता हूँ। तुमने किस प्रकार राज्य का निर्माण किया? गुरुवर की कृपा तुम पर कैसे हुयी? महालक्ष्मी तुम्हारी कुलदेवी कैसे बनीं ? मैं यह सब भलीभाँति जानता हूँ।

भविष कालयोगे आधीना। तदनुरूप आचरहु प्रबीना।।
अग्रसेन बोले महामुनि से। आज्ञा दैं बोले मणि-गुरु से।।(2)

भविष्य काल के आधीन है। किन्तु इसके अनुरूप अनुकूल आचरण करना आवश्यक है। तब अग्रसेन जी महामुनि उद्दालक से जो मणिलोक के राजगुरु थे, बोले - आज्ञा दीजिये प्रभु! मुझे क्या करना अभीष्ट है? (2)

शेषनाग पृथ्वी को धारत। नागलोक उनसे ही मानत।।
पहले नागपती विषधर थे। जो पाताल-लोक ब्रह्मा थे।।

(3) उद्दालक ऋषि बोले- हे अग्रसेन! शेषनाग इस पृथ्वी को धारण करते हैं। उनसे ही इस नागलोक की उत्पत्ति मानी गयी है। यहाँ के सबसे पहले नागपति विषधर थे जो इस पाताल लोक के ब्रह्मा कहलाये।

फेर वासुकी राजा बनई। सर्पराज तक्षक फिर हुवई।।
अब नागऽधिपति होत महीधर।सप्त द्वीप आधीन जिनहिं वर।।

(4) उनके बाद वासुकी यहाँ के राजा बने। वासुकी के बाद सर्पराज तक्षक यहाँ के पति बने। अब यहाँ के राजा नागराज महीधर हैं जिनके आधीन सात सुन्दर द्वीप (नाग द्वीप) आते हैं।

दो० : तल अरु अतल वितलपती, सुतल तलातलपति।
रासातल पातालपति, पृथकहिं नागऽधिपति।। (78)

दो० : हे अग्रसेन! तललोक, अतल लोक, वितल लोक, सुतल लोक, महातललोक, रसातल लोक तथा पाताललोक सबके अलग-अलग नागपति कहाये जाते हैं। (78)

चौ० : नाग जितात्मा हैं प्रिय अग्रहि। मद् मत्सर 'हंकारौ युक्तहि।।
जीते जा सकते नहिं बल से। संभव यह केवल बुधिबल से।।

चौ० : (1) उद्दालक मुनि ने नागलोक का वर्णन करते हुए कहा- पुत्र अग्रसेन! यहाँ के नाग जितात्मा हैं। किंतु ये नाग मद, मत्सर और अहंकार से ग्रस्त हैं। इन्हें बल से नहीं जीता जा सकता है। बुद्धीबल से ही इन नागों पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

मणि-उपवन में घूमहु फिरहू। सुता-मिलन तहँ जावो वेगहू।।
जैमिनि बोले जनमेजय से। अग्र मणीपुर गये वहाँ से।।

(2) सर्वप्रथम तुम मणिपुर के राजवन में जाओ। वहाँ घूमो-फिरो। नागसुता से वहीं तुम्हारा मिलन होगा। सो, तुम शीघ्र वहाँ जाओ। जैमिनी ऋषि जनमेजय से कहते हैं कि श्री अग्रसेन वहाँ से तुरन्त मणीपुर को चल दिये।

नागकुमारीं झूला झूलैं। जिनसे नगर और अति फूलैं।।
लोहित-जल में अग्र नहाए। दर्श हाटकेश्वर मन भाए।।

(3) राज उपवन में पहुँचकर अग्रसेन जी ने देखा कि वहाँ नागकुमारियाँ झूला झूल रही हैं जिससे मणिपुर और अधिक सुशोभित हो रहा था। अग्रसेन जी ने उस पावन लोहित नदी में स्नान किया और फिर उन्होंने हाटकेश्वर भगवान के दर्शन किये। यह दर्शन उनके मन को बहुत भाया।

नागकुमारी स्तुति गावैं। लिंग पै चम्पा पुष्प चढ़ावैं।।
शिव समीप जा किये प्रणामा। शुभ चरणन में अग्र नमामा।।

(4) नागकुमारियाँ भोलेनाथ की स्तुति गाती हुयीं शिवलिंग पर चम्पा के पुष्प चढ़ाती हैं। अग्रसेन जी भगवान शिव के समीप आये और उनके शुभ चरणों में घोंटू मोड़कर प्रणाम करने लगे।

दो0 : उपवन में जा अश्व को, बाँधा इक तरु से।
फिर पाया पाथेय को, जो लाये घरु से।।क।।

दोहा : (क) तदनन्तर उपवन में जाकर, अश्व को एक पेड़ से बाँध कर उन्होंने घर से लाये हुए पाथेय को पाया।

फिर दुपहर-विश्राम हित, गये वृक्ष-नीचे।
अग्रसेन झट सो गये, "विष्णू" अँख मींचे।।ख।।

(ख) फिर दोपहर के विश्राम के लिये अग्रसेन जी आँखे मींचकर उसी वृक्ष के नीचे झट सो गये।

उत जनमेजय से कहा, ऋषी जैमिनी ने।
कथा सुनो पर मन गुनो, कहई जो मैंने।।ग।।

(ग) उधर जैमिनी ऋषि ने जनमेजय से कहा- मैंने जो कथा तुमसे अब तक कही है, उसे सुनकर मन से उस पर विचार करो।

जो श्रोता सुनता सदा, कथा पतितपावन।
"विष्णुदास" यह बात सच, पाता अभिवादन।।घ।। (79)

(घ) जो श्रोता सदा इस पतित पावनी कथा को सुनता है विष्णुदास कहते हैं कि यह बात बिलकुल सच है कि वह सदा लोगों से अभिवादन पाता है। (79)

अध्याय ग्यारह 'नागलोक की यात्रा' पूर्ण हुआ।

::::::

(दोहे के अन्त में गाइये)

अग्रवर अग्रसेन पद गहि शरणम्
लक्ष्मी हरि ओम जय विश्वेश्वर
जय करुणेश्वर जय समतेश्वर

卐 अध्याय बारह (अग्रसेन-माधवी-मिलन) 卐

चौ० : जैमिनि बोले जनमेजय से। कथा सुनो प्रिय! प्रेमभाव से।।
नागराज माहीधर रानी। 'नागेन्द्री' सुन्दर कटिवाली।।

चौ०: जैमिनी ऋषी नृप जनमेजय से कहते हैं कि अब तुम प्रेमपूर्वक आगें की इस कथा को श्रवण करो। मणिपुर के राजा नागराज महीधर की रानी का नाम नागेन्द्री था। इस नाग पटरानी की कमर बहुत सुन्दर थी।

सदा धर्म रत जो रहती थी। माधवी उसकी ही पुत्री थी।।
परमसुन्दरी शुभ गुण सम्पन्। धर्मपरायण बन्धु पूजितम्।।

(2) नागेन्द्री सदा धर्म-कर्म में रहत रहने वाली स्त्री थी। देवी माध्वी इन्हीं की पुत्री थीं। नागकन्या माधवी परम सुन्दरी थीं। वह शुभ गुणों से सम्पन्न, धर्मपरायण तथा बन्धुओं द्वारा पूजी जाने वाली कन्या थीं।

रूपवती अति त्रय जग मोहित। नृप देखा सोचा विवाह हित।।
किसको सौंपू हो गए चिंतित? कन्या से ही पूँछा मणि पित ।।

(3) उस अत्यन्त रूपवती नागकन्या पर तीनों लोक मोहित थे। एक दिन नागराज ने अपनी बेटी को तनिक ध्यान से देखा तो वह उसके विवाह के विषय में सोचने लगे। मैं अपनी पुत्री को किसके हाथों में सौंपू? यह सोचकर नागराज चिंता में डूब गये। तब मणिपति ने अपनी कन्या से पूँछा-

स्वयंवरा! मुझको बतलाओ। कैसा पति तुम मन समझाओ?।
नागराज माहीधर कहते। सहस्त्रन पन्नगसुत इत रहते।।
वीर नागसुत जो तुम चाहो। कर संकेत मुझे बतलाओ।।

(4) पुत्री स्वयंवरा! तुम मुझे बतलाओ कि किस प्रकार के पति की छवि तुम्हारे मन में अंकित है। यदि है तो मुझे उस विषय में समझाओ। नागराज महीधर पुत्री से बोले- हे पुत्री! इस नागलोक में सहस्त्रों नाग रहते हैं। उन वीरों में से तुम जिस वीर नाग को चाहो, संकेत से अपने पिता को बतला दो।

दो0 : महि ने जब ऐसा कहा, हो गइ अति लज्जित।
यह नारी स्वैभाव सो, बोली पित विनवत।।क।।

दो0: (क) जब नागराज महीधर ने पुत्री माधवी से स्पष्टतया ऐसा कहा तो पुत्री लज्जित हो गयी। लज्जा तो नारी मात्र का स्वभाव है। इसलिये माधवी सिर झुकाकर विनम्र शब्दों में पिताश्री से बोली -

पति मेरा होगा नहीं, नागों में कोई।
मुख में घातक विष जिनहिं, होय न पति सोई।।ख।। (80)

(ख) हे पिताश्री! इन नागों में से कोई भी मेरा पति नहीं होगा। इनके मुख में घातक विष रहता है। अत: इनमें से कोई भी मेरा पति होने का कारण नहीं है। (80)

चौ0 : नाग नहीं सुरपति तुम हित हैं। पतीरूप में सर्व उचित हैं।।
इन्द्रभिलाषा मुझे नहीं है। सब दोषों का कारण वो है।।

चौ0 : (1) इस पर नागराज महीधर बोले- हे पुत्री! नाग न सही देवराज इन्द्र तो तुम्हारे लिये उचित हैं। तुम्हारे लिये इन्द्र ही पतिरूप में सबसे उचित हैं। माधवी तुरन्त बोली- हे पिताश्री! इन्द्र की मुझे तनिक भी अभिलाषा नहीं है क्योंकि इन्द्र ही सब दोषों के कारण हैं।

तप व दान से जो फल मिलई।वो उन्नति उहि जात न सहई।।
गौतम नारि अहिल्या भोगी। इन्द्र लगत मो कामुक रोगी।।

(2) तप और दान से प्राणी को जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है वो उन्नति इन्द्र से सही नहीं जाती। इन्द्र ने गौतम ऋषि की पत्नी देवी अहिल्या को भोगा था। इन्द्र तो मुझे कामुक और रोगी प्रतीत होते हैं।

इन्द्र कृतघ्नहि कौन वरेगी ? मम बुद्धी से मनुज गहेगी।।
जैमिनि बोले जनमेजय से।सुन विचार महि भए चकित से।।

(3) कृतघ्नता से युक्त इन्द्र को भला कौन स्त्री वरण करेगी ? मेरी बुद्धि से इन्द्र की अपेक्षा किसी मनुष्य को ही वह अपने पतिरूप में चुनना चाहेगी। जैमिनी ऋषि कहते हैं - हे जनमेजय! पुत्री माधवी के विचार सुनकर पन्नगपति चकित हो गये।

पुत्री! वैष्णव श्रेष्ठ हैं कैसे ? वे लोभी नित रहैं सदोषे।।
सौ कन्यन से घिरीं माधवी। घूमन वन गइ देवि माधवी।।
पावस मस्त ऋतू है आवै। नव पाती पुष्पऽति मन भावै।।

(4) मही ने पूँछा - पुत्री! ये वैष्णव कैसे श्रेष्ठ हैं? वैष्णव तो लोभी और अनगिनत दोषों से युक्त हैं। उत्तर दिये बिना देवी माधवी सौ नागकन्याओं के साथ घिरी हुयी घूमने के लिये राजवन चली गयी। इस समय तक मस्ती की ऋतु पावस का आगमन हो चुका था। वृक्षों में खिलने वाले नव पल्लव और पुष्पों के समूह मन को भाने लगते हैं।

सो0 : षोडसि कन्यन मन, पुष्प चयन इच्छा भई।
साढ़े पन्द्रह तन, यौवन से परिपूर्ण सब।। (81)

सोरठा :- तब उन षोढसियों के मन में पुष्प चुनने की इच्छा प्रकट हो आयी। साढ़े पन्द्रह वर्ष की आयु वाली वे नागकन्यायें यौवन से परिपूर्ण थीं। (81)

चौ0 : वस्त्र कुसुम्भी उभरे स्तन। हवा में आँचल अति मनभावन।।
मुतिन हार गल पाँयन पायल। मटक मटक चल कर मन घायल।।

चौ0 : (1) जैमिनी जी कहते हैं कि - यौवन के भार से लदी हुयी उन मस्त नागकन्याओं के शरीर पर कुसुम्भी रंग के वस्त्र थे। उनके नुकीले स्तन उभरे हुए थे। हवा में उड़ते हुए उनके आँचल किसी के भी मन को दीवाना बनाने के लिये पर्याप्त थे। उन सबके गले में कीमती मोतियों के हार थे तथा उनके पाँवों में रजत पायल थी। जब वे नागकन्यायें मटक-मटक कर बलखाती हुई पृथ्वी पर चलती थीं तो मन घायल हो जाता था।

हँसती गाती सँग बतियाबत। पुष्प हेतु क्रीड़ा-वन आवत।।
पुष्प चुनन तैं सबरी थक गइँ।श्रम-बूँदों से माधवि सज गइँ।।

(2) आपस में हंसती गार्ती बतियाती हुयी वे नागकन्यायें फूल चुनने के लिये उस क्रीड़ा- वन में आ गयीं। फूल चुनने की मस्त लेकिन लम्बी

प्रक्रिया से वे शीघ्र ही थक गईं। श्रम करने से शरीर से निकलने वाली पसीने की बूँदों से माधवी का पूरा शरीर सज गया।

संचित पुष्प ढेर करु तकिया। उस पर लेट गई 'जा' थकिया।।
सहसा इन्द्र वहाँ पर आया। देख माधवी शक्र कहाया।।

(3) वृक्ष के नीचे पड़े हुए ताजे खिले हुए फूलों का ढेर बनाकर उसे अपना तकिया बनाकर नागकन्या लेट गईं। अचानक इन्द्र वहाँ आ गये। माधवी को इस स्थिति में देखकर शुक्र ने इस प्रकार कहा –

तुम मेरी पत्नी बन जाओ। चिर यौवन को मुझसे पाओ।।
इन्द्र से कोई बोल न पाई। देवि माधवी आगें आई।।
माधवि बोलीं नहीं गहूँगी। सुर या सुरपति नहीं वरूँगी।।

(4) तुम सब मेरी पत्नियाँ बन जाओ और मुझसे चिर यौवन को प्राप्त होओ। जब इन्द्र को कोई भी नागकन्या उत्तर नहीं दे पायी तब माधवी देवी आगे आयीं और इन्द्र से बोली– हे शक्र! मैं देवता अथवा देव–स्वामी में से किसी का भी वरण नहीं करूँगी।

दो0 : कुपित हुआ तब इन्द्र अति, सुनकर शब्द कठोर।
शीघ्र वहाँ से चल दिया, खिसियाकर रति-चोर।। (82)

दो0 : माधवी के इन कठोर शब्दों को सुनकर इन्द्र अति कुपित हो उठा और वह रति चोर खिसियाते हुए वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गया। (82)

चौ0 : एक सखी घबड़ाकर बोली। कमलयुक्त सर चलो सहेली।।
खेलत गावत सर ढिंग आयीं। देखैं हंसन इत-उत जायीं।।

चौ0 : (1) तभी उनमें से एक सखी घबड़ाकर बोली – अरे सहेलियों! उस कमल के फूलों से युक्त सरोवर की ओर चलो। नागकन्याएँ पूर्व की घटना भूलकर मस्ती में खेलतीं–गातीं हुयीं उस तालाब के ढिंग आ गयीं। कमल के उस सरोवर में हंसों के झुण्ड इधर से उधर तैर रहे थे।

जल में खेलत गावत नागिन। न्हावत बात करैं मनभावन।।
तबही जल पीवन हित धाए। झुण्ड साँड़ गौ बछिअन आए।।

(2) नागकल्याएँ सरोवर के जल में उतरकर खेलने-गाने लगीं। नहाते हुए वे युवा नागिनें मस्तीभरी बातें करती जाती थी। तभी साँड़, गौ और बछड़ों के झुण्ड उस सरोवर में जल पीने के लिये आये।

व्याघ्र भयानक तहँ इक आया। कम्पन से पशु-मन घबराया।।
दयाभाव अग्रहि उर आया। 'गौ-रक्षा' विचार मन भाया।।

(3) अचानक एक भयानक व्याघ्र वहां उस सरोवर में आया जिसकी दहाड़ से काँपते हुए उन निरीह पशुओं का मन घबड़ाने लगा। अग्रसेन जी वहीं समीप बाग में पेड़ के नीचे लेटे हुए थे। दहाड़ से उनकी आँखे खुलीं तो जो दृश्य उन्होंने देखा उसे देखकर अग्रसेन जी के मन में दया का भाव जागृत हो आया और गौ-रक्षा का पुण्य विचार उनके मन में उत्पन्न हो उठा।

बाण अग्र ने छोड़ा तब इक। सभी सुरक्षित मरा न कोइक।।
व्याघ्र के चारों ओर बाण थे। गौ-कुल नारि सिंह जीवित थे।।

(4) तब वीर अग्र ने एक ऐसा बाण छोड़ा जिससे मरा तो कोई नहीं बल्कि सभी प्राणी सुरक्षित हो गये। व्याघ्र चारों ओर से बाणों के पिंजड़े में बन्द था। गौ-परिवार और सिंह सभी जीवित थे।

दया अहिंस जीव हित ममता। इसी को कहते प्यारे! समता।।
जिसके दिल में रहती समता। उसके सम्मुख हर जन नमता।।
सो समता को निज उर धारो। जीवन सबका नित्य सुधारो।।

(5) जैमिनी ऋषि कहते हैं - हे जनमेजय! दया, अहिंसा, प्राणीमात्र का कल्याण तथा सभी पर ममत्व बरसाना - इसी को तो महान समता कहा जाता है। जिस प्राणी के हृदय में समता का वास होता है उसके समक्ष हर व्यक्ति नम्रता से झुकता है। इसलिये व्यक्ति को चाहिये कि वह अपने मन में, अपने विचारों में, अपने व्यवहार तथा अपनी करनी में समत्व को स्थापित करे। ऐसा करके वह अपना-सबका जीवन सुधार सकता है।

दो0: गौ-कुल रक्षा देख अरु, जीवित वनराजहि।
अग्रसेन मन भा गये, नागेन्द्री कन्यहि।। (83)

दो० : सुरक्षित गौ-कुल तथा वनराज को जीवित देखकर नागेन्द्री की कन्या के मन को युवा वीर अग्रसेन भा ही गये। (83)

चौ० : नागकुँअरि वैष्णवहि निहारैं। जैसे लक्ष्मी विष्णु निहारैं।।
मन से अग्र पती है माना। खुशी माधवी अंगन जाना।।

चौ० : किसी भी युवा-युवती के मध्य उत्पन्न होने वाले प्रथम आकर्षण का वर्णन करते हुए ऋषि जैमिनी कहते हैं कि नागकुँवारी माधवी उस वैष्णव अग्रसेन जी को उसी प्रकार से निहारती हैं जिस प्रकार स्नेहयुक्त समर्पण भाव से माता लक्ष्मी अपने प्रियतम तथा सहस्त्रों कामदेवों से श्रेष्ठतम भगवान विष्णु को निहारतीं हैं। माधवी ने मन से अग्रसेन जी को अपना पति मान लिया जिसका समर्थन माधवी के अंग-अंग से प्रकट होने वाली खुशी ने कर दिया।

दोनों इक दूजे को देखैं। आपस में दोउ सोच परेखैं।।
ऐसा पुरुष कहाँ से आया ? जिसने मेरा दिल भरमाया।।

(2) युवा अग्र और देवी माधवी दोनों एक-दूसरे की ओर प्रेमभरी दृष्टि से देखते हुए एक-दूसरे के अन्दर-बाहर उत्पन्न होने भाव-परिवर्तन का परेखा कर रहे हैं। माधवी सोचेन लगीं कि यहाँ इस नाग-उपवन में ऐसा वीर पुरुष कहाँ से आ गया जिसने मेरा दिल भरमा दिया ?

पतीरूप में यही मिलैं मौ। सबै भाँति यहि योग्य हैं माँ! मो।।
जगदम्बे को मनहिं धारकर। करैं अराधन देवि नमन कर।।

(3) देवी माधवी ने मन में संकल्प लिया कि पतीरूप में मुझे 'यही वीर' मिलने चाहिये क्योंकि यह सब प्रकार से मेरे लिये योग्य हैं। माता जगदम्बे को अपने मन में धारण करके, उन्हें नमन करके देवी माधवी माता जगदम्बे की आराधना करने लगीं।

पूँछ ही बैठी एक सखी तब। हिलई न डुलई नागकुँअरि जब।।
हुआ तुझे क्या सखी बताओ ? मन में इनको 'मत' पधराओ।।

(4) देवी माधवी जब हिल-डुल नहीं पा रही थी तभी उनमें से एक सखी ने माधवी से पूँछा- अरी सखी ! तुझे क्या हो गया है ? तुम इस युवा वीर को अपने मन में 'मत' पधराओ।

दो0 : भूमी लगी कुरेदने, पद-राजा-नख से।
मानो प्रियतम गुण लिखत, विनिता हिरदय से।।क।।

दो0 : (क) स्तम्भित माधवी अपने सीधे पैर के अँगूठे से संकोचभरी प्रेमयुक्त मुस्कराहट से भूमि को कुरेदने लगी। उस समय ऐसा लगता था मानो विनिता हृदय से 'उनके' गुणों को लिख रही हो।

परम पवित्र वृतांत यह, सच्चे प्रेमिन का।
दिव्य पुरुष प्रऽकर्ति का, राधा कीशन का।।ख।।

(ख) कवि कहता है कि यह परम पवित्र वृत्तीत सच्चे प्रेमियों का है। यह वृत्तांत दिव्य पुरुष और प्रकृति का है। यह प्रसंग राधा-कृष्ण जैसे आदर्श प्रेमियों का है।

"विष्णुदास" की प्रार्थना, सुनै जो दिव्य प्रसंग।
जग उनकी ऐसे सुनै, जैसे हो सत्संग।।ग।। (84)

(ग) विष्णुदास जी की अग्रबन्धुओं से प्रार्थना है कि जो प्राणी इस दिव्य प्रसंग को सुनता है उसकी हर बात को यह संसार सत्संग की तरह सुनता है। (84)

अध्याय बारह 'अग्रसेन-माधवी-मिलन' पूर्ण हुआ।

:::::

(दोहे के अन्त में गाइये)

अग्रवर अग्रसेन पद गहि शरणम्
लक्ष्मी हरि ओम जय विश्वेश्वर
जय करुणेश्वर जय समतेश्वर

卐 अध्याय तेरह (सूर्योपासना) 卐

चौ० : जैमिनि बोले जनमेजय से। अग्र-माधवी बँधे प्रेम से।।
गुप्तचरन संदेशा दीन्हा। चित्रांगहि आदेसा कीन्हा।।

चौ० : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं - हे जनमेजय! जब गुप्तचरों ने आकर नागराज महीधर को संदेश दिया कि आपकी पुत्री माधवी वैष्णव अग्रसेन जी से प्रेम कर बैठी है तो नागराज ने सेनापति चित्रांग को आदेश दिया-

जाओ उस योद्धा को लाओ। विजय प्राप्ति हित वेग पठाओ।।
अग्रसेन कोलाहल सुनई। देख कटकु विस्मय में पड़ई।।

(2) जाओ, उस योद्धा को दरबार में लेकर आओ। हे वीर! विजय प्राप्ति के लिये तुम शीघ्र आओ। अग्रसेन जी ने जैसे ही कोलाहल सुना तो नाग-सेना को देखकर वह आश्चर्य में पड़ गये।

अग्रसेन घेरे विषधर ने। विषमयि शब्दन लगे उगलने।।
इक से पंचम फनवाले वे। अन्य नाग सँग खड़े कुपित वे।।

(3) उन विषधरों ने अग्रसेन जी को चारों ओर से घेर लिया और उनके ऊपर विषयुक्त शब्द उगलने लगे। उस नाग-सेना में एक से लेकर पाँच फन वाले साँप थे। वे अन्य नागों के साथ कुपित भाव से वहाँ खड़े हुए थे।

चतुरंगिनि सेना थी सँग में। दिव्य कवचयुत धनु शर कर में।।
कुण्डल हार बाजुबँद तन पर। बड़-बड़ मुतियन हार मुकुट सर।।
मस्तक मणि रत्नाऽऽलोकित थे। गज हय रथ कुछ-2 पैदल थे।।

(4) सेनापति चित्रांग के साथ जो चतुरंगिनी नाग सेना थी वह दिव्य कवच से युक्त थी। उनके हाथों में धनुषबाण थे। उनके कानों में कुण्डल, गले में हार तथा शरीर पर बाजूबंद था। उनके सिर पर मोतियों के बड़े-बड़े हारों से सजे हुए दिव्य मुकुट थे। उनके मस्तक रत्नों और मणियों से आलोकित थे। नाग-सेना के कुछ वीर हाथियों पर कुछ घोड़ों पर कुछ रथों पर तथा कुछ वीर पैदल थे।

दो० : टूट पड़े रणक्षेत्र में, अग्रसेन-ऊपर।
विष-वर्षा करने लगे, मुख से अति भयकर।। (85)

दो0 : वे नाग एक साथ रणक्षेत्र में अकेले अग्रसेन जी के ऊपर टूट पड़े और अपने मुखों से उन पर भयंकर विष वर्षा करने लगे।(85)

चौ0 : विष-अग्नी से बल कम लागा।रक्षहि आत्मबले बड़भागा।।
अग्रसेन रिपु मधि महँ विचरैं। जैसे सूर्य मेघ बिच भ्रमरैं।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि विष की वर्षा से अग्रसेन जी के शरीर का बल कम होने लगा। बड़भागी अग्रसेन जी ने अपने आत्म-बल को जागृत करके अपनी रक्षा करने का विचार किया। जिस प्रकार सूर्य अकेले ही मेघों के मध्य निडरतापूर्वक विचरण करते हैं वैसे ही अकेले अग्रसेन जी शत्रुओं के बीच विचरण कर रहे हैं।

वीर अग्र इत होंय अकेले। उत विषधारिन के अति मेले।।
सेनापति उत्साह भराया। वीर डरो मत 'यह' मन भाया।।

(2) इधर वीर अग्र अकेले हैं और उधर विषधारियों के मेले लगे हुए हैं। अग्र-शौर्य से घबड़ाये हुए नागों को देखकर चित्रांग ने उत्साहवर्धन करते हुए अपने सैनिकों से कहा - वीरों! डरो मत। 'यह' हमारे मन को भा गया है।

बत्तिस पैंतरे असि से दिखाए।विषधर सम्मुख टिक नहिं पाये।।
हर योद्धा सँग अग्र लड़त हैं। एक नहीं 'बहु' उन्हें लगत हैं।।

(3) जब अग्रसेन जी ने तलवार के बत्तीस पैंतरे दिखलाये तो विषधर उनके सामने टिक नहीं पाये। उन भ्रमित नाग वीरों को लगता था कि हर वीर नाग के साथ अग्रसेन जी अलग-अलग युद्ध कर रहे हैं।

एक हाथ असि खड्ग था दूजहिं।भय नहिं कोई रवि सम शोभहिं।।
सेनारूपी गज झुँड मध्यहिं। निडर खड़े जैसे वन सिंहहि।।

(4) वीर अग्र के एक हाथ में खड्ग और दूसरे हाथ में तलवार थी। उन्हें नागों का कोई भय नहीं था। अग्रसेन जी नाग-सेना में रवि के समान शोभायमान थे। नाग-सेना रूपी हाथियों के मध्य वन में श्री अग्रसेन जी निडर सिंह की भाँति दृढ़तापूर्वक खड़े हुए थे।

दो0 : भस्म करैं विष-अग्नि से, सोचत हैं चित्रांग।
पन्नगिमाया सृष्टि की, मायावी चित्रांग।। (86)

दो० : चित्रांग ने सोचा कि इस वीर को हम विष की अग्नी से भस्म कर ही दें। तब मायावी चित्रांग ने पन्नगीमाया की सृष्टि कर दी। (86)

चौ० : घातक शर छोड़े चित्रांगे। अग्रसेन अँग-अँग में लागे।।
सारा अंग रक्त से लथपथ। फिर भी कूदे चित्रांगहि रथ।।

चौ० : (1) जैमिनी जी कहते हैं कि – सेनापति चित्रांग ने एक से बढ़कर एक घात बाण छोड़े जो अग्रवीर के अंग-अंग में जाकर लगे। अग्रवीर का सारा शरीर खून से लथपथ हो रहा था फिर भी वह वीर चित्रांग के रथ पर कूद पड़ा।

यह रथ था अति ही मायावी। धीर सर्प तहँ लिपटत हावी।।
निःश्वऽस वायू मुख से आती। हर वस्तू जो तुरत जलाती।।

(2) यह रथ बड़ा मायावी था। इस रथ पर धीर सर्प सब ओर भंयकरता से लिपटे हुए थे। उनके मुखों से निकलने वाली वायु हर वस्तु को शीघ्र जला डालने में सक्षम थी।

तौऊ अग्र हार नहिं मानत। स्वयं बचावैं रिपु सैं भारत।।
मायावी की पन्नगिमाया। सर्पाकार शरन से बाँध्या।।

(3) तौऊ वीर अग्र ने हार नहीं मानी। वीर भारत रिपुओं से स्वयं को बचाते हैं। उस मायावी की पन्नगीमाया से उत्पन्न सर्पाकार बाणों ने वीर अग्र को कसकर बाँध लिया।

पीड़ित अंग भए निष्क्रिय थे।फिरहू मन नहिं अग्र व्यथित थे।।
इसको मारो करो बिलँब ना। सेनापति का था यह कहना।।

(4) अग्र के अंगों में पीड़ा होने से वह निष्क्रिय हो गये फिर भी अग्र मन में तनिक भी व्यथित नहीं हुये। सेनापति ने आदेश देते हुए कहा – हे वीर नागों! अब देर मत करो। इसे तुरन्त मार डालो।

दो० : महामंत्रि तब यों कहा, जानहु को क्यूँ आय?।
वध या पूजन तब करैं, मम मत मानहु भाय!। (87)

दो० : तब नाग महामंत्री ने इस प्रकार कहा – हे सेनापति चित्रांग! पहले यह तो जान लिया जाना चाहिये कि यह कौन है ? नागलोक में आने का

इसका क्या कारण है ? मेरे विचार से तभी इस वध या पूजन किया जाना उचित होगा। (87)

चौ0 : तन को यद्यपि तन ही जकड़े।फिर भी पीड़ा तनिक न पकड़े।।
लगता है कुल का अभिमानी। सँग नीतिज्ञ युद्ध गुण ज्ञानी।।

चौ0 : जैमिनी ऋषि कहते हैं कि यद्यपि तन को तन जकड़ता है फिर भी यह वीर किंचित भी व्यथित नहीं है। यह वीर किसी अभिमानी कुल का लगता है। यह वीर नीतियों को जानकार तथा युद्ध के गुणों का भी जानने वाला मालूम होता है।

सो इसकी रक्षा आवश्यक।कहा मंत्रि सेनापति से तव।।
धीर अग्र संरक्षण सौंपत। राजभवन चल दिये सेनपत।।
सारी रात जागते बीती। सूर्य देख कहँ वचन विनीती।।

(2) इसलिये इसकी रक्षा करना आवश्यक है - जब महा अमात्य ने ऐसा कहा तो सेनापति भौंचक्के से रह गये। धीर अग्रसेन को संरक्षण में सौंपते हुए वे सेनापति सहित राजभवन की ओर चल पड़े। अग्रसेन जी की सारी रात जागते हुयी बीती। प्रातःकाल जैसे ही अग्रसेन जी ने सूर्यदेवता के दर्शन किये तो वह उनसे इस प्रकार विनययुक्त वचन बोलने लगे।

(अग्रसेन जी द्वारा भगवान सूर्य की प्रार्थना)

छ0 : करता नमन प्रभु आपको मैं आपको रवि देवता।
देखता नित आपको प्रत्यक्ष तुमको सेवता।।टेक।।

छंद : (टेक) हे रवि देवता! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे भानु देवता! मैं नित्य प्रातः आपका प्रत्यक्ष दर्शन करता हूँ।

हैं जगत् उत्पत्तिकर्ता और प्रेरक आप ही।
पुष्टिदाता सप्त अश्वन रथ पे विचरत आप ही।।(1)

(1) आप ही जगत की उत्पत्ति करने वाले हैं। आप ही इसके प्रेरक और पुष्टिदाता हैं। सात घोड़ों के रथ पर नित्य विचरण करने वाले आप ही हैं प्रभो।

हर मास में हर राशि के होते हैं स्वामी आप ही।
उत्तरायण दक्षिणायन को प्रकाशैं आप ही।।(2)

(2) हे प्रभो! आप ही हर मास में पड़ने वाली राशियों के स्वामी हैं। उत्तरायण और दक्षिणायन को प्रकाशमान करने वाले आप ही हैं प्रभो।

मूक बोले अंध देखे बधिर सुनता आपसे।
शीर्ष-पीड़ा शूल कुष्ठऽदि रोग हटते आपसे।।(3)

(3) प्रभो! आपकी कृपा से गूँगा बोलने लगता है, अंधा देखने लगता है तथा बहरा सुनने लगता है। हे प्रभो! शीर्ष-पीड़ा, शूल-पीड़ा तथा कुष्ठ जैसे रोग भी आपकी कृपा से समाप्त हो जाते हैं।

कांति है प्रभु! स्वर्ण सम अरु रश्मियाँ तव नेत्र सी।
संसार को जो देखतीं अरु कष्ट हरतीं ढेर सी।।(4)

(4) हे प्रभो! आपके शरीर की कांति स्वर्ण के समान हैं। आपकी रश्मियाँ आपके नेत्रों ती तरह हैं जो सारे संसार को देखती हैं और उनके कष्टों को दूर करती हैं।

दिनप्रवर्तक पीत तन अरु जल के सृष्टा मेघ हू।
त्रय युगन संस्थापकऽरु जग जन्म -रक्षक अन्त हू।।(5)

(5) हे प्रभो! दिन के प्रवर्तक, पीत तन वाले तथा जल की उत्पत्ति करने वाले मेघ आप ही हैं। आप ही तीनों युगों के संस्थापक हैं। इस जगत के जन्म-रक्षक-अन्त भी आप ही हैं प्रभो।

ऋग यजुर अरु साम सँग आथर्व वेदहु आपसे।
पूराण हों या आगमहु सब ही प्रभो! हैं आपसे।।(6)

(6) हे प्रभो! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, अठारह पुराण और सारे आगम आपसे ही हैं।

इतिहास-गाथायें प्रभो! सब ज्ञात होती आपसे।
ब्रह्मरूपे विश्वरूपे रुद्ररूपे आपसे।।(7)

(7) हे प्रभो! इतिहास की सारी गाथायें आपसे ही ज्ञात होती हैं। ब्रह्मरूप में, विश्व रूप में तथा रुद्ररूप में आप ही हैं प्रभो।

विश्व की हर कामना के पूर्तिकर्ता आप ही।
सबके मन बुद्धी में रहते विश्वरूपे! आप ही।।(8)

(8) विश्व की प्रत्येक कामना की पूर्ति करने वाले आप ही हैं प्रभो। हे प्रभो! विश्वरूप में सबके मन में आप ही तो रहते हैं।

पुरुष निर्मल हंसरूपहु रश्मिमय महऽआप ही।
युक्त मणि कुण्डल प्रभू जी! मुक्तिदातहु आप ही।।(9)

(9) हे प्रभो! आप ही पुरुष हैं। आप ही धवल हंसरूपा हैं। आप महान रश्मियों से युक्त हैं। दिव्य मणियों एवं कुण्डलों से युक्त आप ही तो हैं प्रभो। हे प्रभो! आप ही सबको मुक्ति देने वाले हो।

आपको जो पूजता वर उत्तमम् देते उसे।
प्रप्पितामह! नाग-बन्धन काटिये मम वेग से।।(10)

(10) हे प्रभो! जो भक्त आपको पूजता है आप उसे उत्तम वर प्रदान करते हो। हे प्रपितामह! आप शीघ्र ही मेरे इस नाग-पाश को काट दीजिये।

सूर्य भास्कर भानु रवि हीरण्यगर्भहु आपही।
तेजोमया हर रूप में जित देखता उत आप ही।।(11)

(11) हे प्रभो! सूर्य, भास्कर, भानु, रवि तथा हिरण्यगर्भादि आपके विभिन्न नाम हैं। हे तेजोमया! मैं जिधर देखता हूँ, मुझे हर रूप में आप ही दिखायी देते हो।

शनि-पिता! यमुना-पिता! हनु ज्ञान लीन्हा आपसे।
"विष्णुदास" प्रसन्न होवैं है विनय प्रभु! आपसे।।(12)

(12) हे प्रभो। शनि महाराज तथा यमुना मैया के पिता आप ही हैं। राम भक्त हनुमान ने ज्ञान की शिक्षा आपसे ही प्राप्त की थी। विष्णुदास कहते हैं तब वीर अग्र ने विनय करते हुए सूर्यदेव से कहा कि हे प्रभो! अब आप मुझ पर प्रसन्न होइये।

दो0 : जैमिनी जनमेजय कहैं, दिनकर भये प्रसन्न।
नागपाश से मुक्त भए, हट गए सब बन्धन।।क।।

दो० : (क) जैमिनी ऋषि नृप जनमेजय से कहते हैं कि तब दिनकर प्रसन्न हो गये और अग्रसेन जी के सब बन्धन कट गये। वह नागपाश से मुक्त हो गये।

हो इकाग्रचित जो करे, रवि-स्तोत्रहि पाठ।
द्वादश वर्षे होत हैं, उसके नित नव ठाठ।।ख।।

(ख) जो साधक एकाग्रचित्त होकर इस सूर्य-स्तोत्र का पाठ करता है उसके बारह वर्षों में नये-नये ठाट-बाट होने लग जाते है।

"विष्णुदास" की बात को, धरिये निज हृदय।
सूर्यवंश के हैं जनक, यह श्री रविदेवय।।ग।।

(ग) विष्णुदास जी कहते हैं कि हे अग्रवंशियों! आप मेरी इस बात को अपने हृदय में स्थापित कर लीजिये कि यह रविदेव ही हमारे महान सूर्यवंश के संस्थापक कहे जाते हैं।

सुख श्री सम्पति तेज हू, जो चाहो लीजे।
"विष्णुदास" पर नेम से, ध्यान भानु कीजे।।घ।। (88)

(घ) हे भक्तों! सुख, श्री, सम्पत्ति अथवा तेज में से आपको जिस वस्तु की भी आवश्यकता हो, आप उसे भगवान सूर्यदेव से प्राप्त कर लीजिये। विष्णु दास जी कहते हैं परन्तु शर्त यह है कि आपको नियम से भगवान भानुदेव का ध्यान करना होगा। (88)

अध्यात्म तेरह 'सूर्योपासना' पूर्ण हुआ।

:::::

(दोहे के अन्त में गाइये)

अग्रवर अग्रसेन पद गहि शरणम्
लक्ष्मी हरि ओम जय विश्वेश्वर
जय करुणेश्वर जय समतेश्वर

ॐ अध्याय चौदह (माधवी द्वारा प्रार्थना) ॐ

चौ० : जैमिनि बोले जनमेजय से। प्रेम-कथा सुनु आराधन से।।
राजभवन लौटीं सब सखियाँ।वन में लड़ गइँ जब से अँखियाँ।।

चौ० : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि हे जनमेजय! अब तुम आराधन की इस प्रेम-कथा को सुनो। समस्त नाग सखियाँ राजभवन को लौट आयीं। जब से माधवी के नेत्र वन में अग्रसेन जी के नेत्रों से लड़े हैं।

तब से मौनी भई कुमारी। नागेन्द्री सन कहैं बिचारी।।
पुत्री से पूँछा माता ने। हुआ तुम्हें क्या? क्या दुख उर में??

(2) तब से कुमारी माधवी ने मौन व्रत धारण कर लिया है। नागेन्द्री मन में विचारमग्न हो जाती है। एक दिन माता नागेन्द्री ने पुत्री माधवी से पूँछा - हे पुत्री! तुम्हें क्या हो गया है ? तुमने अपने हृदय में कौन-सा दुख पाल रखा है?

कहो कहाँ कैसे कब हूआ? रोग असाध्य तुम्हें जो हूआ।।
पिता तुम्हारे महावीर हैं। फिरहु व्यथित तुम कौन वीर हैं?।।
रो-रो पुत्री माँ से बोली। यौवन नारिन लज्जा होली।।

(3) तुम्हें यह जो असाध्य रोग लगा है वह कब, कहाँ, कैसे लगा ? तुम्हारे पिता महावीर है फिर तुम इतनी व्यथित क्यों हो रही हो ? वे कौन वीर हैं।' रोते हुए पुत्री ने माता से कहा - हे माते! यौवन में ही नारियों को लज्जा घेरती है।

सर-तट देखा एक दिव्य जन। जिससे लागा माँ! मोरा मन।।
देव नाग नर किन्नर से बड़। यक्ष ऋषी गंधर्वहु से बड़।।

(4) उपवन में सरोवर के तट पर मुझे एक दिव्य पुरुष के दर्शन हुए जिससे मेरा मन लग गया है। हे माता! वे देव, नाग, नर, किन्नर, यक्ष, ऋषि एवं गंधर्व से भी श्रेष्ठ हैं।

दो० : कुल-कीरत नहिं जानती, पुरुषार्थहु नहिं ज्ञात।
फिर कैसे चाहन लगी? बात न मोय सुहात।। (89)

दो० : अरे मूढ़! क्या तुझे अपने कुल की कीर्ति का ज्ञान नहीं है? क्या तुझे महान नागों की पुरुषार्थ - गाथा की भी जानकारी नहीं है? फिर तू कैसे सामान्य जन को चाहने लगी? नहीं, पुत्री! मुझे तेरी यह बात मेरी समझ में नहीं आती। (89)

चौ० : माते! शिष्ट रूप अति सुन्दर। देखन में मृदु और मनोहर।।
देव ऋषी नागन में नाहीं। जिसे बसाया मैं मन माहीं।।

चौ० : तब पुत्री ने माता से कहा - हे माते! उनका शिष्ट रूप बड़ा ही सुन्दर है। वो देखने में मृदु और मनोहर है। जिस पुरुष को मैंने अपने मन में बसाया है वैसा देवता ऋषियों अथवा नागों में कोई नहीं है।

साधारणजन यदि वे हुवते। नागलोक में कैसे घुसते?।।
उनके सँग में कोइ नहीं है। दिव्य पुरुष 'वे' क्या ये सही है?।।

(2) हे माते! यदि वे साधारण पुरुष होते तो इस नागलोक में कैसे घुस पाते? उनके साथ कोई नहीं है। क्या वे दिव्य पुरुष हैं? हे माँ! क्या मेरा सोचना सही है ?

नाग शक्ति सौ गुनहि बढ़ा लैं। तौऊ उन्ह सम मात नहीं वैं।।
माते! उनको पुनः दरसना। नहिं तो निश्चित मेरा मरना।।

(3) ये नाग भले ही अपनी शक्ति सौ गुना बढ़ा लैं तो भी ये उनके समान नहीं होंगे माते। हे माते! मुझे पुनः उनके दर्शन करना है वरना तू मेरी मरना निश्चित समझ।

पति होंगे तो वे ही होंगे। अन्य दूसरे कतइ न होंगे।।
कामदेव से बढ़कर सुन्दर। मुझको लागैं 'वे' सम ईश्वर।।

(4) हे माँ! मेरे पति होंगे तो वे ही होंगे। अन्यों में कोई मेरा पति नहीं होगा। अरी माँ! वे कामदेव से भी अधिक सुन्दर हैं। मुझे तो वे ईश्वर (कृष्ण) ती तरह प्रतीत होते हैं।

दो० : नागेन्द्री महि ढिंग गई, अरु बोली ऐसे।
विवाह योग्य पुत्री भई, सोचो जल्दी से।क।।

दो0 : (क) तब नागरानी नागेन्द्री पति महीधर के पास जाकर उनसे इस प्रकार बोली - हे स्वामी! पुत्री विवाह योग्य हो गयी है। इस हेतु शीघ्र विचार कीजिये।

जब से देखा एक जन, तब से हो गयी सुन्न।
रोगी सी है दीखती, मन मेरा अति खिन्न।।ख।।

(ख) हे स्वामी! जब से उसने एक पुरुष को देखा है तब से वह सुन्न सी हो गयी है। वह रोगी सी दिखाई देती है। इससे मेरा मन अति खिन्न हो रहा है।

पुत्री कन्या है अभी, महि बोले ऐसे।
नाग-मित्र हैं सुरपती, को बढ़कर उनसे?।ग।। (90)

(ग) महीधर बोले- अरी भाग्यवान! पुत्री माधवी अभी कन्या (बच्ची) है। देवेन्द्र हम नागों के मित्र हैं। भला पुत्री के लिये उनसे बढ़कर और कौन हो सकता है? (90)

चौ0 : इन्द्र-संदेशा मुझे मिला है। मेरा मन अत्यन्त खिला है।।
वचन दिया है देवराज को। पूर्ण करेंगे पुण्य काज को।।

चौ0 : (1) हे नागेन्द्री! इन्द्रदेव का संदेशा मुझे मिल चुका है। इससे मेरा मन और खिल गया है। मैंने देवराज को वचन भी दे दिया है। इस पुण्य कार्य को हम शीघ्र पूर्ण करेंगे देवी।

फिर मानव की क्या हस्ती है? उसकी मौत बड़ी सस्ती है।।
वैष्णव शत्रू सदा हमारे। व्याह बाद अति पूज्य हमारे।।

(2) अरे, देवेन्द्र के सम्मुख भला मानव की क्या हस्ती है? उसकी तो मौत भी बड़ी सस्ती है। वैष्णव सदा नागों के शत्रु रहे हैं। विवाह के बाद तो वे हमारे लिये पूजनीय हो जायेंगे।

सो सम्बन्ध है कैसे सम्भव ? नहिं महारानी पूर्ण असम्भव।।
देवों से प्रिय! क्यों डरते हैं? वे तो सबके दुख हरते हैं।।

(3) इसलिये वैष्णवों से सम्बन्ध कैसे सम्भव है ? नहीं महारानी। यह पूर्ण असम्भव है। नागेन्द्री बोली - हे प्रिये! आप देवताओं से इतना क्यों डरते हो? देवता तो सबके दुखों का निवारण करने वाले कहे जाते हैं।

स्वयंवरा होती इत कन्या। नागलोक यहि धर्म है मन्या।।
तव पुत्री जो पुरुष गहा है। मन से उसको पती कहा है।।

(4) हमारे इस नागलोक में कन्या स्वयंवरा कही जाती है। नागलोक में यही धर्म मान्य है। हे स्वामी! आपकी पुत्री ने जिस पुरुष को गहा है उसे उसने मन से अपना पति मान लिया है। ऐसा उसने मुझसे कहा है।

दो0 : व्याह सुता का कीजिए, उसी पुरुष के संग।
जिसे माधवी मन धरा, रंग यही सतरंग।।क।।

दो0 : (क) हे स्वामी! मेरी मानो तो जिस पुरुष को हमारी पुत्री माधवी ने अपने मन में धारण कर लिया है उसी पुरुष के संग उसका व्याह कर दीजिये। यही सतरंगी रंग उचित होगा।

'महि' ने रानी से कहा, ऐसा नहिं सम्भव।
नागेन्द्री रोवत गईं, छोड़ नृपहिं भौंचक्क।।ख।।

(ख) महीधर बोले- नहीं महारानी नहीं। ऐसा कतई सम्भव नहीं। नागेन्द्री नागेन्द्र को भौंचक्का छोड़कर रोती हुई वहाँ से चली गयीं।

माता से जब ही सुना, पितु का कटु निर्णय।
पुत्री ने रोकर कहा, सुन माँ बात हृदय।।ग।।

(ग) माता वैदर्भी से जैसे ही माधवी ने पिता का कठोर निर्णय सुना तो वह रोती हुयी अपनी माता से बोली – हे माँ! तू मेरे हृदय की बात सुन।

'उनको' यदि नहिं पा सकी, पती रूप में मात!।
तो फिर जीना व्यर्थ है, अग्निहि दूँगी गात।।घ।। (91)

(घ) हे मात! यदि मैं उनको अपने पतिरूप में प्राप्त नहीं कर सकी तो फिर मेरा जीवित रहना व्यर्थ है। मैं अपना यह शरीर अग्नि को समर्पित कर दूँगी। (91)

चौ0 : सखियाँ बोली आपस में तब। अति उदास 'देवी' देखी जब।।
इन दोनों को शीघ्र मिलायें। संदेशा 'उनको' दे आयें।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि सखियों ने जब माधवी को उदास देखा तो वे आपस में बोलीं कि इन दोनों को हमें शीघ्र मिलाना चाहिये। चलो, उनको संदेश दे आयें।

सुखी रोहिणी शशि सँग होवै। राजकुमारी वा हित रोवै।।
दोनों शीलवान हमउम्रहि। उत्तम कुल में भी हैं जन्महि।।

(2) रोहिणी चन्द्रमा के साथ ही सुखी होती है। हमारी राजकुमारी उन्हीं के लिये रोये जा रही है। ये दोनों शीलवान हैं। हम उम्र हैं। दोनों उत्तम कुल में जन्मे हैं।

सबने उसको गले लगाया। वचनों से सन्तुष्ट कराया।।
जस शिव पार्वती सँग रहते। तस तुम दोनों गइँ यह कहते।।

(3) सखियों ने उस बेचारी को गले लगाकर अपने वचनों से सन्तुष्ट कर दिया। यह कहकर कि जिस प्रकार शिव-पार्वती साथ-साथ रहते हैं उसी प्रकार तुम दोनों भी ..... इतना कहकर वे नागकन्यायें वहाँ से चली गईं।

चिंता मनहिं माधवी आयी। कब कैसे 'सुभाग' हौं पायी।।
करो प्रार्थना सच्चे मन से। मात भगवती जगदम्बे से।।

(4) माधवी के मन में चिंता होने लगी कि मैं कब और कैसे अपना सौभाग्य प्राप्त कर पाऊँगी? तभी एक सखी बोली—अरी सखी! तुम सच्चे मन से माता भगवती जगदम्बे से प्रार्थना करो।

दो0 : चित्रा सखि के कहन पर, चित्त किया स्थिर।
सखिन संग नदि-तट गई, पार्वती मन्दिर।। (92)

दो0 : चित्रा सखी के कहने पर अपने चित्त को स्थिर करके माधवी सखियों के साथ नदी किनारे स्थित माता पार्वती के मन्दिर को गईं। (92)

चौ0 : हे माँ! यदि हूँ पात्र अनुग्रह। पूरण कीजे जो मम उर महँ।।
बाँध अँजुरि कर जोड़ खड़ी हूँ। हे माँ! तेरे चरण पड़ी हूँ।।

चौ0 : (1) देवी माधवी बोली – हे भगवती जगदम्बे माता! यदि मैं तुम्हारे अनुग्रह की पात्र हूँ तो जो मेरे हृदय में है उसे पूरा करो। मैं तेरे सामने अँजुरी बाँधकर दोनों हाथ जोड़कर खड़ी हूँ। हे माँ! मैं तेरे चरणों में पड़ी हूँ।

माता! यदि 'वो' पति है मेरा। साँझ में भर दो नया सवेरा।।
व्रत कीया यह उन हित मैंने। दीजे फल में 'वो' सुख-चैने।।

(2) हे माता पार्वती! यदि वो ही मेरा पति है तो साँझ में नये सवेरे का रंग भर दो। मैंने उन्हीं के निमित्त इस व्रत को किया है। मेरे सुख के चैन को तुम मुझे फल रूप में दो।

सिध चारण जिहि सेवा करते। कार्तिकेय जिहि माता कहते।।
श्रेष्ठ हिमालय की पुत्री जो। नमन करूँ मैं उस देवी को।।

(3) सिद्ध-चारण जिसकी सेवा करते है, कार्तिकेय जिसे माता कहते हैं तथा जो श्रेष्ठ हिमाचल की पुत्री हैं मैं जन-जन की उस देवी को नमस्कार करती हूँ।

जगरक्षक म्हाव्रत धारिणि तुम। भक्तिप्रिये अरु शैलपुत्रि तुम।।
रुद्रप्रिये भक्तन दुखहारिणि। वसुन्धरे तुम सर्वहितैषिणि।।

(4) हे माँ! आप जग की रक्षा करने वाली हैं। आप महान व्रतों को धारण करने वाली हैं। आप भक्तिप्रिये और शैलपुत्री कही जाती हैं। आप ही रुद्रप्रिया, भक्तनदुखहारिणी, वसुन्धरा और सबका हित करने वाली कही जाती हैं माता।

दो0 : पूर्ण मनोरथ कीजिये, हे गौरी माता!।
पतीरूप में दीजिये, वो जो मन भाता।।क।।

दो0 : (क) हे गौरी माता! आप मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये। वो जो मेरे मन को भा गया है आप उसे ही मेरे पतिरूप में मुझे प्रदान कीजिये।

उर-अभिलाषा जानकर, माता भई प्रकट।
हँसकर कन्या से कहा, दुख-बदरा गए छँट।।ख।।

(ख) माधवी की उर-अभिलाषा जानकर माता जगदम्बे प्रकट हुयीं। माता ने हँसकर कहा- पुत्री ! तेरे दुख के बादल अब छँट गये।

तब व्रत ले माधवि कहा, वर्षा ऋतु ऊपर।
शुक्ल पक्ष की तीज को, ध्याऊँ माँ! हितवर।।ग।।

(ग) तब देवी माधवी ने व्रत लेकर घोषणा की कि श्रावण ऋतु में आने वाले शुक्ल पक्ष की तृतीया को सबका हित साधने वाले इस व्रत को मैं अवश्य पूर्ण करूँगी।

मण्डप पुहप बनाय कर, उसमें रख तव चित्र।
पूजूँगी श्रद्धासहित, माँ! तू सच्ची मित्र।।घ।। (93)

(घ) हे माँ! पुष्पों का मण्डप बनाकर, उसमें तेरा चित्र स्थापित करके श्रद्धा सहित मैं तेरा पूजन करूँगी क्योंकि हम स्त्रियों की तू ही सच्ची मित्र है। (93)

अध्याय चौदह 'माधवी द्वारा प्रार्थना' पूर्ण हुआ।

:::::

(दोहे के अन्त में गाइये)

अग्रवर अग्रसेन पद गहि शरणम्
लक्ष्मी हरि ओम जय विश्वेश्वर
जय करुणेश्वर जय समतेश्वर

卐 अध्याय पन्द्रह (शैव्य-वैष्णव) 卐

चौ0 : नागपाश-बन्धन से छुटई। सुनत महीधर चिंता हुवई।।
इन्द्र अवश ही कोप करेंगे। नागवंश को दुखी करेंगे।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि जब नागराज महीधर ने सुना कि युवा वीर अग्र नागपाश के बन्धन से मुक्त हो गए हैं तो नागपति के मन में बड़ी चिंता हो गयी। उन्होंने सोचा कि इन्द्र निश्चित ही उन पर कोप करेंगे और नागवंश को दुखी करेंगे।

नागराज ने सभा बुलायी। दिल की बात सबै बतलायी।।
भलीभाँति ऊपाय बताओ। संकट तुरतहि दूर भगाओ।।

(2) नागराज जी ने सभा बुलायी और सबको अपनी चिंता से अवगत करा दिया। नागराज जी ने कहा है कि उपस्थित नागराजों! आप लोग भलीभाँति विचार करके कोई उचित उपाय बतलाइये और नागवंश के इस संकट को दूर भगाने में हमारी सहायता कीजिये।

मणीनाथ बोले मणिधर से। सुरपति रार करेंगे हमसे।।
सो विवाह पुत्री का टालो। कोई उचित उपाय निकालो।।

(3) मणिधर नाम के एक बुद्धिमान नाग बोले- हे महाराज! सुरपति अब हमसे अवश्य ही रार करेंगे। इसलिये मेरी राय में इस समय पुत्री माधवी का विवाह कुछ समय के लिये टाल दिया जाये। तब तक हम कोई न कोई उपाय निकाल ही लेंगे।

अनँतनाग बोले मणिधर से। दोष बहुत शैवऽरु वैष्णव से।।
कह कल्माष नाग डसई उहि। मृतक पुरुष से व्याह होत किहि।।

(4) अनंतनाग जी अपनी राय प्रकट करते हुए बोले- हे महाराज! शैव्यों और वैष्णवों में अनेक दोष है। तब कल्माष नामक एक अन्य नाग ने अपनी राय बतलाते हुए कहा कि क्यों ना उस पुरुष को डस लिया जाए? मृतक पुरुष से भला कौन स्त्री विवाह करना पसन्द करेगी?

दो0 : उचित नहीं कुविचार ये, बोले धर्मी नाग।
अधर्म प्रवृत्ती नाशती, सब जग हे महिराज।।क।।

दो0 : (क) वहाँ बैठे हुए कुछ धर्मपरायण नागों ने कहा – नहीं महाराज! ऐसे कुविचार उचित नहीं है। हे महीराजा! अधर्म की प्रवृत्ती सारे जग का नाश कर देती है।

माया से मोहित करो, फिर ठग लो उसको।
सुधि वक्ता इक यों कहा, देखैं सब महि को।। ख।। (94)

(ख) एक अन्य सुधि वक्ता ने अपनी सलाह देते हुए कहा– हे महाराज! माया से मोहित करके उस वैष्णव को ठग लिया जाये। सब नागराज महीधर की ओर देखने लगे। (94)

चौ0 : कर्कोटक बोले सुर-कारन। सो भय इनसे खाते राजन।।
यदि भय इनका हमें न होता। तो विवाह अब तक था होता।।

चौ0 : (1) कर्कोटक नाग ने कहा – हे महाराज! विनाश का कारण तो ये देवता हैं। इसीलिये हमें इनसे भयभीत होना पड़ता है। यदि हमें इन सुरगणों से भय न होता तो अब तक नागपुत्री माधवी का विवाह उस वैष्णव से हो गया होता।

महिधर बोले हमें न भाया। को विचार जो सम्मुख आया।।
नागाचार्य कहा तब क्रोधहिं। पौरुष याद करो हे कृपणहिं।।

(2) महीधर राजा ने कहा – हे नागश्रेष्ठिगण! अब तक जितने भी विचार सामने आये उनमें से कोई भी विचार हमें उचित नहीं लगा। तभी अब तक शांत बैठे हुये नागों के कुलाचार्य उद्दालक ऋषि क्रोध पूर्ण शब्दों में बोले – हे कायरों! जरा अपने पौरुष को याद करो।

'अग्र' तुम्हारा कहा बिगाड़ा। प्रेम से तुम्हरी आया शरणा।।
सुर अनुरूप किया है सब तुम।फिर क्यों उनसे डरते हो तुम?।।

(3) युवा धीर अग्रसेन ने तुम्हारा क्या बिगाड़खाता किया है। वह तो प्रेमवश तुम्हारी शरण में आया है। तुमने अब तक देवताओं के अनुरूप लगने वाले कार्य ही किये हैं ? फिर भी तुम उनसे डर रहे हो।

राजभवन अग्रहिं तब आये। छवि मनुहारी नृप मन भाये।।
बारह फन वाले आसन थे। नाग मही जहँ अति छाजत थे।।

(4) क्यों ? तभी, राजकुमार अग्रसेन जी नागों के उस राजभवन में आये। नागासन पर बैठे हुए नागराज महीधर की छवि को देखकर वह मन ही मन भरमा गये। बारह फण वाले दिव्य आसन पर नागराज जी विराजमान थे।

दो0 : दिव्य गन्ध बहती वहाँ, अमृतमय थे कुण्ड।
जिनकी रक्षा नित करैं, दिव्य नाग के झुण्ड।।क।।

दो0 : वहाँ राजभवन में दिव्य गंध प्रवाहित हो रही थी। वहाँ के अमृत से भरे हुये कुण्डों की रक्षा दिव्य नागों के झुण्डों से निरन्तर होती रहती थी।

दिव्य चित्र थे खम्भ पै, छत हू अती विचित्र।।
नाग आसने कुछ खड़े, विस्मित देखा मित्र।। ख।।(95)

(ख) खम्भों पर दिव्य चित्र अंकित थे। भवन की छत भी विचित्र चित्रों से परिलक्षित थी। कुछ नाग आसन के निकट भी खड़े हुए थे। ये सारा दृश्य मित्र की भावना रखने वाले नाग-मित्र अग्रसेन जी ने वहाँ देखा। (95)

चौ0 : दीप प्रज्ज्वलित शत-शत देखे। चन्दन तेल भरे सब देखे।।
अग्र दृष्टि गइ तब आसन पे। राजा को देखा विस्मय से।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि नागलोक के राजा महीधर के राजभवन की दिव्यता का वर्णन करते हुए आगें कहते हैं कि-युवा अग्रसेन जी ने राजभवन में चन्दन के तेल से भरे हुए सहस्त्रों सहस्त्र दीप जलते हुए देखे। और जब अग्रसेन जी की दृष्टि नागराज जी के ऊपर पड़ी तो उन्होंने विस्मयपूर्वक महीधर जी की ओर देखा।

उत राजा जब देखा अग्रे। सोचा कार्तिकेय तो नहिं ये।।
दोनों लगते दिव्य अलौकिक। इक-दूजे को भावत हर इक।।

(2) वहीं दूसरी ओर जब नागराज जी की दृष्टि गौरवर्णीय कामदेव से भी सुन्दर दिव्य आभा से युक्त अग्रसेन जी पर पड़ी तो उन्हें अग्रसेन जी कुमार कार्तिकेय के समान प्रतीत हुए। उन्होंने सोचा कि कहीं यहाँ स्वयं कार्तिकेय तो नहीं पधारे हैं। दोनों दिव्य और अलौकिक प्रतीत होते हैं। दोनों एक-दूसरे को पसन्द करने लगते हैं।

अग्रसेन तब बोले राजन। शरण आपकी हे हितसाधन!।।
अद्‌भुत आसन अग्र बिठाये। नाग सभी तब ध्यान धराये।।

(3) तब युवा अग्रसेन जी बोले कि सबके हितों को साधने वाले नागराज महीधर! मैं आपकी शरण में आया हूँ। नागराज जी ने अग्रसेन जी को अद्‌भुत नागासन पर बैठाया। उपस्थितजनों ने ध्यान से उस वीर को देखा।

को हो किसके सुत क्यूँ आये? प्रथम पुरुष तुम जो इत धाये।।
सूर्यवंशि नृप बल्लभसुत मैं। महामुनी ऋषि गर्ग शिष्य मैं।।
महत् कृपा से महालक्ष्मि की। स्वयं राज्य नव-संरचना की।।

(4) तुम कौन हो? किसके पुत्र हो? यहाँ आने का तुम्हारा क्या प्रयोजन है? तुम प्रथम पुरुष है जो इस नागलोक की ओर दौड़े हो। हे महाराज! मैं सूर्यवंशी राजा वल्लभसेन जी का सुपुत्र तथा महामुनि गर्गाचार्य जी का शिष्य हूँ। माता महालक्ष्मी जी की महत्तम कृपा से मैंने स्वयं एक नव राज्य का निर्माण भी किया है।

दो0 : देवि माधवी के लिये, नागलोक आया।
सँग लेकर ही जाऊँगा, व्रत मन अति भाया।। (96)

दो0 : हे नागश्रेष्ठि! देवी माधवी के लिये ही मैं इस नागलोक में आया हूँ। मैं उन्हें अपने साथ लेकर के जाऊँगा-यही व्रत मेरे मन को भाया है।(96)

चौ0 : नागसुता से व्याह असम्भव। अग्रसेन यह नहिं है सम्भव।।
नागराज नगवंशहि पोषक। वाहन विष्णु गरुण है भक्षक।।

चौ0 : (1) तदनन्तर, नागराज महीधर ने उत्तर देते हुए कहा - हे वैष्णव वीर! नागपुत्री से तुम्हारा विवाह असम्भव है। राजकुमार अग्रसेन! ऐसा कदापि सम्भव नहीं है। नागराज नागवंश के पोषक हैं और विष्णुवाहन गरुण नागों के भक्षक हैं।

तव लोके नहिं प्रेम सजातीय। खुश होवैं दुख आत सजातीय।।
अधिक देर तक प्रेम न टिकई। जैसे बूँद कमल न रुकई।।

(2) आपके लोक में मनुष्यों में पारस्परिक प्रेम की भावना नहीं होती। वहाँ सजातीय को दुखी देखकर लोग खुश होते हैं। जिस प्रकार जल की बूँद कमल के पुष्प-पात पर अधिक देर नहीं टिकती उसी प्रकार आपके यहाँ लोगों में प्रेम अधिक समय तक स्थिर नहीं रहता।

अपमानित करते इक दूजहि। तू छोटा मैं ऊँचा लगहहि।।
भाइ-भाइ को नहीं सुहावै। बहिजन को घर में पधरावै।।

(3) वहाँ लोग एक - दूसरे को अपमानित करने तथा तू छोटा मैं बड़ा हूँ - ऐसा सिद्ध करने में ही रहते हैं। भाई को भाई नहीं सुहाता। स्वजन की अपेक्षा वे बाहरी व्यक्ति को अपने घर में ठहराना प्रीतिकर समझते हैं।

तव इच्छा होगी नहिं पूरी। लौट जाव यह हम मजबूरी।।
तब नगेन्द्र ने पूँछा उनसे। तुम वैष्णव कहलाते कैसे?।।

(4) तुम्हारी यह इच्छा पूरी नहीं हो पाएगी। हमारी भी कुछ मजबूरी है। इसलिये तुम्हारा लौट जाना ही अधिक उचित होगा। नगेन्द्र ने पूछा हे अग्र! तनिक यह तो बताओ कि तुम वैष्णव कैसे सिद्ध होते हो ?

दो0 : पद्म चक्र ना वज्र ना, दीखत है तव तन।
शिव प्रतीक लिंगौर भग, होत नारि पुरुषन।।(क)

दो0 : तुम्हारे शरीर पर ना तो पद्म का चिह्न है। ना ही तुम्हारे हाथ में शंख है और ना ही चक्र। शिव-प्रकृति के प्रतीक लिंग और भग भी तुममे नहीं है जिसका स्त्री-पुरुषों में होना स्वाभाविक है।

शैव-वैष्णवहिं श्रेष्ठ को ? बतलाओ श्रीमान।
यह विवाह सम्भव नहीं, लौट जाव बुधिमान।।ख।।(97)

(ख) हे धीमान्! जरा ये तो कहो कि शैव्य और वैष्णव में श्रेष्ठ कौन है? (झुँझलाते हुए) नहीं, यह विवाह सम्भव नहीं है। तुम वापस लौट ही जाओ। (97)

चौ0 : अग्रसेन बोले प्रणाम कर। आप हैं मेरे पितृतुल्य वर!।।
लगता बुद्धी भ्रमहिं फँसी है। धर्ममार्ग स्थिर नहिं जो है।।

चौ0 : तब अग्रसेन जी ने प्रणाम करके नागराज जी से कहा – आप मेरे लिये पितृतुल्य हैं। मुझे लगता है कि आपकी बुद्धि भ्रम में फँसी हुयी है। क्योंकि वह धर्म के मार्ग स्थिर जो नहीं है।

कथन आपका सत्य नहीं है। स्वीकृति दें तो कहुँ जु सही है।।
अति धीमानहु शास्त्रन जानैं। प्रज्ञावान ज्ञानसम्पन्नैं।।

(2) हे राजन्! आपका कथन सही नहीं है। यदि आपकी स्वीकृति हो तो जो सत्य है मैं उसे आपके समक्ष प्रस्तुत करूँ। श्री अग्रसेन जी बोले—हे नागराज जी! आप अत्यन्त बुद्धिमान हैं। आपको शास्त्रों का भी ज्ञान है। आप प्रज्ञा और ज्ञान से भी सम्पन्न हैं।

व्यर्थऽभिमान करे है जन जो। व्यर्थहिं दूसर दोष गिने जो।।
'श्रेष्ठहि मैं' सिध करन लगै नित।उनको कैसे श्रेष्ठ कहैं पित?।।

(3) किंतु जो व्यक्ति मिथ्या अभिमान के वशीभूत होकर व्यर्थ ही दूसरों के दोषों को गिनने में लगे रहकर 'मैं ही श्रेष्ठ हूँ' – ऐसा सिद्ध करने में लगा रहता है, हे पितृ ! भला उसे हम कैसे श्रेष्ठ कह सकते हैं ?

अच्छे-बुरे कहाँ नहिं होते? देव नाग नर यक्षहिं होते।।
जो प्राणी अच्छा होता है। उसका मान सदा होता है।।

(4) हे नागराज जी! अच्छे और बुरे लोग कहाँ नहीं होते ? देव, नाग नर तथा यक्षों में ऐसे लोग प्राय: देखे जा सकते हैं। परन्तु जो प्राणी वास्तव में अच्छा होता है उसका मान सदा होता है – ऐसा शास्त्रों का कथन है।

दो0 : जिहिं अक्रोध दम सतवचन, अहिंसा सऽरलता।
अद्रोहौ अभिमान ना, कहैं पुरुष बड़ता।।क।।

दो0 : (क) हे नागराज जी! जिस प्राणी में अक्रोध, सत्यवचन, अहिंसा, सरलता, अद्रोह तथा निर अभिमानता का भाव रहता है, उसे बड़का अर्थात् श्रेष्ठ कहा जाता है।

लज्जा सैहनशीलता, धैर्य मनोनिग्रह।
धर्मविरुद्धहु कार्य ना, पात्र मान कन्यह।।ख।। (98)

(ख) साथ ही जिस पुरुष में लज्जा, सहनशीलता, धीरता, मन का निग्रह तथा धर्म के विरुद्ध कार्य न करने की प्रवृत्ति का भाव हो, ऐसा व्यक्ति निश्चित ही आपकी पुत्री के लिये योग्य पात्र माना जाना चाहिये ऐसा मेरा मत है। (98)

चौ0 : भक्ती बिना ज्ञान नहिं होवै। ज्ञान बिना भक्तिहु ना होवै।।
ज्ञानहि शिव हरि भक्ति प्रतीकहिं। ईश्वर एक भेद अनुचित इहि।।

चौ0 : (1) हे नागराज जी! भक्ति के बिना ज्ञान तथा ज्ञान के बिना भक्ति की प्राप्ति सम्भव नहीं है। भगवान शिव ज्ञान के तथा भगवान विष्णु भक्ति के प्रतीक हैं। ईश्वर एक है। इनमें भेद करना रचित नहीं है राजन्!

शिव विष्णू अज रुद्र कौन हैं? श्रुति पुराण सब इहहिं मौन है।।
भ्रांतीवश संदेह मनहिं अति। सब संशय त्यागो हे शुभमति!।।

(2) हे राजन! भगवान शिव, भगवान विष्णु, ब्रह्मदेव तथा रुद्र कौन है ? इस विषय में लगभग सभी मौन है। भ्रांतिवश आपका मन संदेह से युक्त है। हे सुमतिमान! आप अपने दुराग्रहयुक्त संशयों का त्याग कर दीजिये।

निर्गुण ब्रह्म सृष्टि-आरँभ में।'शिवही' जाना वेद-वेदान्त में।।
शिव से पुरुष प्रकृति सँग प्रकटे।जल-स्थित तप कीया द्वयने।।

(3) सृष्टि के आरम्भ में शिवजी को ही वेद-वेदान्तों में निर्गुण ब्रह्म अर्थात् शिवतत्व बतलाया गया है। भगवान शिव से ही वह परमपुरुष प्रकृति सहित प्रकट हुए थे। जल में तपस्या करने से शीघ्र ही वे शिव समान प्रतीत होने लगे।

श्री विष्णू जब जाना यह सब।शयन करैं माया सँग जल तब।।
नाम नारायण हुआ हरी का। अरु नारायणि नाम प्रकृति का।।

(4) भगवान विष्णु को जब यह सब ज्ञात हुआ तो उन्होंने अपनी माया के साथ जल में प्रवास किया। जल में वास करने से उनका नाम नारायण पड़ा। और प्रकृति (माया) नारायणी कहायी गयीं।

सो0 : निर्गुण शिव भगवान, ब्रह्मा विष्णू मध भये।
महादेव रुपवान, श्रेष्ठ भाव को थामने।। (99)

सोरठा : निर्गुण शिवशंकर तथा सगुण भगवान विष्णुहरि के मध्य ब्रहदेव जी प्रकट हुये- ऐसा माना जाता है। देवों की समान महत्ता को सिद्ध करने के लिये ही जगत में ब्रह्मा जी का अविर्भाव हुआ है - ऐसा वेद समझाया करते हैं। (99)

चौ0 : निर्गुण-सगुण भेद नहि कोई। स्वर्ण स्वर्णवस्तू जस नोई।। रूप समानहिं कर्म समानहिं। भक्तन गति दें दोउ समानहिं।।

चौ0 : (1) अग्रसेन जी कहते हैं - हे नागराज जी! जैसे स्वर्ण और स्वर्णनिर्मित वस्तु में कोई भेद नहीं होता वैसे ही निर्गुण और सगुण में कोई भेद नहीं होता। उन दोनों के समानरूप हैं। उनके कर्म भी समान हैं तथा दोनों ही अपने भक्तों को समान गति प्रदान करते हैं।

भाव समानहि सेवा योग्यहिं। नानारूपे पर प्रभु एकहिं।। एक सूर्य चंचल जल केतिक। ब्रह्म एक भ्रांतीवश नेकिक।।

(2) भावों में भी दोनों समान हैं। दोनों ही सेवा किये जाने योग्य हैं। हे नागराज जी! ईश्वर के वैसे तो नानारूप हैं परन्तु यथार्थत: ईश्वर एक ही हैं। एक सूर्य चंचल जल में कितने ही रूपों में दिखलायी देता है। वैसे ही ब्रह्म एक ही है। किंतु भ्रांतिवश ईश्वर कई हैं - लोग ऐसा कहने लगते हैं।

तुम हरि-हर में भेद थे कीन्हे। एक हैं वे स्पष्ट कर दीन्हे।। शेषनाग शिव-आभूषण हैं। वे ही हरि के शयनगाह हैं।।

(3) हे प्रभो! आपने श्रीहरि और श्रीहर में भेद बताया था किंतु मैंने 'वे दोनों एक ही हैं' - ऐसा स्पष्ट कर दिखाया। जहाँ शेषनाग भगवान शिव के आभूषण हैं वहीं वह भगवान विष्णु के शयनगाह भी हैं।

तुम प्रतीक हो शैव्य-वैष्णवहि। भेद-दृष्टि तजिये नागेन्द्रहि।। अग्रसेन! तुममें मति भारी। द्वय को एक कहा सप्रमाणी।।

(4) हे नागेन्द्र! आप शैव्यों एवं वैष्णवों के सच्चे प्रतीक हैं। कृपया आप अपनी इस भेदबुद्धि का त्याजन कर दीजिये। नागेन्द्र बोले- हे अग्रसेन! तुम्हारी बुद्धि महान है। तुमने शिव-हरि दोनों को सप्रणाम 'एक' सिद्ध कर दिखाया।

दो0 : युवा सेन बुधिमान अति, अग्र ज्ञान-विज्ञान।
किया निरुत्तर मान सँग, निज आग्रह-वचनान।। (100)

दोहा : नागराज जी कहते हैं कि युवा अग्रसेन अति बुद्धिमान हैं। ज्ञान-विज्ञान को भी यह तत्त्वत: जानते हैं। इन्होंने सम्मानसहित अपने आग्रहपूर्ण वचनों से हम सभी को निरुत्तर कर दिया। (100)

चौ0 : नर अरु नाग युद्ध यदि करई। दोउन कुल संकरता भरई।।
ब्याह सुकन्या से यदि होवइ। तेजस्विता वंश हम उपजइ।।

चौ0 : (1) अग्रसेन जी आगें कहते हैं- हे मान्यवर! नर और नाग यदि परस्पर युद्ध में रत हो जाते हैं तो दोनों कुलों में (वर्ण) संकरता का भर जाना स्वाभाविक है। इसके विपरीत यदि मुझ वैष्णव का विवाह नाग-कन्या से हो जाता है तो हमारा वंश भी तेजस्विता से युक्त हो जाएगा।

कुल की वृद्धी नारी करती। परमपुष्टिरूपहिं घर भरती।।
लक्ष्मी रति साक्षात् प्रतिष्ठा। नारी संतति की है निष्ठा।।

(2) नारी से ही कुल की वृद्धि सम्भव है। वह परमपुष्टि रूप में कुल को परिपूर्ण रखती है। नारी साक्षात् लक्ष्मी है। नारी ही रति है। नारी ही साक्षात प्रतिष्ठा है। नारी ही (शुभ) संतति की निष्ठा मानी जाती है।

पैदा करती पुत्रों को वो। द्रव्य-कव्य सुर-पितर देत जो।।
चरित महाकुल समझा जाता। सदाचार नारी से आता।।

(3) नारी ही देवता एवं पितरों को दिये जाने वाले हव्य-कव्य के कारण रूप पुत्रों को जन्म देती है। बड़े-बड़े कुलों को चरित्रवान समझा जाने वाला वह सदाचार भी सदाचार से युक्त नारी से सम्भव समझा जाता है।

तेजस-वंश-विकास-कामना। नागलोक आवनहिं कारना।।
तव कन्या सँग ब्याह करूँगा। दृढ़ निश्चय तव सुता वरूँगा।।

(4) हे धीमान्! वैष्णव वंश भी तेज युक्त हो यही विकास की कामना मेरे नागलोक में आने का कारण है। हे प्रभो! मैं पुन: अपना दृढ़ निश्चय आप

सभी के समक्ष रखता हूँ कि यदि मैं विवाह करूँगा तो आपकी पुत्री से ही करूँगा।

दो0 : सहमत हैं फिर भी कहैं, ऐसा नहिं सम्भव।
वचनबद्ध देवेन्द्र सँग, कैसे तुम्हें दअब?।।क।।

दो0 : (क) कवि कहता है कि नागराज सहमत हैं फिर भी कहते हैं कि हे वीर! नहीं, ऐसा सम्भव नहीं है। हम देवेन्द्र के संग वचनबद्ध हैं। भला हम अपनी पुत्री तुम्हें कैसे दे सकते हैं ?

यदि मैंने ऐसा किया, इन्द्र होंय तव शत्रु।
तुम पग-धूल समान नहिं, फिर विवाह नहिं पुत्र!।। (ख)(101)

(ख) यदि मैं ऐसा करता हूँ तो इन्द्र तुम्हारे शत्रु बन जायेंगे। तुम देवेन्द्र की पाँवों की धूल के समान भी नहीं हो। ये सब जानते हुए भी मेरी पुत्री का तुम्हारे साथ विवाह? नहीं, नहीं पुत्र! ऐसा कदापि सम्भव नहीं। (101)

चौ0 : रहसयुक्त नृप वचन सुने जब। वाक् प्रवीण अग्र बोले तब।
सुरगण तुच्छ कर्म नहिं करते। खाली झोली सबकी भरते।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि जब नागराज महीधर के इन रहस्यपूर्ण शब्दों को वाक्य-संरचना में प्रवीण अग्रसेन जी ने सुना तब वह बोले- हे राजन्! सुरगण तुच्छ कर्म नहीं करते। देवता तो खाली झोलियाँ भरते हैं।

वे कृतघ्न नहिं अरु कायर ना। अहंकारि अरु मूर्खहु वे ना।।
सत्य आचरण सदा किया मैं। देव-प्रेम को नित्य पिया मैं।।

(2) देवता ना तो कृतघ्न हैं और ना ही कायर। वे अहंकारी और मूर्ख भी नहीं हैं। मैंने सदा सत्य का आचरण किया है। मैंने प्रेमसहित देवताओं का नित्य पान किया है।

मन से नित चिन्तन करता हूँ। उर में भक्ती को भरता हूँ।।
क्या वे मेरा बुरा करेंगे? नहिं वे मेरा दुक्ख हरेंगे।।

(3) मैं मन-सहित सदा देवों का चिंतन करता हूँ। मैं उनके प्रति भक्तिभाव भी अपने हृदय में रखता हूँ। तो क्या देवता मेरा बुरा करेंगे? नहीं, वे तो मेरे दु:खों का ही हरण करने वाले सिद्ध होंगे।

सुन अग्रहि सब हुए हर्षयुत। शब्द-प्रशंसा कीन्ही श्रीयुत।।
मुनि उद्दालक तभी पधारे। प्रकट करन लागे उद्गारे।।

(4) धीमान् अग्रसेन जी के सारगर्भित वचनों को सुनकर सभी नाग हर्षित हुए। सभी ने उनकी प्रशंसा की। तभी मुनि उद्दालक नागराज भवन में पधारे और इस प्रकार अपने उद्गार प्रकट करने लगे-

दो० : पारंगत अति शास्त्र में, युद्ध-कला में भी।
षोडषांस कोई नहीं, नागवंश में भी।। (102)

दो० : हे नागों! यह शास्त्रों में अति पारंगत हैं। यह युद्ध कला में बहुत कुशल है। सम्पूर्ण नागवंश में इसके जैसा तो क्या इसका (सोलहवाँ भाग) एक बटा सोलह भी कोई नहीं है। (102)

चौ० : आर्य-प्रभाव कौन नहिं जानैं? देव सहायक सब जग मानैं।
देवासुर संग्राम हुआ था। नृप मुचकुन्दहि युद्ध किया था।।

चौ० : (1) मुनि द्दालक बतलाते हैं- हे नागों! आर्यों के प्रभाव को कौन नहीं जानता ? आर्य देवताओं के सहायक (रहे) हैं। - यह बात सब जानते हैं। एक बार जब देवताओं और असुरों में भीषण संग्राम हुआ था तब राजा मुचुकुन्द ने देवताओं की ओर से राक्षसों से युद्ध किया था।

ब्याह द्वयन का धर्मयुक्त है। परम पुण्यदायक अति शुभ है।।
गुण-रूपऽरु सम्पद् में सम हैं। धर्मपालनहिं कतहु न कम हैं।।

(2) हे राजन्! अग्र माधवी का यह विवाह धर्मयुक्त, परमपुण्यदायक और अति शुभदाता हैं। ये दोनों गुण-रूप-सम्पदा में समान हैं। धर्म का पालन करने में इनमें से कोई भी कम नहीं है।

इन्हें सूत्र परिणय में बाँधो। प्रेम का बन्धन जल्दी साधो।।
भाग्यशालि शुभ पल न गँवाओ।विचलित मन में थिरता लाओ।।

(3) इन्हें तुरन्त परिणय-सूत्र में बाँधो। हे राजन्! प्रेम के इस पवित्र बन्धन को जल्दी साधो। इस भाग्यशाली और कल्याणकारी पल को न गँवाओ। साथ ही, आप अपने विचलित मन में स्थिरता स्थापित करो।

ब्याह माधवी अग्रसेन का। होगा भारी यश प्रदायका।।
देव नाग नर के हित में यह। नये वंश का सूत्रधार यह।।

(4) माधवी और अग्रसेन का यह विवाह यशों को देने वाला सिद्ध होगा। यह विवाह देवता, नाग, नर के हित में है। यह व्याह नये वंश का सूत्रधार भी होगा राजन!

दो0 : मधुर घोष जबही सुना, हर्ष बढ़ा सबका।
माँ-बेटी सँग आ गयीं, राजभवन चहका।।क।।

दो0: (क) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि हे जनमेजय! जैसे ही नागराजभवन में मधुर घोष सुनायी दिया तो सबका हर्ष बढ़ने लगा। तभी माँ-बेटी साथ-साथ वहाँ आ पहुँची जिससे राजभवन का वातावरण चहक उठा।

नागसुता ने अग्र को, देखा लाजसहित।
आश्वासन करु नेत्र सैं, बोली क्यों चिंतित?।।ख।।

(ख) नागसुता माधवी ने लाजसहित अग्रसेन जी की ओर देखा। माधवी ने नेत्रों से आश्वस्त करते हुए अपने भावी पति से कहा- अब आप काहे चिंतित हैं ?

अग्रसेन अरु माधवी, खड़े हो गए संग।
सबके चेहरे पर खुशी, हाथ पुष्प बहुरंग।।ग।।

(ग) अग्रसेन और माधवी दोनों एक साथ खड़े हो गये। सबके चेहरे पर खुशी छा गयी। इस समय उन सबके हाथों में बहुरंगी पुष्प थे।

अभिनन्दन सबका करैं, हो प्रसन्न दोनों।
मानो जैसे कहत हों, ऋणी हैं हम दोनों।।घ।।

(घ) वे दोनों प्रसन्न भाव से सबका अभिनन्दन करने लगे। मानो वे कह रहे हो कि हम दोनों आप सभी के ऋणी हैं।

कोइ प्रशंसा कर रहा, अग्रसेन जी की।
भाग्यऽरु बुद्धि सराहता, कोइ माधवी की।।(ङ)

(ङ) कोई तो अग्रसेन जी की प्रशंसा कर रहा है तो कोई माधवी के भाग्य और उसकी बुद्धि (चयन) की सराहना कर रहा है।

अति दुष्कर यह कार्य था, कैसे हुआ सम्भव ?
"विष्णुदास" यह बात सच, अग्र किया सम्भव।।च।।

(च) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि यह कार्य अति दुष्कर था ? आखिर यह सब कैसे सम्भव हुआ ? विष्णुदास जी कहते हैं कि यह बात बिल्कुल सच है कि इस अति दुष्कर कार्य को श्री अग्रसेन जी ने सम्भव कर दिखाया।

वर-वरणी का ब्याह यह, अद्‌भुत है त्रय तल।
जिसने देखा वा सुना, जीवन हुआ सफल।।छ।।

(छ) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि वर-वरनी का यह विवाह तीनों तलों में अद्‌भुत है। जिस जिसने इसको देखा अथवा सुना, उसका जीवन तो मानो सफल हो गया।

शुभ मति जिस घर वासती, श्री रहती उत में।
क्या अलभ्य फिर है वहाँ ? धरो बात चित में।।ज।।

(ज) जिस घर (हृदय) में शुभ बुद्धि का वास होता है वहाँ 'श्री' का नित्य वास रहता है। फिर वहाँ क्या अलभ्य है ? यह बात आप सदा अपने चित्त में धारण करो।

यही पंचदश' 'ध्याय था, जो मैं आप कहा।
प्रसँग माधवी अग्र का, समता भाव बहा।।झ।।(103)

(झ) कवि कहता है कि यही पन्द्रहवा अध्याय था जिसे मैंने आपसे कहा। देवी माधवी और अग्रसेन जी का यह सु-प्रसंग जानकर सबके मन में समता का भाव निश्चित बहा होगा ऐसा समझना चाहिये। (103)

अध्याय पन्द्रह 'शैव्य-वैष्णव ' पूर्ण हुआ।

:::::

卐 अध्याय सोलह (ब्रह्मचर्य की परीक्षा) 卐

दो0 : विवाह सुनिश्चत हो गया, अग्र माधवी संग।
नागवंश खुश हो रहा, सुरपति रह गए दंग।।क।।

दो0 : (क) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि वैष्णव अग्रसेन जी का विवाह नागकन्या माधवी के साथ होना सुनिश्चित हो गया। इस कारण नागवंश तो खुशी में झूम उठा जबकि सुरपति दंग रह गये।

अतिथी-गृह में आय के, अग्र भए हर्षित।
नदी पार को जस मिलै, नाव होत प्रफुलित।।ख।।

(ख) अतिथि भवन में आकर अग्रसेन जी बड़े हर्षित हो रहे हैं ठीक उस प्रकार जिस प्रकार कि नदी पार करने वाला नाव पाकर प्रफुल्लित हो जाता है।

चौ0 : संध्याकाले सूर्य मनोहर। नवुदित सोम-रश्मि अति सुन्दर।।
भवन विचित्र मणी मोतिन से। अद्भुत छटा स्वर्ण-तोरण से।।

चौ0 : (1) शाम का समय था। सूर्य की अस्त होती रश्मियाँ मनोहरता को प्रकट कर रही थीं। नवोदित चन्द्रमा की किरणें सुन्दरता बिखेर रही थीं। अतिथि-भवन विचित्र मणी-मोतियों से अलौकिकता को प्राप्त हो रहा था। स्वर्ण के तोरण-द्वार से अद्भुत छटा प्रवेश कर रही थी।

मधुमिश्रित वायू थी चलती। मन में अति आनंद वर्धती।।
आइ नागकन्या इक सुन्दर। वृहद् नितम्ब केश अति घुन्घर।।

(2) मधुमिश्रित वायू के चलने से मन में अत्यन्त आनंद बढ़ने लगता था। तभी एक सुन्दर नागकन्या वहाँ आयी। उस सुन्दरी के बड़े-बड़ नितम्ब थे। उसके केश भी बड़े घुँघराले थे।

वस्त्र थे झींने चाल मटकती। अग्रसेन ढिंग आइ लचकती।।
अग्रसेन देखा जब सुन्दरि। नयनों में लज्जा आई भरि।।

(3) उसके वस्त्र झीने थे। उसकी मटकती हुयी चाल थी। मटकती हुई चाल से वह नागसुन्दरी अग्रसेन जी के समीप आयी। जैसे ही अग्रसेन जी

ने उस सुन्दरी की ओर दृष्टिपात किया तो उनके नेत्र लज्जा से युक्त हो गये।

कामुक पन्नगि बोली हँसकर। हाथ अग्र की ओर बढ़ाकर।।
आपकी सेवा को मैं आयी। कर श्रृंगार रती हो धायी।।

(4) वह कामुक पन्नगी युवा अग्र की ओर बड़े ही नाजुक अन्दाज से अपना दायाँ हाथ आगे बढाते हुए हँसकर बोली- हे युवेश! मैं आपकी सेवा के लिये यहाँ आयी हूँ। मैं आपसे मिलने की इच्छा के कारण ही सम्पूर्ण श्रृंगार करके रतिरूप में इधर दौड़ पड़ी हूँ।

दो0 : जब से देखा आपको, दिल में है धारा।
हे नृप! मुझको भोगिये, तन जलता सारा।।क।।

दो0 : (क) हे कामस्वरूपे! मैंने जब से आपका दर्शन किया है तब से मैंने आपको अपने हृदय में धारण कर रखा है। हे राजन्! मुझे भोगिये। मेरा सारा शरीर जल रहा है।

कान बन्द अपने किये, मन अति दुख छाया।
अग्रसेन बोले बहन, 'यह' मन नहिं भाया।।ख।। (104)

(ख) ब्रह्मचर्य से परिपूर्ण अग्रसेन जी ने अपने दोनों कान बन्द कर लिये। उनके मन में बड़ा भारी दुख छा गया। अग्रसेन जी कोमलता से बोले- बहन! तुम्हारा यह व्यवहार मेरे मन को अच्छा नहीं लगा। (104)

चौ0 : काम वेदना से पीड़ित हूँ। त्यागो ना तुम परासक्त हूँ।।
देवि माधवी की सखियाँ हम। वो पत्नी हम भी पत्नी सम।।

चौ0 : (1) नागसुन्दरी ने अग्रसेन जी का विरोध करते हुए कहा कि हे युवे! मैं कामवेदना से पीड़ित हो रही हूँ। मुझे यूँ मत त्यागो। मैं तुम पर आसक्त हो उठी हूँ। हम देवी माधवी की सखियाँ हैं। हम भी उसी की तरह आपकी पत्नियाँ हैं।

सो संकोच त्यागिये राजन! करो समागम हे सुखसाजन!।।
स्त्री निकट पुरुष यदि पावै। रती भावना उरहिं धरावै।।

(2) सो आप अपने संकोच को त्याग दीजये राजन। हे सुखसाजन! मेरे साथ समागम कीजिये। हे राजन्! यदि स्त्री किसी पुरुष को स्वयं के निकट पाती है तो उसके मन में रति की भावना उमड़ आती है।

तोड़ डालती सब मर्यादा। नदी उफनती जस तट लादा।।
अग्रसेन डाँटा तब कामुक। बोली आवेशित अरु भावुक।।

(3) वह सारी मर्यादाओं को उसी प्रकार तोड़ डालती है जिस प्रकार उफनती हुयी नदी तटों का उल्लंघन कर देती है। तब अग्रसेन जी ने उस रतिरूपा को डाँट दिया। किंतु वह कामुक सुन्दरी काम के वेग से और अधिक आवेशित तथा भावुक होते हुए बोली-

जो याचक को दान न देवै। धर्मशील वह जन ना होवै।।
कार्य नपुंसकता का करता। खाली झोली जो नहिं भरता।।

(4) कि जो व्यक्ति याचक को इच्छित दान नहीं देता है उसे धर्मशील नहीं समझा जाता। जो पुरुष याचक की खाली झोली को नहीं भरता वह नपुंसकता युक्त कार्य करने वाला समझा जाता।

दो0 : झूँठ नहीं मैं बोलती, जीतूँगी तुमसे।
अनुपम सुख वो देउँगी, चाहोगे फिर से।। (105)

दो0 : हे अभिमानी! मैं झूँठ नहीं कहती। मैं तुमसे जीतूँगी। मैं तुम्हें वो अनुपम सुख दूँगी जिसे तुम बार-बार प्राप्त करना चाहोगे। (105)

चौ0 : अग्रसेन मन में आया तब। लक्ष्मण-सूर्पणखा प्रसंग सब।।
भ्रमण करे यदि नारि अकेली। पाप विचार मनहिं धी मेली।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि हे जनमेजय! तब अग्रसेन जी के मन में सूर्पणखा-लक्ष्मण जी का वह प्रसंग स्मरण हो आया। जब कोई स्त्री अकेली भ्रमण करती है तो उसके मन में पाप का विचार पनप जाता है। उसकी बुद्धि दूषित होकर मैली हो जाती है।

शक्तिधीरता धारण कीजे। हे बहना! गृह गमन करीजे।।
काम विवेक नष्ट है करता। सद्गुण सद्वृत्तीहू हरता।।

(2) अरे, तुम अपने मन में धैर्य की शक्ति धारण करो। हे बहना! तुम अपने घर लौट जाओ। हे बहन! काम का वेग विवेक को नष्ट कर डालता है। साथ ही वह व्यक्ति के सद्गुणों को तथा उसकी सद्वृत्तियों को भी छीन लेता है।

हे नरश्रेष्ठ! जु मैंने कीया। पारीछा के कारन कीया।।
नारि-चपलता-दर्श कराया। भाँति-भाँति से तुमहि लुभाया।।

(3) तदनन्तर, वह सखी बोली- हे जीजाजी! मैंने जो कुछ भी यह सब आपके साथ किया वह आपकी परीक्षा लेने के उद्देश्य से किया। मैंने आपको नारी की चपलता का दर्शन कराया। मैंने भाँति-भाँति से आपको लुभाया।

प्रेम-कामना याचन रोषहिं। व्यंग व बदला भय बहुरूपहिं।।
धर्म से विचलित आप न होई। सत्य पराक्रमि सर्वहि विजई।।

(4) मैंने कभी आपसे प्रेम की कामना की, कभी आपसे याचना की तो मैंने कभी आप पर रोष भी किया। इतना ही नहीं मैंने कभी आप पर व्यंग कसे, मैंने कभी आपसे बदले की भावना से युक्त व्यवहार किया तथा कभी मैंने आपको विभिन्न रूपों में भय भी दिखलाया। किन्तु आप धर्म से विचलित नहीं हुये। निश्चित ही आप सच्चे पराक्रमी हैं। आप हर बार विजयी हुये।

दो0 : ऐसा कह वापस गई, पन्नगि सूकन्या।
अतिथि भवन सुख वासते, अग्रसेन धन्या।। (106)

दो0 : ऐसा कहकर पन्नगी वापस लौट गई और इधर युवावीर अतिथि भवन में सुखपूर्वक निवास करते हैं। जैमिनी जी कहते हैं कि अग्रसेन जी निश्चित ही धन्य हैं। (106)

चौ0 : प्रातः होत नाग इक आया। सर्पदंश नागन सँग धाया।।
सँग में उसके नाग सहस्त्रहिं। शर वर्षा से करु विषवमनहिं।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि प्रातःकाल होते ही सर्पदंश नाम का एक नाग अपने विश्वस्त नागों के साथ वहाँ अतिथिवन के निकट

आया। सर्पदंश के साथ आये हुए सहस्त्रों नाग वाण-वर्षा करते हुए विषवमन करने लगे।

अग्र से बोला भुजँगपती वो। प्राणिन नाश करत पल में जो।।
माधवि को पहले से चाहूँ। तुम नहिं उसको मैं अवगाहूँ।।

(2) प्राणियों का पल भर में विनाश करने वाला वह भुजंगपती अग्रसेन जी से कहने लगा कि मैं माधवी को पहले से चाहता हूँ। माधवी को तुम नहीं मैं ग्रहण करूँगा।

ऐसा तुम जाकर के कह दो। मेरि ओर से तुरतहि कह दो।।
जिसने निश्चय किया है जिसका। अन्य हेतु क्यों छोड़े उसका?।।

(3) हे वीर! तुम माधवी देवी से ऐसा मेरी ओर से जाकर कह दो। जिसने जिसका निश्चय किया है भला उसे वह किसी दूसरे के लिये क्यों छोड़ दे?

महाविषैलों ने नृप घेरे। जस कालिय श्रीकृष्ण घनेरे।।
वायू विषमय हो गइ सारी। पीड़ा अग्रहि होती भारी।।

(4) उन महाविषैले नागों ने अग्रसेन जी को उसी प्रकार से घेर लिया जिस प्रकार कालिय नाग ने अपने सहस्त्रों मुख-शरीर से श्रीकृष्ण को चारों ओर से घेरा था। वहाँ बहने वाली सारी वायु विष युक्त हो गई जिससे अग्रसेन जी को भारी पीड़ा होने लगी।

दो0 :मोह छा गया अग्र पर, चक्कर बहु आये।
देख दशा यह अग्र की, सेवक नृप धाये।। (107)

दो0 : अग्रसेन जी पर मोह छा गया। उन्हें चक्कर आने लगे। अग्रसेन जी की यह दशा देखकर रक्षक-दल के सैनिक घबड़ाकर कर नागराज महीधर की ओर दौड़ पड़े। (107)

चौ0: अग्रसेन तब धनु कर लीन्हा। पिपीलिका-शर प्रयोग कीन्हा।।
चींटी लिपट गईं नागन-तन। दुष्ट नाग सब भागे तत्क्षन।।

चौ0 : (1) तब, अग्रसेन जी ने अपने दोनों हाथों में धनुष थामा और पिपीलिका शर का संधान किया। बाण से निकलती हुई चींटियाँ नागों के

सारे शरीर में लिपट गई जिससे घबड़ाकर वे नाग तत्क्षण वहाँ से भागने लगे।

सर्पदंश-तन माँस नहीं था। चींटीओं ने सभी गहा था।।
फिर उसकी सब हड्डी फोड़ी। खाई जैसे चाट पकौड़ी।।

(2) सर्पदंश के शरीर पर नाममात्र को मांस नहीं बचा था क्योंकि उसे तो चींटियों ने पहले ही खा लिया था। सर्पदंश की हड्डियाँ फोड़कर चींटियाँ उन्हें इस प्रकार खाने लगीं जिस प्रकार स्त्रियाँ स्वाद लेकर चाट पकौड़ियाँ खाती हैं।

अस्थीयाँ हो गईं खोखली। इमली जैसे होय पोपली।।
महिधर सँग उद्दालक आए। मुनि ने महि आश्वस्त कराये।।

(3) उसकी अस्थियाँ इमली की तरह खोखली हो गईं। तभी नागराज महीधर के साथ उद्दालक मुनि वहाँ आ पहुँचे। मुनिवर ने मही को आश्वस्त किया।

देख दुर्दशा सर्पदंश की। व्यंग-वाक् प्रकटी महिधर की।।
युद्धकला में पारंगत तुम। फिर क्यों पड़े हुए गुमसुम तुम।।

(4) सर्पदंश की दुर्दशा देखकर महीधर व्यंगपूर्ण वाणी में बोले- क्यों, तुम तो युद्धकला में पारंगत हो। फिर तुम इस प्रकार गुमसुम से क्यों पड़े हुए हो?

दो0 : सहसा दृष्टी अग्र पर, मुनि की तभी पड़ी।
मंत्र-शक्ति से शीघ्र ही, हालत सब सुधरी।।क।।

दो0 : (क) सहसा मुनि की दृष्टि अग्रसेन जी पर पड़ी। मुनि द्वारा पढ़े गये मंत्रों की शक्ति के प्रभाव से शीघ्र ही अग्रसेन जी की हालत में सुधार होने लगा।

अग्रसेन! नर उत्तमम्, धर्म-बुद्धि युत तुम।
जीव-मात्र हित रत रहो, यह आशीष हमम।।ख।।

(ख) मुनि बोले- हे अग्रसेन! तुम एक उत्तम प्राणी हो। तुम्हारी बुद्धि सदा धर्म में युक्त है। तुम्हें हमारा आशीष है कि तुम जीवमात्र के प्रति दया की भावना से सदा युक्त रहो।

पति-पत्नी नित ही रहैं, एकनिष्ठ प्रति द्वय।
वंशवृद्धि हो उत्तमम्, सत्य वचन मम हय।।ग।।

(ग) हे समाजसेवी! तुम दोनों पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति निष्ठावान रहो। तुम्हारे वंश में उत्तम वृद्धि हो। तुम्हारे लिये हमारा यही श्रेष्ठ आशीर्वाद है।

"विष्णुदास" कहते यही, छल न कभी करिये।
प्रेम एक से ही करो, बहिये सुख सरिये।।घ।।(108)

(घ) कवि विष्णुदास कहते हैं कि कभी किसी के साथ छल मत करो। प्रेम करो तो एक से करो। आप सदा सुख की सरिता में बहोगे। (108)

(अध्याय सोलह 'ब्रह्मचर्य की परीक्षा' पूर्ण हुआ।)

:::::

(दोहे के अन्त में गाइये)

अग्रवर अग्रसेन पद गहि शरणम्
लक्ष्मी हरि ओम जय विश्वेश्वर
जय करुणेश्वर जय समतेश्वर

卐 अध्याय सत्रह (अग्रसेन-माधवी-विवाह) 卐

दो0 : होता है प्रारम्भ अब, अग्र माधवी व्याह।
बढ़कर लेवो भाग सब, बोलो जोड़ी वाह।।क।।

दो0 : (क) कवि कहते हैं कि अब महाराजा अग्रसेन और देवी माधवी का शुभ विवाह प्रारम्भ होता है। आप सभी अग्रजन इस विवाह में भाग लीजिये और इस अद्‌भुत जोड़ी की वाह-वाह बोलिये।

ऐसा अवसर आज है, कल हो या ना हो।
सो मस्ती सब लीजिये, फिर हो या ना हो।।ख।।

(ख) ऐसा अवसर आज है। शायद यह अवसर आपको कल न मिले। इसलिये आप सभी अग्रबन्धु मस्ती से इस व्याह का आनन्द लीजिये।

मैं गाऊँ तुम नाचिये, व्याह हमारा है।
अग्र-माधवी द्वयन पर, हर सुख वारा है।।ग।।

(ग) मैं गाता हूँ। आप लोग नृत्य कीजिये क्योंकि यह व्याह हमारा अर्थात् हमारे अपने पितृपुरुष एवं पितृमाता का है। इन दोनों पर हमने अपना सुख न्यौछावर कर दिया है।

धन सम्पत्ति उछालिये, स्वर्ण रत्न उर संग।
नाचत गावत कूदिये, बिखराओ सतरंग।।घ।।

(घ) इस विवाह में आप धन-सम्पत्ति और स्वर्ण की उछाल-उछाल कर वर्षा कीजिये। आप खूब नाचिये, गाइये और कूदिये। ऐसा करके आप सर्वत्र सतरंग बिखराइये।

चौ0 : महिधर सबको न्यौता दीया। उभय पक्ष आमंत्रित कीया।।
मृदु बचनों से स्वागत कीया। अतिथी हितकारिन भर हीया।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते है कि नागराज महीधर ने सभी को न्यौता दिया। उन्होंने वर-वरनी दोनों पक्षों को आमंत्रित किया। अतिथियों, आमंत्रितों एवं हितकारियों का नागराज ने मृदुवचनों से स्वागत किया।

महामुनी ऋषि गर्गहु आए। सँग में राज्य गुणीजन लाए।।
अग्र-गर्ग से कहैं नगेन्दर। नागवंश का टूटा अंधर।।

(2) वर पक्ष की ओर से महामुनी गर्ग ऋषि वहाँ पधारे। मुनि गर्ग अग्रेयपुरी के गुणीजनों को अपने साथ उस दिव्य विवाह में लेकर आये। नागराज महीधर अग्रसेन एवं गर्ग मुनि से कहते हैं कि आज नागवंश का सम्पूर्ण अंधकार टूट गया।

जब से अग्र यहाँ पधराये। जड़ चेतन सबही हरषाये।।
द्विज ज्ञानी अरु वीरों के सँग। जैसे शोभित इन्द्र सुरन सँग।।

(3) जब से अग्रसेन यहाँ आये हैं तब से जड़-चेतन सभी हर्षित हो रहे हैं। जिस प्रकार से इन्द्र देवताओं का सान्निध्य पाकर शोभायमान होते हैं वैसे ही अग्रसेन जी द्विजों, ज्ञानियों और वीरों का साथ पाकर शोभित हो रहे हैं।

बाधाएँ सब भयीं पराजित। अब मम हिरदय दुःख नहीं मित!।।
मध्यदिवस के अन्तिम चरणे। भवन हमारे पग हैं धरने।।

(4) नागराज कहते हैं कि आज सारी बाधायें 'पराजित' हो गयीं। हे मीत! अब मेरे हृदय में तनिक भी दुख नहीं है। हे मुनिवर! मध्यदिवस के अन्तिम चरण में आपको हमारे नागभवन में अपने कृपालु चरण पधराने हैं।

दो0 : गर्ग ऋषी महि से कहैं, आप धर्मज्ञाता।
जैसा आप बताएँगे, करिहैं हम दाता।।(109)

दोहा : गर्ग मुनि नागराज महीधर से कहते हैं - आप धर्म के ज्ञाता हैं। हे दाता! जैसा-जैसा आप बतलाते जायेंगे वैसा-वैसा हम करते जायेंगे। (109)

चौ0 : दुपहर में बारात सजायी। रथ विशाल भवि ध्वजा लगायी।।
छत्र पताका दिव्य लगाये। स्वर्णऽरु मोतिन रथहिं जड़ाए।।

चौ0 : जैमिनी ऋषि कहते हैं कि - हे जनमेजय! दोपहर में बारात को सजाया गया। विशाल रथ में भव्य ध्वजा लगायी गयी। दिव्य छत्र-पताका भी उस रथ में लगायी गयी। स्वर्ण और मोती से उस रथ को जड़वाया गया।

अग्रारूढ़ भये दिव् रथ पर। गावत मंगलगान ऋषीवर।।
मंगल-यात्रा जावन लागी। जुड़वे कूँ आवत बड़भागी।।

(2) अग्रसेन जी दूल्हा वेश में उस दिव्य रथ में सवार हो गये ऋषियों ने मंगलगान प्रारम्भ कर दिया। मंगल-यात्रा जब प्रस्थान करने लगी तो उसमें शामिल होने के लिये बड़भागी जन आने लगे।

ढोल नगाड़े बाजे बजते। भाँति-भाँति के पुष्प बरसते।।
चन्दन-जल छिड़काव कराया। पथ में वस्त्र दिव्य बिछवाया।।

(3) ढोल-नगाड़े बाजे बज रहे हैं। भाँति-भाँति के पुष्पों की वर्षा हो रही है। बारात मार्ग पर चन्दन के जल का छिड़काव कराया गया है तथा पथ में दिव्य वस्त्रों की बिछावन की गयी है।

जलमय कलश रखे द्वय ओरे। ध्वज माला झण्डी जिहि ओढ़े।।
बीच-बीच सब नाचैं गावैं। उत बरात की बाट जुहावैं।।

(4) जल से भरे कलश पथ के दोनों ओर कतारबद्ध रखवाये गये हैं जिन पर ध्वजा, माला झण्डी ओढ़ायी गयी है। बारात के बीच-बीच में उल्लास से भरे हुए लोग नाच-गा रहे हैं जबकि उधर कन्या-पक्ष के यहाँ बारात की प्रतीक्षा की जा रही है।

दो0 : दिव्याभूषण रत्नमय, अग्र छवी रमणीय।
नाग तरुणियन भासते, तप्त सूर्य तेजीय।।(110)

दो0 : दिव्य आभूषणों एवं रत्नों से युक्त अग्र की रमणीय छवि तपते हुए सूर्य की भाँति नाग-तरुणियों को उद्दीप्त कर रही है।(110)

चौ0 : अग्र पार्श्व द्वय व्यजनन ढलई। शीर्ष छत्र रथ ध्वज रवि छजई।।
तेजस्विता अग्र अति भारी। सतत देखना अति दुखकारी।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि दूल्हा भेष में सजे हुये अग्रसेन जी की भव्य रमणीयता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अग्रसेन जी के पीछे दो व्यजन ढुलाये जा रहे हैं। रथ के शीर्ष पर फहराता हुआ रवि-चिह्न का ध्वज बहुत छज रहा है। दूल्हा बने अग्रसेन जी के रूप की तेजस्विता इतनी अधिक है कि इनकी ओर लगातार देखना दुखकारी हो रहा है।

जैसे-जैसे पासावत गए। दुलहा स्वागत में सब रत भए।।
दुलहा मण्डप में आ पहुँचा। शुभ संदेश नागपति पहुँचा।।
(2) जैसे-जैसे बारातीगण पास आते गये कि कन्या-पक्ष के सभी लोग दूल्हे के स्वागत में लग गये। दूल्हा मण्डप में आ पहुँचा है - यह सुसमाचार जब नागपति के पास पहुँचा।

हर्ष से रोमांचित भुजंग तन। प्रेम से बोले सुनिये प्रियजन।।
करना है सम्मान योग्यतम। सर्वोत्तम पर हो शिष्टोत्तम।।
(3) तो उनका सारा शरीर हर्षातिरेक से रोमांचित हो उठा। भुजंगपति अपने प्रियजनों से प्रेमपूर्वक बोले- हमें इनका योग्यतम सम्मान करना है। परन्तु ध्यान रहे सम्मान सर्वोत्तम तो हो किन्तु शिष्टाचार में भी वह सर्वोच्च होना चाहिये।

स्वागत की तैयारी करिये। अब विलम्ब बिल्कुल मत करिये।।
सभी भाँति ये वन्दनीय हैं। माननीय अरु पूजनीय हैं।।
(4) आप सभी मान्यवर उनके स्वागत की तैयारी कीजिये। अब आप तनिक भी विलम्ब न करें। ये सभी प्रकार से हमारे लिये वन्दनीय, माननीय और पूजनीय हैं।

दो0 : अति प्रसन्न भए नागपति, अग्र-आगमन सुन।
अगवानी को चल दिये, संग कुटुम्बी धुन।।(111)
दो0 : कवि कहता है कि अग्र-आगमन सुनकर अति प्रसन्न नागपति परिवारीजनों के साथ उनकी अगवानी को चल दिये।(111)

चौ0 : वर वरनी द्वारे पर आये। नैंना से नैंना टकराये।।
दो संस्कृति अब एक हो गईं। दो धाराएँ मनु हैं मिलईं।।
चौ0 : (1) जैसे ही वर रूपी अग्रसेन जी वरनी माधवी के समक्ष द्वार पर आये वैसे ही दोनों के नेत्र एक-दूसरे से टकराये। दो संस्कृतियाँ अब एक हो गईं। ऐसा लगता था मानो दो धाराओं का आज मिलन हो रहा हो।

उभयपक्ष सँग गले मिलत हैं। मानो कुल दो नहीं एक हैं।।
अग्रसेन देखे जैसे ही। भईं चकित सखियाँ वैसे ही।।
(2) उभयपक्ष के लोग एक-दूसरे से गले मिलते हैं। ऐसा लगता है कि वे शैव्य और वैष्णव दो पृथक-पृथक कुल न होकर एक ही कुल अर्थात्

श्रेष्ठ कुल के हों। देवी माधवी की सखियों ने जैसे ही दूल्हे राजा की (दिव्य छवि को) ओर देखा तो वे सब चकित हो गयीं।

तत्क्षण कीन्ही तेजस हीना। मानो अग्र-तेज सब छीना।।
सुन्दरता की करैं बड़ाई। मन में लज्जित अरु शरमाई।।

(3) तुरन्त ही वे सब कुमारियाँ तेज हीन हो गयीं। ऐसा लगा मानो अग्र-तेज ने उनके तेज को छीन लिया हो। वे सब अग्रसेन जी के अनुपम सौन्दर्य की बड़ाई करने लगीं। ऐसा करते-करते वे मन में लज्जित होकर शर्माने लगीं।

दुलहिन अति शोभायमान थी। वस्त्राभूषण से 'लंकृत थी।।
कुल-स्त्रिन से घिरकर आयीं। माधवि मण्डप में पधरायीं।।

(4) वहीं दूसरी ओर दुलहिन बनी नागकन्या माधवी अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रही थी। वह दिव्य वस्त्र और आभूषणों से अलंकृत थीं। देवी माधवी नागकुल की स्त्रियों से घिरी हुई विवाह-मण्डप की ओर आयीं।

दो0 : माला डाली वरनि ने, ऊँचे कन्धन मध्य।
पती रूप में कर लिया, वरण अग्र ब्रह्मण्य।।क।।

दो0 : (क) बरनी बनी माधवी जी ने वर के ऊँचे कन्धों के मध्य दिव्य वरमाला डालकर ब्रह्मरूपी अग्रसेन जी का वर रूप में वरण कर ही लिया।

बरसैं पुष्प अकाश सैं, लगैं सुहावन अति।
वाद्य दुन्दुभी घोष तैं, शब्द मृदुल गुंजति।।ख।। (112)

(ख) आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी जिनकी शोभा अति सुहावनी लग रही थी। उस समय बजने वाले वाद्यों एवं दुंदुभी के घोषों से मृदुल शब्द-ध्वनि गूँजने लगी। (112)

चौ0 : नागराज बोले दमाद से। पुत्रि माधवी बँध गइ तुमसे।।
यह तव सहधर्मिणि सहचरि है।करु स्वीकार हाथ अब तुम है।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि हे जनमेजय! नागराज महीधर ने अपने दामाद अग्रसेन जी से कहा कि हे दामाद जी! मेरी बेटी माधवी अब

तुमसे बँध गई है। यह तुम्हारी सहधर्मिणी है। इसे स्वीकार कीजिये। यह अब तुम्हारे हाथ में हैं।

अग्र-हाथ में हाथ माधवी। बोलो जै जै अग्र-माधवी।।
अन् कन्यायें थीं महिधर की। अग्रसेन के सब आगें की।।

(2) अग्रसेन जी के हाथ में माधवी जी का हाथ है। इसलिये सब मिलकर बोलिये - महाराजा अग्रसेन की जै हो। देवी माधवी की जै हो। नागराज महीधर की और भी कई कन्यायें थीं। नागराज ने उन सबको अग्रसेन जी के सम्मुख किया और बोले-

बोले इनको भी स्वीकारो। मुझको मुक्ती अब दे डारो।।
अग्रसेन को लज्जा आयी। मन की बात दई प्रकटायी।।

(3) हे दूल्हे राजा! आप इन कन्याओं को भी स्वीकार करके मुझे अब मुक्त कर ही डालिये। यह सुनकर अग्रसेन जी बहुत लज्जित हुये। (अपने) मन की प्रकट करते हुए अग्रसेन जी अपने ससुर से बोले -

मैं मन को वश में रखता हूँ। लोक-धर्म चर्या करता हूँ।।
इक कन्या का वरण किया फिर।अन्य संग यह मत नहीं सुन्दर।।

(4) मैं अपने मन को वश में रखता हूँ। मैं लोक-धर्म का निर्वाह करता हूँ। मैं आपकी एक कन्या का वरण पहले ही कर चुका हूँ। फिर आपकी अन्य कन्याओं के भी साथ .....। नही, नहीं महाराज! आपका यह मत मुझे उचित प्रतीत नहीं होता।

दो0 : पत्नी की सब बहिन हैं, मेरी धर्म-बहिन।
तो फिर कैसे है उचित? इनके संग रहिन।।(113)

दो0 : पत्नी की सब बहिनें मेरी भी धर्म - बहनें हैं। फिर इनके साथ रहना मेरे लिये किस प्रकार उचित है ? (113)

चौ0 :आर्ष-धर्म कहता स्पष्टहिं। मुझको डालैं नाहि अधर्महिं।।
धर्म का पालन करने दीजे। उसी-मार्ग पर चलने दीजे।।

चौ0 : जैमिनी ऋषि कहते हैं कि अन्य नागकन्याओं से विवाह करने के प्रस्ताव पर अग्रसेन जी आगे कहते हैं कि हे ससुर जी! आर्ष-धर्म भी यही

बतलाता है कि पुरुष के लिये एक ही स्त्री से विवाह करना न्यायोचित है। कृपया, आप मुझे अधर्म में न डालें। मुझे धर्म का पालन करने दीजिये। आप मुझे धर्म-मार्ग पर चलने दीजिये महाराज।

बहु विवाह राजन! नहिं अनुचित। अब तक माना गया उचित इत।
पाप प्रतीती यदि तुअ होती। तप-शक्ती से दिला ऊँ मुक्ती।।

(2) नागराज महीधर बोले- हे राजन्! बहु-विवाह अनुचित नहीं है। अब तक इसी प्रथा को उचित माना गया है। ऐसा करने से यदि तुम्हें पाप की प्रतीती हो रही तो अपनी तप-शक्ति से मैं तुम्हें अभी मुक्ति दिलवा सकता हूँ।

इक नृप के कइ रानी होती। नारी भी पतियन सँग सोती।।
बहु विवाह की अज्ञा देऊँ। नीति-विचार न हृदय धरेऊँ।।

(3) जहाँ एक राजा की बहुत सी रानियाँ होती हैं वहीं नारी भी कई पतियों के संग सोती है। मैं तुम्हें बहु-विवाह की आज्ञा प्रदान करता हूँ। इस विषय में किसी भी नीतिगत विचार को आप अपने हृदय में स्थान मत दीजिये।

लोक लोकहित के विरुद्ध यह।क्षमा करैं मो नहीं उचित यह।।
पत्नी अर्धांगिनी कहाती। श्रुतिवाणी यह सबै सुहाती।।

(4) तब दुखी अग्रसेन जी ने कहा - हे महाराज! आपका यह कृत्य लोक एवं लोकहित के विरुद्ध है। कृपया आप मुझे क्षमा कीजिये। मेरे लिये ऐसा करना उचित नहीं है। पत्नी को अर्धांगिनी कहा जाता है। वेदों की यह वाणी नर-नारी सभी को अच्छी लगती है।

दो0 : रक्षा करती पत्नि ही, स्वर्ग ऋषिन पितरन।
धर्म प्रजा नय तन सहित, लोक जीवनऽरु धन।। (114)

दो0 : हे महाराज! स्वर्ग, ऋषि, पितृ, धर्म, प्रजा, नय, तन, लोक, जीवन तथा धन की रक्षा (आदर्श) पत्नी के द्वारा ही सम्भव होती है। (114)

छ0 : सौ कुओं से श्रेष्ठ है इक बाबड़ी खुदबाबना।
सौ बाबड़िन से श्रेष्ठ है इक यज्ञ का कर लेवना।

सौ यज्ञ से अति श्रेष्ठ है इक पत्नि सँग घर पालना।
सौ पत्नियों से श्रेष्ठतर शुभ पत्नि का ही होवना।

छन्द : अग्रसेन जी कहते हैं कि हे ससुर जी! सौ कुओं की अपेक्षा एक बाबड़ी खुदवाना श्रेष्ठ है। सौ बाबड़ियों की अपेक्षा एक यज्ञ का करना अधिक श्रेष्ठ है। सौ यज्ञों से भी अधिक श्रेष्ठ है एक पत्नी के साथ घर चलाना और सौ पत्नियों की अपेक्षा एक ही धर्मपरायण पत्नी के साथ गृहस्थ धर्म का पालन सबसे अधिक श्रेष्ठ है।

चौ0 : सौत से नारी को ही दुख ना। दुःख पुरुष को भी अति क्यों ना?
देवि माधवी पत्नी होई। सत्य कहौं अन होय न कोई।।

चौ0 : (1) अग्रसेन जी कहते हैं कि हे महाराज! सौत से केवल नारी को ही अति दुख नहीं होता। पुरुष को भी अत्यन्त दुख होता है। क्यों महाराज! ऐसा होता है ना ? देवी माधवी मेरी पत्नी हो चुकी हैं। मैं सत्य कहता हूँ कि माधवी के अतिरिक्त अब कोई भी स्त्री मेरी पत्नी नहीं बनेगी।

अग्र माधवी कर है लीन्हा। ता ऊपर निज कर रख दीन्हा।।
तेरा साथ नहीं छोड़ेंगे। बन्धन कभी नहीं तोड़ेंगे।।

(2) नीतिवान अग्रसेन जी ने देवी माधवी का बाँया हाथ अपने हाथ में लिया और उसके ऊपर अपना दायाँ हाथ रखकर कहा- हे माधवी! हम कभी एक दूसरे का साथ नहीं छोड़ेंगे और ना ही हम कभी इन पवित्र बंधनों को तोड़ेंगे।

मन में बोले इक दूजे से। मैं तुमसे अरु तुम हो मुझसे।।
वस्त्र-छोर प्रभु निज कर पकड़ा। माधवि अग्रसेन उर जकड़ा।।

(3) ये सारी बातें वे दोनों मन ही मन एक दूसरे से बोले। साथ ही उन्होंने कहा - हे पत्नी! मैं तुमसे और तुम मुझसे हो अर्थात् हम दोनों का अस्तित्व एक-दूसरे से ही सम्भव है- ऐसा कहकर अग्र प्रभू ने देवी माधवी की ओढ़नी का छोर कसकर अपने हाथों में पकड़ लिया। वहीं दूसरी ओर देवी माधवी ने अग्रसेन जी को दृढ़ता से अपने हृदय (मन मन्दिर) में कैद कर लिया।

अंजलिबद्ध वेदि निअ आये। घृत से अग्नी तृप्त कराये।।
अग्निदेव की परिकम्मा की। एक बार नहिं सात बार की।।

(4) तदनन्तर, अग्र-माधवी अंजलीबद्ध होकर पवित्र वेदी के निकट आये और अग्निदेव को गौ-घृत से तृप्त करने लगे। दोनों ने पवित्र अग्निदेव को साक्षी मानकर उनकी सात बार प्रदक्षिणा की।

दो0 : पूरा हुआ विवाह जब, अग्र माधवी संग।
शैवऽरु वैष्णव मुदित भए, देख हरी-हर गंग।। (115)

दो0 : जैमिनी ऋषि कहते हैं कि इस प्रकार वैष्णववंशी अग्रसेन जी का नागवंशी देवी माधवी के साथ विवाह पूर्ण हो गया। श्री हरि और श्रीहर को गंगा (एक-दूसरे के प्रतीकों) में (डुबकी) गड्ड-मण्ड होते हुए देख शैव्य और वैष्णव मुदित हो गये।(115)

चौ0 : नागराज ने दिया खुशी से। कन्याधन वरपक्ष खुशी से।।
स्वर्ण रजत मोती हू दीये। मूँगा आदि सभी सँग हीये।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि दहेज का वर्णन करते हुए कहते हैं कि - नागराज महीधर ने खुशीपूर्वक वरपक्ष को बहुत कुछ दिया। उन्होंने स्वर्ण, रजत, मोती तथा बहुमूल्य मूँगा हृदय से वरपक्ष को भेंट किये।

अग्रसेन जो दहेज लीया। बहुत ब्राह्मणों को दे दीया।।
महिधर वैसे तो सब दीया। पर सन्तुष्ट न होवत हीया।।

(2) ऋषि कहते हैं कि अग्रसेन जी ने जो दहेज नागराज से प्राप्त किया था उसमें से बहुत सा भाग उन्होंने उसी क्षण ब्राह्मणों को भेंट कर दिया। नागराज जी ने वैसे तो जितना बन पड़ा उतना वरपक्ष को दिया, फिर भी उनका हृदय सन्तुष्ट नहीं हुआ।

सोचा इक तल इनको दे दूँ। अग्रसेन के नामहि कर दूँ।।
जा तल दोउन ब्याह रचा है। वो सर्वोत्तम लोक बँचा है।।

(3) नागलोक के अधिपति महीधर ने सोचा तो नागलोक का एक तल दूल्हे को देकर उस तल का नाम उनके नाम पर कर दूँ। नागराज जी ने

विचार किया कि जिस तल पर अग्र-माधवी का शुभ विवाह सम्पन्न हुआ है, उस तल को नागलोक का सर्वोत्तम तल कहा गया है।

नाम अग्रतल उहहि रखा तब। खुशी छा गई त्रयलोके सब।।
अगरतला है यही अग्रतल। भू-मण्डल का सर्वोत्तम तल।।

(4) नागराज महीधर ने उसी तल का नाम 'अग्रतल' रख दिया। ऐसा करने से नागलोक, स्वर्गलोक तथा नरलोक तीनों लोकों में प्रसन्नता छा गयी। भू-मण्डल का सर्वोत्तम तल कल का अग्रतल ही आज का अगरतला है।

दो0 : रत्न सभी होंगे यहाँ, वृक्षहु होंगे सर्व।
इच्छा होंगी पूर्ण सब, वर्ण करेंगे गर्व।। (116)

दो0 : नागराज आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि यह सर्वोत्तम तल अग्रतल सभी रत्नों से सम्पन्न होगा। यहाँ सभी प्रकार के वृक्ष होंगे। यहाँ हर प्रकार की इच्छा पूर्ण होगी। इस तल को देखकर हर वर्ण का प्राणी गर्व का अनुभव करेगा। (116)

चौ0 : नागराज तब आशिष दीन्ही। मंगल कामना भेंटहि कीन्ही।।
तुम दोनों सुत पौत्रादिक सँग। भू पर शासन करो दीर्घ रँग।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि नागराज महीधर ने दामाद और पुत्री दोनों को अपना आशीष प्रदान किया और ढेर सारी मंगलकामनाएँ भेंट की। नागराज जी ने कहा कि तुम दोनों पुत्र-पौत्रादिकों के साथ भूमि पर बहुत समय तक आन्नदपूर्वक शासन करो।

भुजँगपती तब पूजन कीन्हा। गर्गहि भलीभाँति सब दीन्हा।।
शेष सभी को बहुतेरा सा। स्वर्ण रत्न मणि प्रेम चिह्न सा।।

(2) अन्त में भुजंगपती महीधर ने गुरु गर्गाचार्य जी का पूजन करके उन्हें भलीभाँति बहुत कुछ भेंट किया। शेष बारातियों को भी ढेर सारा रत्न, और मणि आदि प्रेम के प्रतीक रूप में भेंट किया गया।

विवाह-महोत्सव के अवसर पर।नागलोक था सुखमय सुन्दर।।
दो संस्कृति का मिलनोत्सव यह। नर नारी भोगोत्सव नहिं यह।।

(3) शैव्य और वैष्णवों के मध्य होने वाले इस विवाह महोत्सव पर नागलोक सुखी और सुन्दर प्रतीत होता था। यह महोत्सव दो संस्कृतियों का मिलनोत्सव है। इस महोत्सव को नर-नारी का भोगोत्सव कतई ना समझा जाये।

किसने सुना प्रसंग पूर्व यह? अति शुभ दिव्य अभूतपूर्व यह।।
इस प्रसंग के गुण जु कहेगा। वंशवृद्धि वो कुलहि गहेगा।।

(4) कवि कहता है कि इस अत्यन्त शुभ, दिव्य और अभूतपूर्व प्रसंग को अब से पहले किसने सुना है ? इस दिव्य प्रसंग के गुणों का जो धीजन वर्णन करेगा उसका कुल वृद्धि को प्राप्त होगा।

दो0 : यह प्रसंग अद्भुत अती, नित ही अनुकरणीय।
"विष्णुदास" उर धारिये, जीवन प्रशंसनीय।।(117)

दो0 : यह अति अद्भुत प्रसंग सदा ही अनुकरणीय है। "विष्णुदास" जी कहते हैं कि इस प्रसंग के गुणों को हृदय में धारण करिये। जो ऐसा करता है उसका जीवन प्रशंसनीय कहा जाता है। (117)

अध्याय सत्रह 'अग्रसेन-माधवी-विवाह' पूर्ण हुआ।

::::::::

अग्र-माधवी-विवाह

चौ0 : माघ मास द्वितीया तिथि आई। अग्रवीर बारात सजाई।।
भई निकासी धूम-धाम से। बढ़त जात जो गाम-गाम से।।
तृतीया नाचत गावत बीती। नागलोक पहुँची सुखचीती।।
चौथहिं लगन आदि शुभ कीन्हे। प्रेम प्रतीक परस्पर दीन्हे।।
पञ्चम तिथि आई शुभ चीन्ही। सुर नर मुनि मनमानी कीन्ही।
ब्रह्मदेव नारद रवि आए। विष्णू शिव सँग शक्ती लाए।।
गर्ग उदालक मंत्र उचारें। सप्त चक्र पित अजहि सँवारें।।
नर व नाग का मिलनोत्सव यह। देवोत्सव अरु सर्वोत्सव यह।।

दोहा—अग्र माधवी व्याह में बड़ी अनौखी बात।
'विष्णुदास' भूखी कलम, खावत और खबात।।

卐 अध्याय अठारह (आग्रेयपुरी में आगमन) 卐

दो० : शुभ विवाह पूरण हुआ, अग्र माधवी का।
जिसने देखा या सुना, हर पल खुश उसका।।क।।

दो० : (क) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि वैष्णववंशी अग्रसेन जी एवं नागवंशी माधवी का शुभ विवाह सम्पन्न हो गया। जिसने भी इस अद्‌भुत विवाह को देखा अथवा इसके विषय में सुना उसका हर पल खुशी से भर गया।

बैठे चौकी मोतियन, अग्र माधवी दोय।
पूजनादि करने लगे, पति पत्नी खुश होय।।ख।।

(ख) फेरों के उपरान्त अग्रसेन और माधवी दोनों मोतियों से निर्मित चौकी पर बैठे। प्रसन्नतापूर्वक ये दोनों पति-पत्नी देव ऋषि आदि का पूजन करने लगे।

चौ० :फिर दोनों की विदाई कीन्ही। अँसुअन भेंट सभी ने दीन्ही।।
उत नागेन्द्री रोवत पति सँग। इत पुत्री जामाता के सँग।।

चौ० : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि हे जनमेजय! विवाहोपरान्त जब विदाई का समय आया तब उपस्थित समुदाय ने उन्हें अपने आँसुओं की अद्‌भुत भेंट प्रदान की। उधर नागरानी नागेन्द्री पति के साथ रोती हैं तो इधर पुत्री माधवी नागराज के जामाता (दामाद) के साथ रोती हैं।

बहिनन से काँधे मिल रोई। मिलना फिर जाने कब होई?।।
गर्ग ऋषी को आगें कीया। पुरी आगरे जावन लीया।।

(2) देवी माधवी अपनी बहिनों से गले मिलकर तथा उनके कंधों पर सिर रखकर रोती जाती हैं, मानो भविष्य में मिलन होगा कि नहीं। यदि होगा तो कब होगा? तब गर्ग ऋषि को आगें किया गया और तब कहीं जाकर आग्रेयपुरी के लिये वधु सहित जाना प्रारम्भ हुआ।

बीच-बीच में रुकते-रुकते। सप्त दिवस में थकते-थकते।।
आ पहुँचे निज दिव्य पुरी में। अति आनँद छाया नगरी में।।

(3) रास्ते में बीच-बीच में रुकते-रुकते सात दिनों में थकते-थकते बारातीगण अपनी दिव्यपुरी में पहुँचे। अब नगरी में चहुँ ओर आनन्द छा गया।

नागसुता सँग अग्र बढ़त हैं। पुण्य गीत चहुँ ओर गवत हैं।।
दोउन मुख छायी मुदिता अति। सूर्य चन्द्र जस मेरुहिं प्रविशति।।

(4) नागसुता के साथ सकुचाते हुए अग्रसेन जी आगें बढ़ते जा रहे हैं। चारों ओर पुण्य गीत गाये जा रहे हैं। पति-पत्नी दोनों के मुखमण्डल पर अत्यन्त मोद का भाव विद्यमान हो रहा है। उस समय ऐसा लगता है मानों सूर्य और चन्द्रमा सुमेरु पर्वत (के पीछे) में प्रविष्ट हो रहे हों।

दो0 : नव दम्पति को देखने, भीड़ भई भारी।
राजमहल तक द्वार से, स्वागत तैयारी।। (118)

दो0 : नवदम्पत्ति का दर्शन करने के लिये वहाँ भारी भीड़ उमड़ आयी और तब नगर के द्वार से राजमहल तक सभी लोग उनके स्वागत की तैयारी में जुट गये। (118)

चौ0 : द्वार पधारे जब दोनों वे। विस्मय मोद संग आए वे।।
पूर्व पुरोहित सँग माता को।अनुज शूर सँग सौम्य ऋषी को।।

चौ0 : (1) जैमिनी जी कहते हैं कि जब अग्र-माधवी राजमहल के द्वार पर पधारे तब वे विस्मय और मुदित भाव से भर गये क्योंकि प्रतापपुरी के पूर्व पुरोहित सौम्य ऋषि के साथ अग्रसेन जी ने अपनी पूज्य माता वैदर्भी भगवती और अनुज भ्राता शौर्यसेन को वहाँ उनके स्वागत को तत्पर खड़े पाया।

प्रियजन सँग सबको देखा तहँ। अगवानी होनी थी उन्ह जहँ।।
मैया भैया पुलकित हैं अति। मानो द्वय हैं कामदेव रति।।

(2) जिस स्थान पर उन दोनों की अगवानी होनी थी उस स्थान पर अग्रसेन जी ने अपने अन्य प्रियजनों को भी देखा। मैया भगवती तथा भैया शौर्य दोनों अत्यन्त पुलकित हैं क्योंकि उन्हें अग्र-माधवी साक्षात् कामदेव और रति स्वरूप प्रतीत हो रहे है।

इतनी सुन्दर इनकी जोड़ी। भू-मण्डल जो अति बेजोड़ी।।
माता के चरणों को छूआ। द्वय ओरे आनँद अति हूआ।।

(3) कवि कहता है कि अग्र-माधवी की जोड़ी इतनी सुन्दर है कि भू-मण्डल में ऐसी जोड़ी मिलना दूभर है अर्थात् वैष्णव नाग की यह जोड़ी अपने आप में बेजोड़ है। पुत्र ने माता के चरणों का स्पर्श किया। दोनों के हृदय में अति आनन्द का भाव छाने लगा।

माँ ने बेटा गले लगाया। कण्ठ खुशी से है भर्राया।।
भाई से भाई जब मिलई। मुर्झाती कलियाँ तब खिलई।।

(4) माँ ने जैसे ही बेटे को गले से लगाया कि दोनों का कण्ठ खुशी से भर्राने लगा। और जब भाई से भाई गले मिले तो ऐसा लगा मानों मुर्झाती हुयी कलियाँ खिल गयी हों।

दो० : पाँव छुए तब माधवी, श्वासूमाता के।
कण्ठ लगाया मात ने, बोली हँसकर के।।क।।

दो० : (क) जब बहू माधवी ने अपनी श्वासुमाता के पाँव छुये तब माता वैदर्भी ने बहू को अपने कण्ठ से लगाया और बोलीं-

तू मेरी बहु है नहीं, बेटी है मेरी।
फफक-फफक कर रो पड़ी, दुलहिन बेचारी।।ख।।(119)

(ख) तू मेरी बहू नहीं, मेरी बेटी है। यह सुनते ही बेचारी दुलहिन फफक-फफक कर रोने लगी। (119)

नीतिगत दोहे

यदि ऐसा होवन लगे, घर नहिं टूटेंगे।
प्रेम और बढ़ जाएगा, स्वारथ छूटेंगे।।1।।

(1) कवि कहता है कि यदि ऐसा होने लग जाये तो घर-परिवार का टूटना बन्द होने लगेगा। स्वार्थ समाप्त होकर प्रेम बढ़ने लगेगा।

खर्चा कम हो जाएगा, बढ़ जायेगी आय।
"विष्णुदास" फिर देर क्यूँ, शुभ विचार उर लॉय।।2।।

(2) इससे खर्चा भी कम हो जाएगा तथा सामूहिक आय भी बढ़ने लगेगी। विष्णुदास कहते हैं कि हे बन्धुओं! फिर देर क्यों कर रहे हो ? अर्थात् इस शुभ विचार को हृदय में धारण कर लीजिये। इस शुभ विचार पर तुरन्त अमल करो।

कमरे हों चाहे कई, रखो रसोई एक।
प्रेम-वृद्धि का केन्द्र यह, मानहु मम मत नेक।।3।।

(3) परिवार में चाहे कई कमरे हों परन्तु रसोई एक ही रखनी चाहिये। क्योंकि प्रेम-वृद्धि का यही तो केन्द्र है। कवि कहता है कि मेरी इस नेक सलाह को मान लीजिये।

मेरा क्या? मत मानिये, मेरी यह शुभ बात।
आज नहीं तो कल सही, मानोगे यह बात।।4।।

(4) कवि परेशान होकर कहता है कि मेरा क्या है? मेरी इस शुभ बात को आप मानिये या ना मानिये किन्तु यह निश्चित है कि आज नहीं तो कल सही, मेरी यह शुभ बात आप अवश्य मानोगे।

सास बहू से यदि लड़ै, या बहु श्वासू से।
अंश वंश मिट जावता, बात है धाँसू ये।।5।।

(5) शास्त्रों का कथन है कि चाहे सास बहू से लड़े या फिर बहू सास से लड़े लेकिन यह बात बिल्कुल धाँसू (सच्ची) है कि इस कारण सारा अंश-वंश मिट जाता है।

बेटा लेकिन क्या करे? पति भी तो है वो।
या तो पागल होएगा, या फिर मरिहै वो।।6।।

(6) यदि हम बेटे की बात करें तो बेटा इस सम्बन्ध में क्या करे? क्योंकि वह 'पति' भी तो है। या तो वह पागल हो जाएगा या फिर वह असमय ही मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा।

मेरा कहना मानिये, रहिये हिलमिल कर।
सब जीवन कट जाएगा, प्यारे! देर ना कर।।7।।

(7) कवि कहता है कि मेरा कहना मानिये। आप सब हिल मिलकर रहिये। ऐसा करने से आपका सम्पूर्ण जीवन आनन्द से कट जाएगा। मेरे प्यारे! अब देर मत कर।

दादा पोता चाहता, दादी पोती को।
ऐसा सम्भव होय जब, एक रखैं दिल को।।8।।

(8) दादा पोता चाहता है तो दादी पोती की इच्छा रखती है। ऐसा तभी सम्भव होगा जब हम इन दोनों के दिल को एक रख पाएँगे।

अग्रवंश के वंशजों, कुछ तो सीखो तुम।
घर में खुशहाली रखो, राज करोगे तुम।।9।।

(9) हे अग्रवंश के वंशजों! तुम कुछ तो सीखो। घर में खुशहाली रखकर ही तुम राज्य कर पाओगे।

तुम पर धनबल बुद्धिबल, सेवाबल भी है।
यदि समताबल हो तुमहिं, तो फिर सब ही है।।10।।

(10) हे अग्रवालों! तुम्हारे पास धन का बल है। तुम्हारे पास बुद्धिबल और सेवाबल भी है। यदि समता का बल तुममें प्रतिष्ठित हो जाये तो फिर हर वस्तु तुम्हारी है।

बनियाँ बनियाँ एक हैं, भेद नहीं कोई।
सारा अन्तर मेटकर, सुखी-सेज सोई।।11।।

(11) कैसा भी बनियाँ हो। समय की माँग है कि आज सारा बनिया समाज एक ही समझा जाना चाहिये। इस विषय में किसी भी प्रकार का भेद नहीं किया जाना चाहिये। अत: सारा अन्तर मिटाकर सुख की सेज पर सो जाइये।

अच्छा अब मैं जावता, देकर नेक सलाह।
मानोगे तो 'वाह' है, नहिं तो प्यारे आह।।12।।

(12) कवि कहता है कि अच्छा, अपनी यह नेक सलाह देकर मैं जाता हूँ। मेरी इन बातों को यदि आप मानोगे तो हम दोनों की 'वाह-वाह' होगी, नहीं तो प्यारे! 'आह' तो है ही।

चौ० : मेरी ज्येष्ठ बहू है प्यारी। अन्दर ले जाओ फुलवारी।।
वैदर्भी बोली हे प्रभुवर। आज धन्य मैं हूयी रघुवर।।

चौ० : जैमिनी ऋषि कहने लगे कि माता भगवती ने उपस्थित सेविकाओं-प्रियजनों से कहा कि यह मेरी प्रिय ज्येष्ठ बहू है। मेरी इस फुलवारी को अन्दर ले जाओ। वैदर्भी बोलीं- हे प्रभुवर! हे रघुवर! आज मैं धन्य हो गई।

बिछड़ा बेटा भी मिल पाया। सँग में बहु को लेकर आया।।
अच्छा बेटा अन्दर जाओ। पत्नी सँग कक्षहिं पधराओ।।

(2) मेरा बिछुड़ा हुआ बेटा तो मिला ही, वह अपने संग बहू को लेकर भी आ गया। अच्छा, बेटा! अब तुम अन्दर जाकर बहू के संग अपने कक्ष में पधारो।

पाँच वर्ष के बाद मिले हैं। सबके चेहरे आज खिले हैं।।
इतने में कुछ सखियाँ आयीं। नाचत गावत अति इतरायीं।।

(3) ये सभी पाँच वर्ष के बाद एक-दूसरे से मिले हैं। सबके चेहरे आज ही तो खिले हैं। इतने में वहाँ कुछ सखियाँ आयीं और नाचते-गाते हुये बड़ी इतराने लगीं।

बहु से मंगल कार्य कराये। आशिर्वाद सास से पाये।।
सौख्यव्रती पतिव्रता होओ। पुत्रन पौत्रन माता होओ।।
पति सँग लम्बी आयू जीओ। जीवन भर सुख प्याले पीओ।।

(4) बहू से मंगल-कार्य करवाये गये। बहू ने सास से बहुत से आशीर्वाद प्राप्त किये। सौख्यव्रती भव! पतिव्रता भाव! पुत्र-पौत्रादिनाम् माता भव! पति के साथ तुम लम्बी आयू जिओ। तुम जीवन भर सुख के प्याले पिओ, आदि-आदि।

दो० : अग्र माधवी यों लहैं, जस शिव पारवती।
कामदेव रति सम लगैं, पत्नी जगत्पती।। (120)

दो० : कवि कहता है कि दुलहा-दुलहिन रूपी अग्र-माधवी इस प्रकार लहलहा रहे हैं मानों वे साक्षात् भगवान शिव और माता पार्वती हों। वे

दोनों पत्नी और जगतपती सुन्दरता में कामदेव और रति का भ्रम उत्पन्न करते प्रतीत हो रहे हैं। (120)

चौ0 : इक दिन दोनों वनहिं विचरते। हंस-हंसिनी बातैं करते।।
भ्रमर-कमलिनी सँग में देखे। अग्रसेन जी करैं परेखे।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि जनमेजय से कहते हैं कि एक दिन श्री अग्रसेन और माधवी ने उपवन में विचरते हुए हंस-हंसिनी के जोड़े को बातें करते देखा। भ्रमर के साथ कमलिनी को देखकर अग्रसेन जी परीक्षा करने लगे।

कैसी निर्लज्जा है नलिनी ? पति को धोखा देत रमणनी।।
माधवि सारी बात समझ गइ। शंका शायद पति को होवइ।।

(2) नलिनी कैसी निर्जज्जा है जो अपने पति को धोखा देकर दूसरे पुरुष के साथ रमण कर रही है? माधवी जी तुरन्त सारी बात समझ गईं। उन्हें लगा कि शायद पति को उनके चरित्र पर शंका हो रही है।

भौहें टेढ़ी करके बोली। लेकिन शब्द मधुर रस-घोली।।
भ्रमर पुत्र सम होय कमलिनी। उसी भाव से प्रेम प्रदर्शनी।।

(3) नागकन्या माधवी अपने शब्दों में माधुर्य रस घोलकर भौंहे टेढ़ी करके बोलीं-कमलिनी के लिये भ्रमर पुत्र की तरह होता है। उसी (माँ-बेटे) भाव से वह उसके प्रति प्रेम अर्थात् वात्सल्य भाव प्रदर्शित कर रही है।

नलिनी बोली सूर्य पती है। भ्रमर पुत्र पौत्रादिक सम है।।
सहसा माधवि पति से पूँछइ। दुर्भावना पुरुष क्यों होवइ?।

(4) कमलिनी ने कहा कि उसका पति तो सूर्य है तथा भ्रमर आदि उसके लिये पुत्र-पौत्रादिकों के समान हैं। सहसा देवी माधवी अपने पति से पूँछने लगीं कि पुरुषों में पत्नी के प्रति दुर्भावना क्यों रहती है ?

दो0 : पति को धोखा देत ना, पुत्रन साथ रहे।
हे प्रियतम! कब आओगे? मन में यही कहे।।क।।

दो0 : (क) नलिनी पति को धोखा नहीं देती। वह तो अपने पुत्रों के साथ रहकर मन में यही कहती है कि हे प्रियतम! तुम कब वापस आओगे?

पति जाता परदेस जब, दुख में ही रहती।
वापस आता पति तब, खुलकर के हँसती।।ख।। (121)

(ख) जब उसका पति परदेश चला जाता है तब वह सारा-सारा समय दुखी रहती है। पति के वापस आने पर ही बेचारी पत्नी खुलकर हँस पाती है। (121)

चौ0 : अग्र हुये सन्तुष्टऽरु सुखवर। सारयुक्त वाणी को सुनकर।।
पुत्र-पौत्र इच्छा उर जागी। बिना शब्द समझे बड़भागी।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि नागकन्या की इस सारयुक्त वाणी को सुनकर अग्रसेन जी अति सन्तुष्ट और सुखी हुये। बड़भागी नरेश बिना कहे समझ गये कि पत्नी के हृदय में पुत्र-पौत्रादिकों की स्वाभाविक इच्छा जाग उठी है।

राज्य की नारीं पतीपरायण। पुरुषहु सत्यव्रती हितधारण।।
महालक्ष्मी उनकी देवी। राज्य की देवी सबकी देवी।।

(2) आग्रेयपुरी की सभी नारियाँ पति-परायण हैं। वहाँ के पुरुष भी सत्य का व्रत रखने वाले और पर-हित-धर्म के धारण करने वाले हैं। उनकी देवी माता महालक्ष्मी हैं। राज्य की यह देवी पुरी के समस्त नागरिकों की कुलदेवी हैं।

सो चिन्ता काउहि ना होवै। परजा सारी सुख से सोवै।।
बछड़े थन से अलग न होते। गोधन हृष्ट-पुष्ट उत होते।।

(3) इसलिये वहाँ किसी को किसी बात की चिंता नहीं रहती है। वहाँ सारी प्रजा सुख से सोती है। वहाँ बछड़े माता के थनों से अलग नहीं होते। वहाँ का सम्पूर्ण गो-धन हृष्ट-पुष्ट है।

तहँ निर्धन होवै ना कोई। विपुल सम्पदा प्रति जन होई।।
प्रेमी धर्मयुक्त श्री मय नर। नारिहु लक्ष्मि स्वरूपा रतिवर।।

(4) उस राज्य में कोई भी प्राणी निर्धन नहीं है। हर व्यक्ति विपुल सम्पदा का स्वामी है। वहाँ के नर प्रेमी हैं। वे धर्म का पालन करने वाले तथा श्री से युक्त हैं। वहाँ की नारियाँ भी लक्ष्मीस्वरूपा एवं श्रेष्ठ रतिरूपा हैं।

दो0 : अग्रपुरी के मध्य में, था लक्ष्मी मन्दिर।
अर्चन पूजा होत तहँ, अहोरात सुखकर।।क।।

दो0 : (क) आग्रेयपुरी के बिलकुल मध्य में लक्ष्मी जी का मन्दिर है जहाँ चौबीसों घण्टे सुखकारी अर्चना-पूजा होती रहती है।

द्वार प्रवेशहिं गणपती, ठीक बाद शिव वास।
"विष्णुदास" जहँयेसभी,तहँ नित हासहिहास।।ख।।

(ख) राज्य के प्रवेश द्वार पर गणपति विराजमान हैं। गणेश जी के ठीक बाद भगवान शिव का वास है। "विष्णुदास" कहते हैं कि जहाँ ऐसे देवी-देवताओं का वास होगा, वहाँ तो नित्य हास ही हास (परम आनन्द) होगा ही।

पुरी आगरे लागती, मानो हो बैकुण्ठ।
श्रीहरि जहँ नित वासते, सँग महालक्ष्मि सुकंठ।।ग।।

(ग) आग्रेयपुरी साक्षात् बैकुण्ठ के समान प्रतीत होती है। जहाँ श्री हरि के संग सुन्दर कण्ठ वाली माता महालक्ष्मी नित्य वास करती हैं।

जो यह शुभ गाथा सुनै, सुख-समृद्धि पावै।
वंशवृद्धि ऐश्वर्य नित, "विष्णू" उत धावै।।घ।।

(घ) जो प्राणी इस शुभ गाथा को सुनता है वह सदा सुख-समृद्धि को प्राप्त करता है। "विष्णुदास" जी कहते हैं कि वंशवृद्धि और ऐश्वर्य भी सदा उन्हीं की ओर दौड़ने लगता है।

पाप उसे लगता नहीं, क्योंकी श्रीहरि संग।
निर्धनता भी ना उसे, सदा रहे सतरंग।।ङ।।

(ङ) ऐसे व्यक्ति को पाप नहीं लगता क्योंकि श्रीहरि की कृपा उसे प्राप्त होती है। उसके घर निर्धनता भी नहीं फटकती। वह सदा सतरंगों से परिपूर्ण रहता है।

"विष्णुदास" यह शुभ कथा, मन में धरि लीजै।
उचितऽनुचित की सोचकर, कर्म सदा कीजै।।च।।

(च) "विष्णुदास" कहते हैं कि हे अग्रजों! इस शुभ कथा को आप अपने मन में धारण कर लीजिये और उचित-अनुचित का निर्णय करके आप सदा अपने कर्म का पालन कीजिए।

धर्म-कर्म रत जो रहे, होवै मालामाल।
सो प्यारे क्यों सोचता? सिक्का तुरत उछाल।।छ।।

(छ) जो प्राणी अग्र-धर्म एवं अग्र-कर्म में रत रहता है वह मालामाल हो जाता है। इसलिये प्यारे! तू अब क्या सोच रहा है ? अरे जेब से सिक्का निकाल और आकाश की ओर उछाल! अर्थात् तेरा सौभाग्य तेरी प्रतीक्षा कर रहा है।

अग्र कथा में दीजिये, झोली भर-भर के।।
महालक्ष्मी देयँगी, मुठ्ठी भर-भर के।।ज।।(122)

(ज) कवि कहता है कि जब कभी जहाँ भी भगवान अग्रसेन जी की यह दिव्य कथा हो रही हो वहाँ झोली भर-भर के देना चाहिये। यह सत्य है कि यदि तुम ऐसा करोगे तो माता महालक्ष्मी तुम्हें मुठ्ठी भर-भरके सदा देती रहेंगी। (122)

अध्याय अठारह 'आग्रेयपुरी में आगमन' पूर्ण हुआ।

:::::::

(दोहे के अन्त में गाइये)

अग्रवर अग्रसेन पद गहि शरणम्
लक्ष्मी हरि ओम जय विश्वेश्वर
जय करुणेश्वर जय समतेश्वर

卐 अध्याय उन्नीस (इन्द्र से युद्ध एवं संधि) 卐

दो0 : कर्म करत हर व्यक्ति तहँ, वर्ण-धर्म अनुसार।
रक्षा करते राज्य नृप, शाश्वत धर्मऽनुसार।।

दो0 : जैमिनी ऋषि कहते हैं कि आग्रेयगणराज्य में निवास करने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने वर्ण-धर्मानुसार अपना कार्य करता था। राजा अग्रसेन जी भी शाश्वत राज-धर्म के अनुसार अपने राज्य की प्रजा की रक्षा करते थे।

चौ0 : शौर्य अग्र का अतुलनीय था। भू-संरक्षण वन्दनीय था।।
कोई उनका शत्रु नहीं था। श्रीमान सबका हितवर था।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि राजा अग्रसेन का शौर्य अतुलनीय था। उनका व्यवस्थित भू-संरक्षण वंदना करने योग्य था। उनका कोई शत्रु नहीं था। क्योंकि श्रीमान अग्रसेन सदा सबके लिये हितकारी थे।

चन्द्र भाँति वह सदा सुलभ थे। दर्शन जिनके सबै सुखद थे।।
उनका सबसे प्रेम-भाव था। ब्रह्मा सम सबके प्रति सम था।।

(2) श्री अग्रसेन चन्द्रमा की तरह सदैव सबके लिये उपलब्ध रहते थे। उनका दर्शन सबके लिये सुख प्रदाता था। छोटे-बड़े सभी के लिये प्रजापति ब्रह्माजी की तरह उनका समान प्रेम भाव था।

राजधर्म के पूरे ज्ञाता। अर्थनीति में जग विख्याता।।
जब से माधवि अग्रे आयी। बिना जोत भू अन्नुपजायी।।

(3) श्री अग्रसेन राजधर्म के पूर्ण ज्ञाता थे। अर्थनीति में तो वह जग विख्यात थे। जब से देवी माधवी अग्रयेपुरी में बहू बनकर पधारी थीं तब से वहाँ की सुलक्षणा भूमि बिना जोत के उपज उत्पन्न कर रही थी।

प्रजा मगन रहती आनन्दे। गौ भी दूध देत सानन्दे।।
उपज बढ़ गई अन्न सरस भए। वृक्ष पुष्प फल से अति लद गए।।

(4) वहाँ की प्रजा आनन्द में मग्न रहती थी। वहाँ की गायें भी आनन्दपूर्वक दूध देती थीं। वहाँ उपज में पहले से अधिक वृद्धि हो गयी।

अन्न में सरसता और अधिक हो गयी। इतना ही नहीं, वहाँ के वृक्ष भी पुष्पों और फलों के भार से सदा लदे रहते थे।

दो० : अहंकार अरु क्रोध ना, धर्मयुक्त व्यवहार।
हर व्यक्ती उन्नति लहै, करके प्रेमाचार।।(123)

दो० : वहाँ के निवासियों में ना तो अहंकार था और ना ही किसी के प्रति क्रोध का भाव था। उनका व्यवहार धर्म से युक्त था। आपस में प्रेमाचार निभाते हुए वहाँ हर व्यक्ति नित्य उन्नति की ओर अग्रसर था। (123)

चौ० : तभी अचानक वर्षा रुक गइ। सब सोचैं का अनहोनी भइ?
प्रजा में चर्चा होवन लागी। अन्नागार भरे हम भागी।।

चौ० : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि तभी अचानक वर्षा होना बन्द हो गया। सारे नगरवासी सोचने लगे कि यह कैसी अनहोनी हो गयी ? प्रजा में यही चर्चा होने लगी कि हम बड़े भाग्यशाली हैं जो राज्य के आगार अन्न से भरे पड़े हैं।

यदि वर्षा नहिं हुई भविष में। तो अकाल आगरेपुरी में।।
शोक प्रजा का सुना अग्र जब। बड़े प्रेम से समझाया तब।।

(2) यदि भविष्य में वर्षा नहीं हुई तो हमारे इस आग्रेयपुरी में अकाल पड़ना निश्चित है। राजा अग्रसेन जी ने जब प्रजा के इस शोक को सुना तो उन्होंने बड़े प्रेम से सबको समझाया।

सुरपति की हम विनय करेंगे। यदि वो इसको नहिं मानेंगे।।
तो मैं स्वयम् उपाय करूँगा। प्रजा की रक्षा अवश करूँगा।।

(3) हे प्रजाजनों ! पहले तो हम सुरपति की विनय करेंगे। यदि वह हमारा निवेदन स्वीकार नहीं करेंगे तो फिर मैं स्वयं कोई समुचित उपाय करूँगा। परन्तु आप यह सुनिश्चित समझें कि मैं प्रजा की रक्षा अवश्य करूँगा।

जो भोजन जैसा जिसका है। मिलेगा उसको वो उसका है।।
तभी माधवी देवी बोली। वचन विनीत नम्र रसघोली।।

(4) जिस व्यक्ति का जैसा भोजन है वो उसे अवश्य मिलेगा क्योंकि वह उसका अधिकार है। तभी देवी माधवी माधुर्य रस से परिपूर्ण वाणी में विनयवत् बोलीं -

दो0 : सुर-निंदा ना मैं करूँ, जन हित में कहती।
सुनैं बात मम चित्त से, मन में जो रहती।।(124)

दो0 : हे महाराज! मैं सुर-निंदा ना करके जन-हित के परिप्रेक्ष्य में ही अपनी बात कह रही हूँ। कृपया, मेरे मन की बात को आप ध्यानपूर्वक चित्त में धारण करें। (124)

चौ0 : दैव-कृपा आश्रित ना रहिये। निज कर्त्तव्य न कबहूँ तजिये।।
निज प्रयास से जन जो पाता। वो ही तो पुरुषार्थ कहाता।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि राजरानी माधवी आग्रेयनरेश से कहती है - कि हे राजन्! हमें देवताओं के ही आश्रित नहीं रहना चाहिये। हमें अपने कर्तव्य-कर्म से कभी विमुख नहीं होना चाहिये। मनुष्य अपने पुरुषार्थपूर्ण कर्म से जो कुछ प्राप्त करता है उसे पुरुषार्थ कहा जाता है।

मेघों में जैसे जल रहता। वैसे ही नदियों में बहता।।
दैव-कृपा से बदरा देते। नदियों से क्यों नहिं ले लेते?।।

(2) हे राजन्! जिस प्रकार मेघों में जल रहता है वैसे ही जल नदियों में भी बहता है। दैव-कृपा से बादल ही जल के देने वाले हैं। फिर आप नदियों से जल संग्रहित क्यों नहीं कर लेते?

या हित उचित उपाय करो प्रभु! व्यर्थ गँवाओ समय न हे प्रभु!।।
कर्म किया प्रारम्भ सभी ने। जल-धारा तब लगी प्रकटने।।

(3) हे राजन्! इस हेतु आप समुचित उपाय कीजिये। हे प्रभु! अब और समय गँवाना व्यर्थ है। तब सभी लोगों ने कर्म का प्रारम्भ किया। फलस्वरूप जल की धारा प्रकट हो गयी।

प्यासी धरती फलित हुई फिर। सर्वानन्द पुरी अरु स्थिर।।
इन्द्र ने जानी जब यह गाथा। क्षोभ से पीटा अपना माथा।।

(4) प्यासी धरती पुन: फल देने लगी। सर्वानन्द से परिपूर्ण आग्रेय राज्य में फिर से स्थिरता आ गयी। इन्द्रदेव को जब इस पुरुषार्थ-गाथा की जानकारी हुयी तो देवेन्द्र क्षोभ से अपना माथा पीटने लगे।

दो0 : क्षोभ हुआ तब इन्द्र को, बोला आवेशहिं।
छीना यश किसने मेरा? आयू क्षीण किनहिं।।(125)

दो0 : कवि कहते हैं कि तब इन्द्र को क्षोभ हुआ और आवेशयुक्त वाणी में बोले कि मेरा यश किसने छीना है ? किसकी आयु क्षीण होने वाली है? (125)

चौ0 :अग्निदेव आगरे पठायें। और फसल सबरी खा जायें।।
गुरू वृहस्पति इन्द्र से कहते। अभय-दान प्राणिन तुम देते।।

चौ0 : (1) इन्द्रदेव ने अग्निदेव को आदेश देते हुए कहा कि हे अग्निदेव! आप शीघ्र आग्रेयपुरी जाइये और वहाँ की सारी फसल को खा जाइये। सहसा देवगुरु वृहस्पति बोले - हे इन्द्र! तुम्हारा कार्य प्राणीमात्र को अभयदान देना है।

ईर्ष्या प्राणी से तव उर क्यों ? जगत-नाश की इच्छा है क्यों ?।।
धर्मनिष्ठ तुम छल को त्यागो। देवन कार्य जगत अनुरागो।।

(2) तुम्हारे हृदय में ईर्ष्या का यह भाव कहाँ से उत्पन्न हो आया ? क्यों, कहीं तुम्हारी इच्छा जगत का नाश करने की तो नहीं हो रही है ? हे धर्मनिष्ठ ! तुम छल का त्याग कर दो।

यहि देवोचित नित्य कर्म है। मेरा भी यहि परामर्श है।।
क्रोध इन्द्र का हुआ न कम था।सुरपति अग्नि पठाया भू था।।

(3) यही देवोचित नित्य कर्म है। तुम्हारे लिये मेरा यही परामर्श है। किंतु इन्द्र का क्रोध तनिक भी कम नहीं हुआ। सुरपति ने अग्निदेव को भूमि पर भेज ही दिया।

खड़ी फसल में आग लग गई। शांत करी तौऊ न बुझई।।
जब झोंकी बालू पानी सँग। आग शांत भइ तीव्र पवन सँग।।

(4) अचानक खेतों में खड़ी हुई फसल में आग लग गयी। आग्रेयपुरी के नागरिकों ने आग बुझाने का बहुत प्रयास किया किन्तु आग थी कि शांत ही नहीं हो पा रही थी। जब किसानों ने बालूयुक्त पानी आग पर डाला तब कहीं जाकर तीव्र पवन के सहयोग से वह विशाल आग बुझ पायी।

दो0 : ज्ञात हुआ जब गर्ग को, अग्नी का कारण।
अग्र से बोले इन्द्र है, बरबादी-कारण।।क।।

दो0 : (क) जब कुलगुरू गर्गाचार्य जी को इस अग्नि का कारण ज्ञात हुआ तो वह बोले - हे राजन्! इस बरबादी का कारण इन्द्रदेव हैं।

इन्द्र-व्याह ना हो सका, देवि माधवी संग।
ग्लानी हिरदय छा गई, सो महि की बदरंग।।ख।। (126)

(ख) हे राजन्! मेरे अभिमत से इन्द्र का ब्याह नागकन्या देवी माधवी के साथ सम्पन्न नहीं हो पाया और इन्द्र के हृदय में ग्लानि छा गयी। इस कारण उसने इस हरी भरी भूमि को बदरंग कर दिया है।(126)

चौ0: अग्रसेन बोले ऋषिवर से। कार्य करूँ मैं नित-सुर-हित से
देवों का चिन्तन करता हूँ। भक्ति-भाव उनमें रखता हूँ।।

चौ0 : जैमिनी ऋषि कहते हैं कि श्री अग्रसेन जी बोले - हे ऋषिवर! मैं सदैव देव हितकारी कार्य करता हूँ। देवताओं का चिंतन करता हूँ। उनमें तीव्र भक्ति-भाव भी रखता हूँ।

देव सदा किरपा करते हैं। फिर क्यों दुख हममें भरते हैं।।
सुर हित हम भूमी पर आए। 'हम रक्षा' सुर क्यों नहिं भाए?।।

(2) देव भी हम पर सदा कृपा करते आये हैं। फिर आज वे हमें क्यों दुख से युक्त कर रहे हैं। हम देव-हितार्थ ही मनुष्य इस भूमि पर आये हैं। तो फिर 'मनुष्य-रक्षा देव कर्तव्य है' - यह भाव आज उन्हें क्यों नही सुहा रहा है ?

द्वेष लोभ यदि सुर उर छावै। तौ देवत्व न उनहिन भावै।।
हमका बुरा न कर पायेंगे। नहुष भाँति वे गिर जायेंगे।।

(3) हे गुरुदेव! यदि द्वेष-लोभ देवताओं के हृदय में भी छाने लगेगा तो उनमें देवत्व नहीं रह पाएगा। वे हमारा बुरा करना चाहकर भी नहीं कर पायेंगे। राजा नहुष की तरह उनका देवलोक से पतन हो जाएगा।

देवों में जो तेज है दीखे। दैव-कृपा से हममें दीखे।।
दैव-कृपा अरु आतमबल से। जीत सकत हूँ शत्रू बल से।।

(4) हे प्रभु! आज देवताओं में जो तेज परिलक्षित हो रहा है, दैव-कृपा से हममें भी वही तेज विद्यमान है। दैव की कृपा और अपने आत्म-बल से मैं शत्रु को बलसहित जीत सकने में सक्षम हूँ।

दो0: देव-कोप से मुक्ति का, है उपाय बस एक।
शरण गहूँ महालक्ष्मि की, "विष्णुदास" मत नेक।। (127)

दो0 : अग्रसेन जी कहते हैं कि हे गुरुदेव! देव-कोप से मुक्ति का बस एक ही उपाय है कि मैं तुरन्त माता महालक्ष्मी की शरण में जाऊँ। "विष्णुदास" जी कहते हैं कि राजा का यह नेक मत उपस्थितजनों को श्रेष्ठ एवं समयोचित प्रतीत हुआ। (127)

चौ0: महालक्ष्मि को नमन किया नृप।अभय प्राप्त कीन्हा माँ से नृप।।

इन्द्र- कृपा से मुक्त करूँ इत। अस्त्रन-शक्ती क्षीण करूँ उत।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि भक्त अग्र द्वारा पूजित होने पर माता महालक्ष्मी पुन: प्रकट हुयीं। अग्रसेन जी ने जगतजननी को नमस्कार किया और 'अभयता' का वरदान प्राप्त किया। माता बोली- हे पुत्र! मैं तुझे इन्द्र की कृपा (कोप) से मुक्त करती हूँ और उसके अस्त्र-शस्त्रों की शक्ति को क्षीण करती हूँ।

इन्द्र-वज्र से भय ना करना। सुत हो मेरे कभी न डरना।।
बेटा अन्य कोई वर माँगो। जो इच्छा हो तुरतहि माँगो।।

(2) हे पुत्र! तुम इन्द्र के वज्र का भय न करना। तुम मेरे पुत्र हो इसलिये कभी डरना नहीं। माता बोली- बेटा! अन्य कोई वर माँगो। तुम्हारी जो इच्छा हो उसे अविलम्ब मुझसे प्राप्त कर लो।

स्वयम् आपने मुझे दिया है। बहुतेरा क्या खूब लिया है।।
सदा मेरी पूजा स्वीकारैं। वंश को मेरे निज उर धारैं।।

(3) अग्रसेन जी बोले- हे माता! आपने बिना माँगे पहले ही मुझे बहुत कुछ दे दिया है। और बहुतेरा क्या? आप सदा मेरी पूजा को स्वीकार करें। आप मेरे वंश को सदैव अपने उर में धारण करें- बस यही मेरी आपसे प्रार्थना है।

कह 'तथास्तु' माता गइ ध्यानहिं।अग्र श्रेष्ठ रथ पर जा पधरहिं।।
प्रथम नमन सुरगण को दीन्हा। इन्द्रहि युध आवाहन कीन्हा।।

(4) 'तथास्तु' कहकर माता ध्यानावस्था में चली गयी और अग्रसेन जी भी अपने श्रेष्ठ रथ पर जाकर पधार गये। अग्रसेन जी ने प्रथम नमन सुरगणों को दिया तत्पश्चात् उन्होंने युद्ध हेतु इन्द्रदेव का आह्वान किया।

दो0 : सिंह भाँति गर्जन करैं, देवराज माहेन्द्र।
शर-वर्षा तीक्ष्ण करैं, रथ अग्रहि देवेन्द्र।।(128)

दो0 : देवराज महेन्द्र सिंह की भाँति गर्जना करते हैं फिर देवेन्द्र अग्र के रथ पर तीक्ष्ण वाण-वर्षा करने लगते हैं। (128)

चौ0 : बाण इन्द्र के अग्रहि काटे। अग्र धनुष इन्द्रहु है छाँटे।।
वासव अग्र पीड़ितति कीन्हे। तीक्ष्ण बाण से फिर हँस दीन्हे।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि अग्र - इन्द्र के मध्य हो रहे इस रोमांचकारी युद्ध का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अग्रसेन जी ने इन्द्रदेव के वाणों को काट दिया। इन्द्र ने अग्रसेन जी के धनुष को अपने बाणों से छाँट दिया अर्थात् तिल-तिल कर दिया। वासव ने अपने तीक्ष्ण वाणों से अग्रसेन जी को अत्यन्त पीड़ित कर दिया किन्तु अग्रसेन जी हँस दिये।

पृथ्वी काँपी पर्वत हिल गए। आँधी आयी उल्का दिखए।।
युद्ध भयानक था दोनों का। हार न जीत साम्य दोनों का।।

(2) पृथ्वी काँपने लगी। पर्वत हिलने लगे। आँधी चलने लगी तथा उल्काएँ प्रकट हो आयीं। दोनों के मध्य अब युद्ध भयानक हो चला था।

उनमें से किसी की जीत-हार नहीं हो रही थी। दोनों ही पराक्रम में समान थे।

सब विस्मित अरु भय से आकुल। मंत्र-जाप करते थे मुनि कुल। गुरू वृहस्पति तब पधराये। रथ से दोनों नीचे आये।।

(3) देखने वाले लोग इस युद्ध को देखकर विस्मित हो रहे थे तथा भय से व्याकुल हो रहे थे। उस समय मुनियों के समुदाय मंत्रों का जाप करने लगे। तब गुरु वृहस्पति वहाँ पधारे जिन्हें देखकर इन्द्र -अग्र दोनों अपने-अपने रथों से नीचे उतरकर आ गये।

अस्त्र-शस्त्र भूमी पर फेंके। करैं नमन आगे बढ़ बढ़के।। हाथ दोउनहि निज कर लेकर। पूँछा दारुण कर्म ये क्यूँ कर?।।

(4) इन्द्र और अग्रसेन जी ने अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रों को भूमि पर फेंका और आगें बढ़कर वे देवगुरु वृहस्पति को नमन करने लगे। गुरुदेव ने उन दोनों का हाथ अपने हाथ में लेकर बड़े प्रेम से उनसे पूँछा ? तुम दोनों यह दारुण कर्म क्यों कर रहे हो ?

दो0 : युद्ध है कारण नाश का, क्या तुम नहिं जानो ?
इससे बचते श्रेष्ठ जन, बात मेरी मानो।।क।।

दो0 : (क) अरे, युद्ध नाश का कारण होता है। क्या तुम यह बता नहीं जानते ? श्रेष्ठ जन इससे सदा बचते आये हैं। अत: तुम मेरी बात मानकर युद्ध बन्द कर दो।

कलह निवारण के लिये, सन्धी सही उपाय।
सबै सुहावत भाव शम , विग्रह नहीं सुहाय।।ख।।

(ख) कलह दूर करने का सही उपाय है - सन्धि। 'शम' भाव ही सबको अच्छा लगता है ना कि विग्रह।

कार्य करो परहित सदा, करते देव पुरुष।
यश अभीष्ट फल पावते, करते जो हो खुश।।ग।। (129)

(ग) सदैव परहित के कार्य करो। देव तथा श्रेष्ठ पुरुष ऐसा ही करते हैं। जो लोग प्रसन्नतापूर्वक इन परहितकारी कार्यों को करते है वे सदा यशरूपी अभीष्ट फल को प्राप्त करते हैं। (129)

चौ0: इन्द्र कहा सुनिये सुरकुल गुरु। अग्र-परीक्षा हेतु किया गुरु।।
पारीछा में सफल हुये हैं। नृप अब मेरे मित्र हुये हैं।।
चौ0 : (1) तब इन्द्रदेव बोले - हे सुरकुल गुरुदेव! सुनिये। ये जो कुछ मैंने किया है वह अग्रसेन जी की परीक्षा लेने के उद्देश्य से किया है। अग्रसेन जी परीक्षा में सफल होकर अब मेरे मित्र बन गये हैं।

अग्र प्रणाम कीन्ह तब इन्द्रहि। हाथ जोड़ बोले देवेन्द्रहि।।
धन्य हो गया जीवन मेरा। अग्रवंश अब से तव चेरा।।
(2) अग्रसेन जी ने इन्ददेव को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार बोले-आज मेरा जीवन धन्य हो गया। अग्रवंश अब से आपका चेरा है प्रभो।

हे गुरुवर तुअ पुनि-पुनि वंदन। शरण आपकी लैं अभिनन्दन।।
स्वीकारैं आतिथ्य हमारा। 'आग्रेगण' तव पद दिल हारा।।
(3) हे गुरुदेव! आपको मेरा बार-बार वन्दन। मैं आपकी भी शरण में हूँ। मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ। आप दोनों हमारा अतिथ्य स्वीकार करें। मेरा यह आग्रेयगणराज्य आपके चरणों में अपना दिल हार बैठा है।

अनावृष्टि अग्नी-वर्षा की। तौऊ तुम नीती पालन की।।
यासों तुमसों अति प्रसन्न हूँ। खुश होकर मैं देता वर हूँ।।
(4) इन्द्रदेव बोले - मित्र अग्रसेन! मैंने तुम्हारे राज्य में अनावृष्टि की, अग्नि-वर्षा की, फिर भी तुमने नीति का पालन नहीं छोड़ा। इसलिये मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ। मैं प्रसन्न होकर तुम्हें ये वर प्रदान करता हूँ -

कृषि गोपालन अरु वाणिज्यम्। अग्रसेन यह तव कर्तव्यम्।।
निर्धनता तव वंश न होगी। तुम पर कृपा सभी की होगी।।
(5) कृषि, गोपालन तथा वाणिज्यादि-व्यावसायिक कर्म ही तुम्हारे एकमात्र कर्तव्य-कर्म हैं। तुम्हारे वंश में कभी भी निर्धनता नहीं आयेगी। तुम पर सभी की कृपा होगी।

बस भैया! तुम धर्म न तजना। माँ के संग पिता को भजना।।
इन्द्र ने अग्रसेन को दीन्हे। वर दे सपने सब सच कीन्हे।।

(6) बस भैया अग्रसेन! तुम अपने धर्म को मत छोड़ना। माता के साथ पिता का भजन करते रहना। देवराज इन्द्र ने अग्रसेन जी को ये वर प्रदान करके अग्रसेन जी के सपनों को सच कर दिया।

मधूशालिनी अपछर दीन्ही। अग्रसेन ने प्रेम से लीन्ही।।
जब तक यह तव वंश रहेगी। 'अग्रवंश पर' सृष्टि केहगी।।

(7) देवेन्द्र ने मधुशालिनी नामक अप्सरा अग्रसेन जी को भेंट की जिसे अग्रसेन जी ने प्रेम से ग्रहण कर लिया। महेन्द्र बोले- जब तक यह तुम्हारे वंश में रहेगी तब तक "अग्रवंश ही इस जगत का सर्वश्रेष्ठ वंश है" - ऐसा सृष्टि कहती रहेगी।

नाम तुम्हारा युग गायेगा। जो चाहेगा सो पायेगा।।
देव नाग नर कृपा करेंगे। सुख से झोली सदा भरेंगे।।

(8) तुम्हारा नाम आने वाला युग गाएगा। तुम्हारा नाम लेने वाला व्यक्ति जिस वस्तु की इच्छा करेगा उस वस्तु को वह अवश्य प्राप्त करेगा। देवता, नाग तथा मनुष्य सब तुम पर कृपा करेंगे। ये सब तुम्हारी झोली सुखों से भरते रहेंगे।

दो0 : चले गए वरदान दे, इन्द्र वृहस्पति दोय।
लगे गरजने मेघ नभ, अमृत-वर्षा होय।।क।।

दो0 : (क) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि देवराज इन्द्र तथा सुरगुरु वृहस्पति वरदान देकर चले गये। आकाश में मेघ गरजने लगे जिससे अमृत-वर्षा होने लगी।

विधि सँग होवै मंत्र जप, औषधि सुविचारे।
दैवहु अपने होवते, यत्नऽनुकूल करे।।ख।।

(ख) विधिसहित यदि मंत्रों का जाप किया जाये या फिर सुविचार पूर्वक औषधि सेवन किया जाये तो दैव (दुर्भाग्य भी) अनुकूल हो जाते हैं। बस, अनुकूल यत्न करते रहना चाहिये।

बाणिक बड़ा चालाक है, समझो इसका खेल।
प्रथम नाग अब देव ऋषि, सँग कीन्हे कर मेल।।ग।

(ग) कवि हँसकर कहता है कि वणिक बड़ा चालाक है। इसके खेल को समझो। इसने पहले नागवंश और अब देववंश तथा ऋषिवंश को अपने साथ मिला ही लिया।

यदि चाहो सम्पूर्ण सुख, आदर सर्वत्रहिं।
"विष्णुदास" दो अल्प अरु, पावो सर्वस्वहिं।।घ।।

(घ) यदि आप सम्पूर्ण सुखों की चाहना और सर्वत्र आदर की अभिलाषा रखते हैं तो विष्णुदास का कथन है कि थोड़ा दो और बदले में सर्वस्व प्राप्त कर लो।

सन्धी सबसे कीजिये, दुष्टों को तजिये।
"विष्णुदास" प्रभु-भक्त को,प्रेम सहित भजिये।।ड.।।(130)

(ङ) विष्णुदास कहते हैं कि आप सभी से मित्रता कीजिये किन्तु दुष्टों का त्याग कीजिये तथा भगवान के भक्तों का सदा प्रेम सहित भजन करते रहिये। (130)

अध्याय उन्नीस 'इन्द्र से युद्ध एवं संधि' पूर्ण हुआ।

:::::

(दोहे के अन्त में गाइये)

अग्रवर अग्रसेन पद गहि शरणम्
लक्ष्मी हरि ओम जय विश्वेश्वर
जय करुणेश्वर जय समतेश्वर

अध्याय बीस (जन्म एवं विवाह)

दो0 : अग्र माधवी द्वयन का, जीवन था सुखमय।
अति प्रसन्न अरु हर्षयुत, मन हू आनँदमय।।

दो0 : श्री अग्रसेन एवं देवी माधवी दोनों का जीवन सुख से युक्त था। दोनों अति प्रसन्न एवं हर्ष से सम्पन्न थे। दोनों के मन में नित्य आनन्द का भाव विद्यमान था।

चौ0 : जस सीता सँग रामचन्द्र थे। शचि के सँग सुरपती इन्द्र थे।
अग्र संग माधवी हु वैसे। करैं रमण नित प्रेम भाव से।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते है कि जिस प्रकार सीताजी के साथ श्री रामचन्द्र तथा देवी शचि के साथ सुरपति इन्द्र शोभायमान होते हैं, वैसे ही अग्रसेन जी एवं माधवी प्रेम-भाव से रमण करते हुये नित्य शोभा को प्राप्त होते हैं।

एकहि पत्नी अग्रसेन की। दूसर कोई नहीं अग्र की।।
पतिव्रता अरु रूपवती हैं। शीलवान परमम् कुलीन हैं।।

(2) अग्रसेन जी की एक ही पत्नी थी। उनकी कोई अन्य पत्नी नहीं थी। पत्नी माधवी पतिव्रता, रूपवती, शीलवान तथा परमकुलीन हैं।

निज सेवा गुण विनम्रता से। संयम पालन कर्म करन से।।
तुष्ट सभी परि-पुरजन कीये। देव पितृ ऋषि पति धर हीये।।

(3) आग्रेय पत्नी देवी माधवी ने अपने सेवा के गुण से, अपनी विनम्रता से तथा संयम का पालन करते हुये करने योग्य उचित कर्मों से समस्त परिजनों एवं परजनों को संतुष्ट किया। ये कार्य माधवी जी ने देव, पितृ, ऋषि तथा अपने प्रिय पति को हृदय में धारण करके पूर्ण निष्ठा के साथ किये।

मृदु भाषण अरु कर्म कुशल से। शांती अरु इकांत सेवा से।।
सदा प्रसन्न पती को रखतीं। तन मन स्फूर्तीमय करतीं।।

(4) देवी माधवी अपने मृदु वचनों से, अपने कर्मों की कुशलता से, अपने शांत स्वभाव से तथा एक आदर्श पत्नी द्वारा पति की एंकात में की जाने

वाले सेवा से सदा अपने पति को प्रसन्न करते हुए उनके तन-मन को स्फूर्तियुक्त रखती थीं।

दो0 : सेवा करतीं सास की, पूर्ण भाव के संग।
"विष्णू" नित तत्पर रहैं, रहन सास जस गंग।।क।

दो0 : (क) एक आदर्श बहू के रूप में देवी माधवी पूर्ण भाव से अपनी सास की सेवा करती थीं। विष्णुदास जी कहते हैं कि जिस प्रकार गंगा मैया शिवजी की सेवा को सदैव तत्पर रहती हैं वैसे ही माधवी जी अपनी सास की सेवा को सदैव तत्पर रहती थीं।

देवर को भी देखतीं, बड़े प्रेम के साथ।
ससुर ननद होते यदी, सदा नवाती माथ।।ख।। (131)

(ख) देवी माधवी प्रेमभाव से युक्त होकर अपने एकमात्र देवर शौर्यसेन की भी आवश्यकताओं का ध्यान रखती थी। यदि उनके ससुर-ननद होते तो वह उन्हें भी मस्तक नवाकर सम्मान प्रदान करतीं। (131)

चौ0 :आगें जाकर वंश बढ़ाया। पुत्र अठारह सुन्दर जाया।।
उनके नाम याद कर लो सब। अग्रवंश इनसे ही है अब।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि अग्र-माधवी की वंशवृद्धि का वर्णन सुनाते हुए कहते हैं कि आगें जाकर दोनों ने अपना वंश बढ़ाया। दोनों ने अठारह पुत्रों को जन्म दिया। आप उनके नामों को याद कर लीजिये क्योंकि आज जो अग्रवंश का विकास आप देख रहे हैं वह इन्हीं पुत्रों से माना गया है।

विभु विक्रम अजेय विजय हैं। अनन्तऽरु नीरज संग अमर हैं।।
नगेन्द्र सुरेशऽरु श्रीमंत हैं। सोम धरणिधर अतुल अशुक हैं।।
संग सुदर्शन सिद्धार्थहु हैं। फेर गणेश्वर लोकपती हैं।।
एक वर्ष में सुत इक जाया। जाति-कर्म विधि सँग करवाया।।

(2-3) अठारह पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं - (1) विभु, (2) विक्रम, (3) अजय, (4) विजय, (5) अनन्त, (6) नीरज, (7) अमर, (8) नगेन्द्र, (9) सुरेश, (10) श्रीमंत, (11) सोम, (12) धरणीधर,

(13) अतुल, (14) अशोक, (15) सुदर्शन, (16) सिद्धार्थ, (17) गणेश्वर तथा (18) लोकपती। ये सभी पुत्र एक-एक वर्ष के अन्तराल में उत्पन्न किये गये। उनके जाति-कर्म विधिसहित सम्पन्न कराये गये।

मनहिं माधवी इच्छा जागी। बिन पुत्री मैं रहूँ अभागी।।
ईश्वर ने पुत्री इक दीन्ही। नाम ईश्वरी ख्याती कीन्ही।।

(4) एक दिन देवी माधवी के मन में पुत्री की इच्छा जागृत हुयी। उन्हें लगा कि बिना पुत्री के उनका मातृत्व अधूरा है। तब ईश्वर ने उन्हें एक पुत्री दी जिसने 'ईश्वरी' नाम से जगत में ख्याति प्राप्त की।

दो0 : पुत्ररु पुत्री थे सभी, सर्वगुणन संयुक्त।
पढ़े लिखे यशवान हू, शीलाचारौ युक्त।।क।।

दो0 : (क) अग्रसेन जी के सभी पुत्र-पुत्री सर्वगुणों से संयुक्त थे। वे सभी पढ़े-लिखे, यश से परिपक्व तथा शील और सदाचार से युक्त थे।

पुण्यकर्म से युक्त सब, महाभाग्यशाली।
महाबली अति किन्तु थे, अवगुण से खाली।।ख।। (132)

(ख) वे सब पुत्र-पुत्री पुण्यकर्मों से युक्त थे। वे सब महाभाग्यशाली और महाबली थे। वे अवगुणों से पूरी तरह से मुक्त थे। (132)

चौ0 : अग्रसेन के इक लघु भ्राता। शौर्यसेन जिहि नाम सुहाता।।
पत्नी अनँतनाग-पुत्री थी। नाम 'दक्षिणी' से जनमी थी।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि अग्रसेन जी के एक लघु भ्राता भी थे जिनका नाम शौर्यसेन सभी को सुहाता था। शौर्यसेन (शूरसेन) की पत्नी अनंतनाग की पुत्री थी जिन्होंने दक्षिणी नाम से जन्म लिया था।

पाँच पुत्र इनके भी हूये। वीर महारथि सब जो हूये।।
उरुचरितम् में दो पत्नी हैं। नाम सुमात्रा अरु माद्री हैं।।

(2) इनके पाँच पुत्र हुए जो सबके सब वीर और महारथी कहलाये। अग्रवालों के एक अन्य ग्रंथ उरुचरितम् में शौर्यसेन की दो पत्नियाँ सुमात्रा और माद्री बतलायी गयी हैं।

लक्ष्मि-कथा में सुत द्वय जाये। उरुचरितम् ने दस सुत गाये।।
ब्रह्मचर्य का पालन करते। वेदध्ययन से झोली भरते।।

(3) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा रचित 'श्री महालक्ष्मी व्रत कथा' में शौर्यसेन जी के केवल दो ही पुत्रों का उल्लेख है जबकि 'उरुचरितम्' के अनुसार उनके दस पुत्रों की गाथा है। ये सभी पुत्र ब्रह्मचर्य व्रत का कठोरता से पालन करते हुए वेदों के अध्ययन से अपनी झोलियाँ भरते थे।

अस्त्र-शस्त्र सीखे श्रीपित से।लोकशास्त्र भी सबने पित से।।
उम्र सभी की बढ़ने लागी। ब्याह की चिंता मन अनुरागी।।
तब पति ने पूछा पत्नी से। निज विचार बतलाओ रुचि से।।

(4) इन्होंने अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा तथा लोकशास्त्र की सीख निपुण पिताश्री से ग्रहण की थी। धीरे-धीरे सभी पुत्र-पुत्री आयुष्य वृद्धि को प्राप्त होने लगे। इसलिये विवाह की मृदु चिंता से इनके माता-पिता के मन में अनुराग उत्पन्न हो उठा। तब, एक दिन पत्नी माधवी ने अपने पति से पूछा कि इस संबंध में आप रुचिपूर्वक अपने विचार बतलाने की कृपा करें।

दो0 : वर्ण श्रेष्ठ यदि है अती, संतति श्रेष्ठ न भव।
निज आचार विचार से, व्यक्ती श्रेष्ठ कहव।।क।।

दो0 : (क) शास्त्र कहते हैं कि - श्रेष्ठ वर्ण से ही सन्तति श्रेष्ठ हो, ऐसा भी नहीं है। अपने आचार-विचार से व्यक्ति को श्रेष्ठ कहा (समझा) जाता है।

फिर भी वंश कुलीन हो, यह देखो पहले।
पत्नि कुलीन तो संततिहु, ब्रह्म कहा पहले।।ख।।

(ख) फिर भी कन्या-पक्ष का वंश कुलीन हो, विवाह से पूर्व सबसे पहले हमें यही देखना चाहिये क्योंकि ब्रह्मदेव ने पूर्व में ही मनस्मृति में इसका रहस्योद्घाटन कर दिया है कि पत्नी की कुलीनता भी संतति की कुलीनता का पारितोषिक है।

निश्चित धर्म नियम यही, कुल व वंश-वृद्धिहि।
जो इनका पालन करे, पितर सदा मुदितहि।।ग।।

(ग) कुल एवं वंश-वृद्धि का यही निश्चित धर्म व नियम है। जो प्राणी इन नियमों एवं नियत धर्मों का अक्षरश: पालन करता है उसके पितृगण सदा उस पर मुदिता का भाव बनाये रखते हैं।

श्रेष्ठ वंश भू-मण्डले, नागवंश जिहि नाम।
कन्याँ इनकी लीजिये, वंशवृद्धि सुखधाम।।घ।।

(घ) देवी माधवी बोली- हे पतिदेव! भू-मण्डल में नागवंश नाम का वंश ही श्रेष्ठ वंश है। यदि हम इनकी कन्यायें ले लें तो हमारे यहाँ निश्चित ही सुखों की धाम रूपी वंशवृद्धि होगी।

धन को देखो बाद में, धन आता-जाता।
'विष्णुदास' पुरुषार्थ जिहि, सब सुख नित पाता।।ड.।। (133)

(ङ) विष्णुदास कहते हैं कि विवाह के अवसर पर धन को बाद में महत्व दो क्योंकि धन तो आता - जाता रहता है। व्यक्ति अपने पुरुषार्थ रूपी धन से ही सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त करता है। (133)

चौ0 : कन्या ईश्वरि वरण करायी। काशी सुत महेश सुखदायी।।
मोक्ष-धर्म स्थापित हूये। ब्रह्मस्वरूप महामुनि रूप्ये।।

चौ0 : (1) अग्र-संतति का विवाह-प्रसंग श्रवण कराते हुए जैमिनी ऋषि कहते हैं कि सर्वप्रथम सर्वलघु कन्या ईश्वरी का विवाह काशी नरेश के पुत्र महेश से किया गया जो कालान्तर में महामुनि रूप धारण करके ब्रह्म में स्थित होकर मोक्ष-धाम को प्राप्त हो गये।

नागों में इक वर्ण विशेषहिं। नाग वासुकी जग विख्यातहिं।।
महाशक्तिशाली विज्ञानी। बिटियाँ जिनकीं ज्ञानी मानी।।

(2) नागों में एक विशेष वर्ण था जिसके अधिपति का नाम वासुकी था जो जगविख्यात थे। वासुकी नाग महाशक्तिशाली एवं महान तत्त्व के ज्ञाता थे। इनकी पुत्रियाँ भी ज्ञानवान एवं मानी थीं।

अग्रसेन-पुत्रन सँग ब्याही। वंश नाग नर मुदि फिर छाही।।
उनके नाम सुनो जनमेजय। जिनसे जग में होती नित जय।।
(3)वासुकी की अठारह पुत्रियाँ अग्रसेन जी के अठारह पुत्रों के संग ब्याही गयीं जिससे नागवंश तथा वैष्णव वंश में पुनः प्रसन्नता छा गयी। हे जनमेजय! इन जोड़ों के नाम सुनो। इनसे जगत में सदा जै-जैकार होती है

विभु चित्रा अरु शुभा विक्रमहि। अजेय शीला कांती विजयहि।।
स्वाति अनल रेणुका नीरजहि। क्षमा अमर सँग शिरा नगेन्द्रहि।।
सखी सुरेश श्रिमाला मन्तहि।प्रिया धरणिधर शांती सोमहि।।
अतुल सुकन् सावित्रि अशोकहि। हेम सुदर्शन ग्रह सिद्धार्थहि।।
संग गणेश्वर नऽगमणि कीन्ही। प्रभावती लुकपति को दीन्ही।।
(4-5) (1) विभु संग चित्रा, (2) विक्रम संग शोभा, (3) अजय संग शीला, (4) विजय संग कांति, (5) अनन्त संग स्वाति, (6) नीरज संग रेणुका, (7) अमर संग क्षमा, (8) नगेन्द्र संग शिरा, (9) सुरेश संग सखी, (10) श्रीमंत संग श्रीमाला, (11) सोम संग शांति, (12) धरणीधर संग प्रिया, (13) अतुल संग सुकन्या, (14) अशोक संग सावित्री, (15) सुदर्शन संग हेमा, (16) सिद्धार्थ संग तारा, (17) गणेश्वर संग नागमणी तथा (18) लोकपति के संग प्रभावती।

दो0 : विधि सँग पूरण हो गये, सबके शुभ्र विवाह।
जोड़ीं अद्भुत दीखतीं, मुख से निकलत वाह।। (134)
दो0 : इस प्रकार विधि विधानसहित इन सबका शुभ विवाह सम्पन्न हो गया। ये जोड़ियाँ इनती अद्भुत दीखतीं थी कि मुख से बरबस 'वाह' निकल पड़ता था। (134)

चौ0 : अग्रसेन से वासुकि कहवैं। पूर्ण मनोरथ सबके होवैं।।
कन्यन सँग धन-सम्पति दीन्ही।सँग में नगरी विदिशा चीन्ही।।
चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि श्री अग्रसेन जी से कन्याओं के पिता वासुकी नाग कहते हैं कि हे महाराज! एक न एक दिन सबके

मनोरथ पूर्ण होते हैं। पुत्रियों के पिता ने विवाह में कन्याओं के साथ अगाध धन-सम्पत्ति वर-पक्ष के पिता को भेंट दी। लेकिन जब दिल नहीं भरा तो वासुकि नाग ने स्थायी प्रेम-चिह्न के रूप में अपनी प्रिय 'विदिशा' नगरी अग्रसेन जी को अर्पित कर दी।

अग्र कहैं समधी वासुकि सैं। भावना थारी अति उत्तम सैं।।
लेना ही जिसका जीवन है। ब्राह्मण ऐसा कतइ नहीं मैं।।

(2) वर-पक्ष के पिता श्री अग्रसेन जी कहते हैं कि समधी जी! आपकी भावना अति उत्तम है। लेकिन मैं ऐसा ब्राह्मण कतई नहीं हूँ जिसका केवल लेने का ही नियम हो।

मैं राजा हूँ धर्म है पोषण। मेरा धर्म नहीं है शोषण।।
कन्या-धन दीरघ है सबसे। मैं कहता हूँ ऐसा दिल से।।

(3) मैं राजा हूँ। राजा का धर्म है पोषण। मेरा धर्म शोषण नहीं है। कन्या-धन सभी धनों में दीर्घ है। मैं दिल से यह बात आपसे कहता हूँ।

खुशी वासुकी भइ मन भारी। बोले पुनि-पुनि मैं बलिहारी।।
कर्म से प्रभुवर! पद वो पाया। जो अविचल शाश्वतहु कहाया।।
हे राजन! पद पुण्यमयहु है। उत्तम ध्रुव अविनाशी हू है।।

(4) यह सुनकर कन्या-पिता वासुकी के मन में बड़ी भारी प्रसन्नता हुयी। वासुकि बोले- हे समधीश्वर! मैं बार-बार आप पर बलिहारी जाता हूँ। हे प्रभो! आपने अपने नीतियुक्त तथा निस्वार्थ आचार-विचार से उस पद को प्राप्त कर लिया है जिसे अविचल व शाश्वत कहा गया है। हे राजन्! यह पुण्य पद, उत्तम, ध्रुव एवं अविनाशी है - ऐसा समझा जाता है।

दो0 : धर्म कमाया आपने, लोकधर्म निर्वाह।
कीरत फैली लोक त्रय, जन तुम्हरे गुण ग्राह।।क।।

दो0 : वासुकि नाग समधी अग्रसेन जी से कहते हैं कि हे राजन्! लोकधर्म का निर्वाह करते हुए आपने जो महान धर्म अर्जित किया है उसकी ख्याति

तीनों लोकों में व्याप्त हो चुकी है। आज हर व्यक्ति आपके गुणों को ग्रहण करने को उतावला हुआ जा रहा है।

जन हितकारी कर्म तव, होवेंगे आदर्श।
मार्गदर्शिका नित्य ही, कहूँ तात! सँग हर्ष।।ख।।

(ख) हे राजन्! आपके द्वारा किये जा रहे समस्त जनहितकारी कार्य आदर्श बनकर नित्य मार्गदर्शिका का रूप धारण करेंगे। हे तात! यह बात निस्वार्थ भाव से हर्ष सहित आपके समक्ष प्रकट कर रहा हूँ।

दिव्य चरित यह अग्र का, पढ़े सुने जोई।
"विष्णुदास" वह नित्य ही, परम सुभग होई।।ग।।

(ग) विष्णुदास जी कहते हैं कि अग्रसेन जी का यह दिव्य चरित्र जो कोई पढ़ता अथवा सुनता है वह परम सौभाग्यशाली होता है।

धर्म अर्थ कामोक्ष नित, उसके सँग रहते।
"विष्णुदास" बड़ भागिहू, सब उसको कहते।।घ।। (135)

(घ) इतना ही नहीं धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षरूपी चारों पुरुषार्थ सदा उसके साथ रहते हैं। विष्णुदास कहते हैं कि ऐसा पुरुष बड़भागी कहलाता है। (135)

अध्याय बीस 'जन्म एवं विवाह' पूर्ण हुआ।

:::::

(दोहे के अन्त में गाइये)

अग्रवर अग्रसेन पद गहि शरणम्
लक्ष्मी हरि ओम जय विश्वेश्वर
जय करुणेश्वर जय समतेश्वर

卐 अध्याय इक्कीस (पशु-बलि) 卐

चौ0 : शंका एक हृदय मम भारी। क्षत्रि वैश्य किहि ? कहो सुरारी।।
क्षत्रि वंश का पतन हुआ क्या? अथवा अन कोई कारण क्या?।।

चौ0 : (1) नृप जनमेजय जैमिनी ऋषि से प्रश्न करते हैं - हे गुरुवर! मेरे मन में एक बड़ी भारी शंका है। एक क्षत्रिय वैश्य कैसे हो गया ? हे सुरारी! कृपया बताइये। क्या क्षत्रिय वंश का पतन हुआ था अथवा कोई अन्य कारण था ?

हे प्रभु! सारी कथा सुनाओ। भलीभाँति मुझको समझाओ।।
प्रश्न तुम्हारा अति उत्तम है। अग्र-कथा नृप! सर्वोत्तम है।।

(2) हे प्रभु! यह कथा आप मुझे भलीभाँति समझाकर कहिये। जैमिनी ऋषि उत्तर देते हुए कहते हैं - हे जनमेजय! तुम्हारा प्रश्न अति उत्तम है। हे राजन्! श्री अग्रसेन जी की यह सर्वोत्तम कथा है।

किया अग्र ने दिव्य कर्म इक।जिसको गाते सुर-मुनि हर इक।।
वंश-वृद्धि जब हो गइ भारी। पुत्र-पौत्र लगई मन प्यारी।।

(3) अग्रसेन जी ने एक दिव्य कर्म किया था जिसकी गाथा सुर-मुनि ही नहीं हर कोई गाता है। अग्रवंश में जब भारी वंश-वृद्धि हो गयी और सभी पुत्र-पौत्रादिक मन को प्यारे लग रहे थे।

अग्रसेन इक दिन रह सोचत। वंश को कैसे करूँ व्यवस्थित?।।
कीर्ति वंश की तभी बढ़ेगी। जबकि व्यवस्था समुचित होगी।।

(4) तब एक दिन श्री अग्रसेन सोचने लगे कि मैं अपने इस वंश को किस प्रकार व्यवस्थित करूँ ? मेरे वंश की कीर्ति तभी बढ़ेगी जब इसकी समुचित व्यवस्था होगी।

दो0 : गर्ग कहैं यों अग्र से, पुत्र पौत्र तुम सम।
सौ से ऊपर हैं सभी, तेजस्विहु तुम सम।।क।।

दो0 : (क) गर्गाचार्यजी अग्र से कहने लगे कि हे अग्रसेन! तुम्हारे सभी पुत्र-पौत्रादिक तुम्हारे समान हैं। इनकी संख्या सौ से ऊपर है। ये सभी तुम्हारे ही समान तेजस्वी हैं।

महाराज इक्ष्वाकु रघु, वंश-विकास किया।
तुम भी ऐसा ही करो, मम मत धरहु हिया।।ख।।

(ख) हे राजन्! महाराजा इक्ष्वाकु तथा महाराज रघु ने अपने-अपने वंश का विकास किया था। तुम्हें भी ऐसा ही करना चाहिये। मेरी यह बात तुम हृदय में धारण कर लो।

सब पुत्रों को दीजिये, गोत्र एक एकहि।
सद्गुण से भर जायेंगे, होय वंश वृद्धिहि।।ग।। (136)

(ग) हे राजन्! आप अपने सभी पुत्रों को एक-एक गोत्र (दे दीजिये) में दीक्षित कर दीजिये। ऐसा करने से ये सभी गोत्र से उत्पन्न होने वाले सद्गुणों से युक्त हो जायेंगे और तब तुम्हारे वंश में सुव्यवस्थित वृद्धि होने लगेगी। (136)

चौ0 : यज्ञ वंशकर कीजे राजन। अति हितकारी इच्छा-साधन।।
अग्रसेन बोले गुरु गर्गहि। जो इच्छा करिये प्रभु वैसहि।।

चौ0 : (1) राजगुरु गर्ग ने कहा - हे राजन्! आप अति हितकारी तथा सकल इच्छाओं को साधने वाला वंशकर यज्ञ करिये। श्री अग्रसेन बोले- हे गुरुदेव! आपकी जैसी इच्छा हो, आप वैसा कीजिये प्रभु।

शिल्पी मंत्री भ्रात बुलाए। विभु सँग अग्रसेन ढिंग आए।।
यज्ञ-व्यवस्था पूरी करिये। नेक कार्य से वंश सँवरिये।।

(2) तब देश-विदेश से निपुण शिल्पी तथा राज्य के मंत्रियों को राजभवन में बुलवाया गया। ये सब विभुसेन के संग अग्रसेन जी के सम्मुख उपस्थित हुये। श्री अग्रसेन जी बोले - आप यज्ञ की पूर्ण व्यवस्था करें क्योंकि नेक कार्य से ही वंश सँवरता है।

पूर्ण व्यवस्था शीघ्र हुई जब। शुरू करो यों बोले नृप तब।।
चैत्रमास की पूनम तिथि थी। अग्र यज्ञ-दीक्षा जब ली थी।।

(3) जब यज्ञ से सम्बन्धित व्यवस्था पूरी हो गयी तब राजा ने अनुमति प्रदान करते हुए कहा कि यज्ञ प्रारम्भ किया जाये। यह चैत्रमास की पूर्णिमा तिथि थी जिस समय अग्रसेन जी ने यज्ञ की दीक्षा ग्रहण की थी।

मख-मण्डप-स्थापन कीया। विधि सँग पूजन प्रारँभ कीया।।
शुभजन हितजन सभी वहाँ थे।रुचिकर भोजन अगरु वहाँ थे।।
भेंट अमूल्य देत अरु लेवत। दृश्य सुहावन जन मन सेवत।।

(4) सबसे पहले यज्ञ-मण्डप की स्थापना की गयी तदोपरान्त उसका विधिसहित पूजन प्रारम्भ किया गया। राजा का शुभ तथा हित चाहने वाले सभी लोग वहाँ उपस्थित थे जिनके लिये रुचियुक्त भोजन की समुचित व्यवस्था की गयी थी। सुगन्धित अगर (धूप सहित) भी वहाँ प्रचुरमात्रा में मँगवाया गया था। श्रेष्ठ जन अमूल्य भेंट का आदान-प्रदान कर रहे थे। यह सुहावना दृश्य लोगों के मन को बहुत भा रहा था।

दो0 : उचितासन सबहिंन दिये, शौर्यसेन सादर।
अति धीमानहु प्रणमते, अग्र निकट जाकर।।क।।

दो0 : (क) अनुज शौर्यसेन ने आदर सहित सभी को उचित आसन दिये। अग्रसेन जी भी अति विद्वानों के निकट जाकर उन्हें प्रणाम करते हैं।

हल से जोता क्षेत्र को, शुभ मुहर्त अनुसार।
चार सौ इष्टिक शुभ चुनी, करके मंत्रुच्चार।।ख।।

(ख) शुभ मुहूर्त के अनुसार उस पुण्य क्षेत्र को हल से जोता गया फिर मंत्रोच्चारण करके चार सौ शुभ इष्टिकों का चयन किया गया।

इक सौ चालिस ईंट से, दाँया पक्ष बना।
"विष्णुदास" उतने हि से, बाँया पक्ष तना।।ग।।

(ग) एक सौ चालीस ईंटों से उस बेदी का दायाँ पक्ष बना। विष्णुदास कहते हैं कि उतनी ही ईंटों से उसका बाँया पक्ष तना।

मध में रखकर रखकर ईंट सौ, पुच्छ भाग बनई।
इक्किस ईंटों से किया, मुख निर्माण शुभई।।घ।।

(घ) मध्य में सौ ईंटें रखकर पुच्छ भाग बना तथा इक्कीस ईंटों से कल्याणकारी मुख का निर्माण किया गया।

दुगुनीं ईंटों से बनी, श्येना चिति दूसर।
उसके दुगुने से सजी, "विष्णुदास" तीसर।।ड.।

(ङ) पहले से दुगुनी ईंटों से दूसरी श्येना चिति बनायी गयी। विष्णुदास कहते हैं कि फिर उसकी दुगुनी ईंटों से तीसरी श्येना चिति को सजाया गया।

ऐसेहि चौथी-पाँचवी, बन गइँ क्रम-अनुसार।
सुपर्ण अष्टदस भाँति इहि,बन गए शास्त्रनुसार।।च

(च) इसी क्रम से चौथी-पाँचवी श्येना चिति निर्मित हुयी। शास्त्र विधि के अनुसार अठारह यज्ञ वेदियों का निर्माण सम्पन्न किया गया।

शेष रहे संजात जो, घेरे ईंटों से।
"विष्णुदास" यों लागते, यज्ञ लुभावन से।।छ।

(छ) शेष बच रहे संजातों को ईंटों से घेर दिया गया। विष्णुदास कहते हैं कि इस प्रकार सभी बेदियाँ लुभावनी प्रतीत हो रही थीं।

फिर मण्डप रमणीय इक, विदुजन बनवाया।
सुन्दर शुभम ध्वजाओं से, जिसको सजवाया।।ज।

(ज) तदोपरान्त, विद्वतजनों ने एक रमणीय यज्ञ-मण्डप बनवाया जिसे सुन्दर एवं शुभ ध्वजाओं से भलीभाँति सजवाया गया।

जिसमें द्वार अठारह, जो थे एक समान।
कुण्ड अठारह तहँ बने, सुन्दर शास्त्र गुमान।।झ।।

(झ) इस यज्ञ मण्डप में एक समान वाले अठारह द्वार थे जिसके अन्दर अठारह कुण्डों को निर्माण कराया गया जिनके सौन्दर्य को देखकर शास्त्रों का गुमान होने लगता था।

चार खैर छ पलाश के, पंच बेल त्रय श्लेष्म।
यूप गये बनवाए जो, लकड़-छाल मय नेम।।ञ।।

(ञ) वहाँ चार खैर के, छः पलाश के, पाँच बेल के तथा तीन श्लेष्म के यूप बनवाये गये जो लकड़ी के छाल से नियमबद्ध संयुक्त थे।

फिर निर्माण कराइँ हैं, वेदी त्रय सुन्दर।
स्रुवा सैंकड़ों जुहु रखे, सबके सब हितकर।ट।। (137)

(ट) उसके अनन्तर तीन सुन्दर बेदियों का निर्माण कराया गया। वहाँ सैकड़ों की संख्या में जुहु और स्रुवा भी रखवाये गये जो सबका हित करने वाले सिद्ध होते थे। (137)

चौ0 : 'यज्ञ वंशकर' नाम धराये। यज्ञाचार्य गर्ग पधराये।।
ब्रह्मा पद पर वेदव्यास थे। तेजस्वी ऋषि कइ ऋत्विज थे।।

चौ0 : जैमिनी ऋषि कहते हैं कि इस यज्ञ का नाम वंशकर यज्ञ रखा गया। कुछ देर बाद उस यज्ञ के आचार्य गर्ग ऋषि वहाँ पधारे। वहाँ ब्रह्मा-पद पर महर्षि वेदव्यास जी आसीन थे। उस यज्ञ में कई तेजस्वी ऋषि और ऋत्विज भी थे जिनके नाम इस प्रकार हैं -

चौ0 : ऋषि वशिष्ठ कश्यप गौतमहहु। गोभिल जैमिनि सँग वात्सिल्यहु।।
नागल भारवि ऋषि शांडिल्यहु। मैत्रे ताण्ड्य ऋषी मुद्गलहहु।।
कौशिक तैत्तिरेय ऋषि धौम्यहु। महाऋषी माण्डण्य और्वहु।।
कीन्हा ऋृत्विज क्रमशः इनको। कार्य महत्तम सौंपा जिनको।।

(2-3) वशिष्ठ, कश्यप, गौतम, गोभिल, जैमिनी, वात्सिल्य, नांगल, भारवी, शाण्डिल्य, मैत्रेय, ताण्ड्य, मुद्गल, कौशिक, तैत्तिरेय, धौम्य, महर्षि माण्डव्य तथा और्व ऋषियों को ऋत्विक पद पर क्रमशः प्रतिष्ठित करके उन्हें यज्ञ सम्पन्न कराने का महान कार्य सौंपा गया।

फिर उत्तम रक्षोघ्न मंत्र से। रक्षा के विधान को करके।।
द्वारपाल उत्तम वरणे फिर। यज्ञ मनोरथ में नृप स्थिर।।

(4) फिर उत्तम रक्षोघ्न मंत्र द्वारा रक्षा के विधान से आरक्षित करके उस मनोरथ पूर्ण करने वाले वंशकर यज्ञ में राजा अग्रसेन ने उत्तम द्वारपालों का वरण किया।

दो0 : दीक्षित राजा रानि ने, की पूजा-अर्चन।
गर्ग ब्रह्म मुनि श्रेष्ठि संग, क्रमशः ऋत्विकजन।। (138)

दो0 : यज्ञ की दीक्षा से दीक्षित राजा-रानी ने पूजा-अर्चना का कार्य पूर्ण किया। क्रमशः यज्ञाचार्य गर्ग, ब्रह्मा बने वेदव्यास जी, समस्त मुनिगण

तथा श्रेष्ठियों सहित अन्य ऋत्विकों ने पूजा का वह सारा कार्य सम्पन्न किया। (138)

चौ0 : द्वय कूँ गर्ग दिया आदेसा। यज्ञ-अग्नि हित गए सुदेसा।।
अंग-वस्त्र आंचल के सँग था। पृष्ठ माधवी नृप अग्रहि था।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि गर्ग मुनि ने राजा-रानी को यज्ञ के लिये अग्नि लाने का आदेश दिया जिसके लिये वे पति-पत्नी उस पवित्र स्थान की ओर चल दिये। राजा का अंग-वस्त्र रानी के आँचल से बँधा हुआ था। आगें अग्रसेन जी तथा पीछे रानी माधवी चल रही थीं।

मंत्र-पाठ मुनिजन हैं करते। गायक मधुरम् राग अलपते।।
नर्तक सुन्दर नृत्य हैं करते। दोनों के आगें डग भरते।।

(2) उस समय मुनियों के समूह पवित्र मंत्रों का पाठ कर रहे थे और गायकों की टोलियाँ मधुर राग में आलाप भर रही थीं। नर्तकों के झुण्ड सुन्दर नृत्य कर रहे थे। ये सारा कार्य राजा - रानी के आगे - आगे चलते हुए किया जा रहा था।

ऊपर-पीछे छत्र चँवर सँग। धूप-सुगंध फैलती नौरँग।।
सभी पुत्र अरु पुत्रवधू सब। राज्य-मान से सम्मानित सब।।

(3) राजा-रानी के शीर्ष के ऊपर छत्र था जबकि पीछे चँवर ढुलाया जा रहा था। नौरंगों से युक्त धूप की सुगंध वातावरण में सुगंध फैला रही थी। इस यात्रा में राजा के सभी पुत्र एवं पुत्रवधुएँ सम्मिलित थीं। राज्य-मान से सम्मानित अन्य सभी श्रेष्ठिगण भी इस पुनीत यात्रा में चल रहे थे।

कीन्ही अभिमंत्रित यज्ञाग्निहि। गर्ग मुनी मूहूर्त उत्तमहि।।
पूजा करके अग्नि-कलश को। तत्क्षण सौंपा राजरानि को।।

(4) तब यज्ञाचार्य बने गर्ग मुनि ने उत्तम मुहूर्त में यज्ञ की अग्नि को अभियंत्रित किया और अग्नि-कलश की पूजा करके उसे राजरानी देवी माधवी को सौंप दिया।

दो0 : मस्तक पर धारण किया, यज्ञ कलश रानिहि।
श्रेष्ठ स्त्रियन धर्म यहि, पात सौख्य 'नन्दहि।।(139)

दो० : राजरानी ने उस दिव्य अग्नि-कलश को तत्क्षण अपने मस्तक पर धारण कर लिया। जैमिनी ऋषि कहते हैं कि श्रेष्ठ स्त्रियों का यही धर्म है। ऐसा करने वाली स्त्री आनन्द और सौख्य की प्राप्त करने वाली समझी जाती है। (139)

चौ० : धर्म अर्थ यश कामऽरु सेवा। कुलवर्धक संतति कुलसेवा।।
स्वर्ग पितर कौं प्राप्त कराना। कर्माधीन नारि यों माना।।

चौ० : (1) नारी के कर्तव्यों का बखान करते हुए जैमिनी ऋषि कहते हैं कि चाहे धर्म, अर्थ, यश, काम तथा सेवा हो, चाहे कुल की वृद्धि या फिर संतति की बात हो, चाहे कुल की सेवा का प्रश्न हो या फिर पितरों को स्वर्ग की प्राप्ति करना हो - ये सभी कार्य सुलक्षणा एवं धर्मपरायणा नारी के द्वारा किये जाने वाले कर्मो के आधीन बताये गये हैं।

यदि पति-पत्नी सँग यों करते। गार्हस्थ कर्म सत्य ही निभते।।
जो नारी पति को अनुसरणै। मन वच कर्म से धर्मनुकरणै।।

(2) पति-पत्नी यदि दोनों एक साथ इन कार्यो को सम्पन्न करते हैं तो उनका गृहस्थ-कर्म निश्चित ही सत्य अर्थात फलीभूत (सिद्ध) होता है। जो स्त्री मन, वचन तथा कर्म से अपने पत्नी-धर्म का अनुकरण करते हुए अपने पति का अनुसरण करती है।

महाभाग्य सौभाग्यशालिनी। सुरपूजित नित वंशवर्धिनी।।
मास विशाखे शुक्ल पक्ष में। गुरूवार अश्लेष नखत में।।

(3) उसे महाभागा और महान सौभाग्यशाली समझा जाता है। ऐसी नारी देवताओं द्वारा पूजी जाती है तथा उसका वंश सदा वृद्धि को प्राप्त होता है। वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में गुरुवार के दिन आश्लेष नक्षत्र में-

यज्ञ-अग्नि प्रज्ज्वलित कराई। हुए प्रवृत्त यज्ञ सुखदाई।।
मंत्रऽरु विधि सँग यज्ञाहुति दी। महायज्ञ प्रारँभ आज्ञा दी।।

(4) इस यज्ञ में पवित्र अग्नि को प्रज्जवलित किया गया और तब सब लोग इस सुखदायी यज्ञ में प्रवृत्त हो गये। मंत्रों का शुद्ध उच्चारण करके

विधि सहित यज्ञ में आहुति देकर यज्ञाचार्य जी ने इस महायज्ञ को प्रारम्भ करने की अनुमति प्रदान की।

दो0 : प्रथम आहुती अग्र ने, यज्ञदेव को दी।
फिर इन्द्रादिक देवतन्ह, दिकपालों को दी।।क।।

दो0 : (क) अग्रसेन जी ने पहली आहुति यज्ञदेव को भेंट की, फिर इन्द्रदेव तथा उसके बाद अन्य देवताओं सहित सभी दिक्पालों को आहुति प्रदान की गयीं।

फिर क्रम से अन् देवतन, हविष प्रदान किया।
नाम-मंत्र उच्चार कर, जग-सन्तोष दिया।।ख।। (140)

(ख) तदनन्तर शेष रह गये अन्य देवताओं का क्रमानुसार मंत्रसहित नाम उच्चारण करके उन्हें हविष्य प्रदान किया गया। ऐसा करके जगत को संतोष दिया गया कि अब तुम्हारे मनोरथ सिद्ध हुए ही समझो। (140)

चौ0 : एक यज्ञ इक दिन में हूआ। सत्रह सत्रह दिन में हूआ।।
बली-कर्म को देख यज्ञ में। व्यथित अग्र आ गए भवन में।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि एक दिन में एक यज्ञ पूर्ण हुआ। इस प्रकार सत्रह दिनों में सतत्रह यज्ञ पूर्ण हो गये। यज्ञ में दिये जाने वाले बलि-कर्म को देखकर अग्रसेन जी व्यथित होकर अपने भवन को लौट आये।

अग्र लगे करने विचार तब।अशुभ अमंगल पशु बलि लगि जब।।
पशुबलि-प्रारँभ कब से हूआ? जानकार कोई ना हूआ।।

(2) जब अग्रसेन जी को लगा कि यह पशु-बलि अशुभ एवं अमंगलकारी है तब वह गम्भीरता से मन में विचार करने लगे कि इस पशुबलि का प्रारम्भ कब हुआ ? अग्रसेन जी ने विद्वानों से इस बाबत पूछा भी किन्तु इसकी सही जानकारी देने वाला वहाँ कोई विद्वान दिखायी नहीं दिया।

जब हम धर्मऽभिलाषा करते। पशु-वध में क्यों प्रीती रखते?।।
यज्ञ नहीं यह धर्मनुकूलहि। हिंसा कर्म अधर्मनुकूलहि।।

(3) श्री अग्रसेन विचार करते हुए स्वयं से प्रश्न करते हैं कि जब हम धर्म की अभिलाषा करते हुए इन यज्ञों को करते हैं तो हम पशु-वध में प्रीती क्यों रखते है ? यह यज्ञ धर्म के अनुकूल नहीं है। हिंसा-कर्म तो अधर्म के अनुकूल होता है।

यज्ञ-कर्म-इच्छा सब मर गइ। कांतिहीन तन मुख निस्तेजइ।।
विघ्न उपस्थित हुआ यज्ञ में। किन्तु परन्तू शुभम् यज्ञ में।।

(4) अग्रसेन जी की यज्ञ करने की सारी इच्छा मर गई। उनका शरीर कांतिहीन हो गया तथा उनके मुख का तेज भी जाता रहा। किंतु-परन्तु करते-करते आखिर उस शुभ यज्ञ में विघ्न उपस्थित हो ही गया।

दो0 : ऋषिगण पूँछैं अग्र से, यज्ञ रुकन कारण।
हे राजन् यह नहिं उचित, पुनि कर वीचारण।। (141)

दो0 : तब ऋषिगण अग्रसेन जी से यज्ञ रुकने का कारण पूँछने लगे। वे अपना परामर्श प्रकट करते हुए बोले - हे राजन्! ऐसा करना उचित प्रतीत नहीं होता। आप पुन: अपने निर्णय पर विचार करें। (141)

चौ0 : यज्ञ हो रहा शास्त्रनुसारे। कुछ अनुचित ना हम सुविचारे।।
मंत्रोच्चारण त्रुटीरहित है। ईर्ष्या बिनु शुभ दान देत है।।

चौ0 : (1) ऋषिगण कहने लगे - हे राजन! यह यज्ञ शास्त्रों के नियमों के अनुसार ही हो रहा है। हमने भलीभाँति विचार करके देख लिया है कि इस शुभ यज्ञ में कुछ भी अनुचित नहीं हो रहा है। मंत्रों का उच्चारण त्रुटिरहित है। सुपात्रों को बिना ईर्ष्या एवं पक्षपात के शुभ दान दिया जा रहा है।

सुरगण तृप्त हो रहे सारे। पूर्ण तुष्ट शरणागत द्वारे।।
सब सन्तुष्ट मुदित इत राजन। कौन कमी फिर कहु दुखभाजन!।।

(2) देवतागण तृप्त हो रहे हैं। द्वार पर उपस्थित शरणागतों को पूर्ण तुष्ट किया जा रहा है। हे राजन! यहाँ सब सन्तुष्ट और मुदित भाव से युक्त हैं फिर यहाँ ऐसी कौन सी कमी रह गयी ? हे दुखभाजन! आप उस कमी के विषय में स्पष्ट बताइये।

मख में अनुभव हुआ जो मुझको। सम्यक भाव से सुनिये उसको।।
जग में मृत्यू कोइ न चाहे। मिले काल से या अनचाहे।।

(3) तब राजा अग्रसेन जी इस प्रकार बोले – हे ऋषिवरों! यज्ञ में जैसा – जैसा मुझे अनुभव हुआ है आप उसे सम्यक भाव से सुनने की कृपा करें। जगत में मृत्यु की इच्छा कोई नहीं करता फिर मृत्यु चाहे काल से आवे या अकाल से।

प्राणदान दीरघ है सबसे। अन्य दान फिर को बड़ इससे?।
धर्म दया से बड़ा न कोई। प्राणी प्राणी सब सम होई।।

(4) प्राणदान को सबसे बड़ा दान माना गया है। इससे बड़ा अन्य कौन-सा दान है ? (यदि है तो बताइये) दया से बड़ा कोई धर्म नहीं होता। हर प्राणी समान होता है।

दो0 :बात आपकी सत्य है, पर सुनिये राजन।
इसके कर्ता हम नहीं, प्रजापती कारन।।क।।

दो0 : (क) ऋषिगणों ने उत्तर दिया – हे नीतिज्ञ राजन्! आपकी बात सत्य है फिर भी हे राजन्! आप सुनिये। इसके कर्ता हम नहीं स्वयं प्रजापति है।

सिद्धी-प्राप्ती के लिये, पशू रचाये ब्रह्म।
यज्ञ में पशुबलि वध नहीं, अहिंस कहाया ब्रह्म।।ख।। (142)

(ख) सिद्धि प्राप्ति के लिये ब्रह्मदेव ने इन पशुओं की रचना की है। यज्ञ में पशुबलि को वध नहीं अहिंसा कहा गया है – ब्रह्मदेव ने सामवेद में इसका उल्लेख भी किया है। (142)

चौ0 : जो जो पुण्य योग में गिरते। शुभ स्थान स्वर्ग वो लभते।।
पशु-वध मधूपर्क ज्योतिष में। पितृकर्म में दैवकर्म में।।

चौ0 : (1) ऋषिगण बोले – हे राजन्! जो – जो जीव इस पुण्य योग (यज्ञ) में गिरते हैं वो – वो स्वर्ग में शुभ स्थान को प्राप्त होते हैं। मधूपर्वक में, ज्योतिष्टादि कर्मों में, पितृकर्म में तथा दैव कर्मो मे पशु-वध को उचित माना गया है।

पशुबलि उचित अन्य में नाहीं। महाराज मनु कहा गवाही।।
शास्त्रनुसार पशूबलि स्वीकृत।हिंसा नहीं अहिंसा विदुमत।।

(2) महाराज मनु ने भी मनु-स्मृति में इस बात को उचित बतलाया है जबकि अन्य कर्मों में पशु-बलि उचित नहीं मानी गयी है। शास्त्रों के अनुसार उक्त कर्मो में पशु-बलि को स्वीकृति प्रदान की गयी है। विद्वानों का ऐसा ही मत है कि यज्ञ में पशु-बलि हिंसा नहीं अहिंसा है।

लोकनियंता चर व अचर सब। धर्म वही शास्त्रन जो गाइब।।
हे राजन्! तुम यज्ञ के कर्ता। तुम ही यज्ञ-विघ्न के हर्ता।।

(3) लोक के नियंता शास्त्रों ने चर व अचर सभी प्राणियों के लिये इस कर्म को धर्म माना है। हे राजन्! तुम ही यज्ञ के कर्ता हो और तुम ही यज्ञ में उत्पन्न विघ्न के हर्ता हो।

विघ्न यज्ञ में तुमहि किया है। ठीक नहीं यह व्यर्थ हिया है।।
जो जन सुख की इच्छा करते। धर्मनुकूल आचरण धरते।।

(4) हे नीतिवान्! तुमने यज्ञ में विघ्न उत्पन्न करके ठीक नहीं किया है। आपके हृदय में यह भाव व्यर्थ ही उत्पन्न हो आया है। जो प्राणी सुख की इच्छा करते हैं वे सदा धर्म के अनुकूल ही आचरण करते हैं।

दो0 : जो मर्यादा त्यागता, पाप-कर्म करता।
सत्पुरुषन तें मान ना, चरितहनन वरता।।(143)

दो0 : जो प्राणी मर्यादा का उल्लंघन करता है तथा पाप-कर्म में संलग्न रहता है उसे सद्पुरुषों से मान नहीं मिलता वल्कि ऐसा करने से उसके (सद) चरित्र का हनन होने लगता है। (143)

चौ0 : गर्ग वचन सुन कहैं अग्र यों। शास्त्रों-गुणियों से सीखा जो
शास्त्र-विधी सँग जोइ चलत है।धर्म पुरुष वह भी अनार्य है।।

चौ0 :(1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि तब महामुनि गर्गाचार्य जी के तार्किक वचनों को सुनकर अग्रसेन जी बोले - है ऋषिश्रेष्ठ! मैंने अब तक शास्त्रों से एवं आप जैसे गुणीजनों से जो कुछ सीखा है उसके

अनुसार जो व्यक्ति शास्त्र-विधि के अनुसार चलता है वह धर्मपुरुष भी अनार्य है।

पीत बाहिरे अन्दर से नहिं। उत्तम है पर उत्तम है नहिं।।
शीलवान पर होय अशीलहिं। ऐसे प्राणी कोइ न लीलहिं।।

(2) कोई व्यक्ति बाहर से पवित्र किन्तु अन्दर से अपवित्र हो, वह उत्तम (श्रेष्ठ) होते हुए भी उत्तम नहीं है। कोई व्यक्ति शीलवान तो हो परन्तु यथार्थ में वह शीलयुक्त सिद्ध न होता हो, ऐसे प्राणियों को कोई स्वीकार नहीं करता।

जो निरीह की हत्या करता। सुख-इच्छा से दुष्ट वो हुवता।।
वन काटे पशु को मारे जो। स्वर्ग जायेंगे! नर्क कौन को?।।

(3) जो व्यक्ति अपने सुख की इच्छा से किसी निरीह प्राणी की हत्या करता है वह दुष्ट कहलाता है। जो प्राणी वन काटता है अथवा पशु का वध करता है यदि ऐसे लोग स्वर्ग को प्राप्त होंगे तो फिर नरक किनको प्राप्त होगा ?

तीन दोष बड़ जग में हे प्रभु! मिथ्याभाषण प्रथम दोष प्रभु!।।
पर-स्त्री-सँग गमन अधिक बड़। क्रूर कर्म बिन वैर सर्व बड़।।

(4) हे प्रभु! जगत में तीन दोषों को बड़ा माना गया है। इसमें मिथ्या भाषण प्रथम दोष है। पर-स्त्री के साथ गमन करना अधिक बड़ा दोष है। जबकि बिना वैर क्रूर कर्म करना सबसे बड़ा (दोष) कु-कर्म कहा गया है।

दो0 : निज स्वारथ के मोहवश, बिना शत्रुता के।
किसी जीव को मारना, कर्म हैं अनुचित के।।क।।

दो0 : (क) अपने स्वार्थ के मोह के वशीभूत होकर बिना शत्रुता के किसी भी जीव को मारना अनुचित कर्म कहा गया है।

क्षत्रि-कर्म संकट पड़े, की रक्षा करना।
ना की निज के स्वार्थवश,निज झोली भरना।।ख।। (144)

(ख) क्षत्रिय का कर्म है संकट में पड़े हुए की रक्षा करना ना कि अपने स्वार्थ की खातिर उससे अपनी झोली भरना। (144)

चौ० : दोष कछू भी क्षत्रीयन ना। यज्ञ अपूर्ण रहे तो फिर हाँ।।
प्रजा-संतती नष्ट हैं होते। कुफल रूप में पैदा होते।।

चौ० : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि गर्गाचार्यजी ने अग्रसेन जी को बीच में रोकते हुए कहा- हे अग्रसेन! क्षत्रियों के लिये वैसे तो कुछ भी दोष नहीं होता परन्तु यज्ञ अपूर्ण रह जाने पर उसे दोष होता है। उसकी प्रजा और संतति नष्ट होकर कुफल रूप में पैदा होती है।

एक ओर तो क्रूर कर्म है। दूजहि महती दया धर्म है।।
इनमें कौन बड़ा ? सब जानैं। धर्म अहिंसा ही बड़ मानैं।।

(2) तदनन्तर, अग्रसेन जी बोले- हे धीजन! एक ओर तो निरीह प्राणी की हत्या करने जैसा क्रूर कर्म है वहीं दूसरी ओर दयारूपी महान धर्म है। इन दोनों में बड़ा कौन-सा है ? यह सब जानते हैं। अहिंसा धर्म ही सबसे बड़ा धर्म माना गया है।

शास्त्र-पठन अति आवश्यक है। कर्म मानवोचित ही बड़ है।।
'पशु बलि क्षत्रिय कर्म असत् नहिं।' अहिंसा लोकधर्म है सत यहि

(3) शास्त्रों का पठन और अध्ययन करना आवश्यक है किन्तु मनुष्य के लिये उसके द्वारा किये जाने वाला कर्तव्य-कर्म उससे कहीं अधिक आवश्यक है। हे आचार्य! पशु-बलि क्षत्रिय कर्म है - यह बात असत्य नहीं है किंतु अहिंसा तो लोकधर्म है। हे गुरुदेव! यही पूर्ण सत्य है।

पर हित कारण निज तन तज दूँ। निज हित पशु-वध कैसे कर दूँ?
सीमा उदधि भले ही तज दे। हिम का त्याग हिमालय कर दे।।

(4) हे विद्वानों! परहित के लिये तो मैं अपने शरीर का भी त्याग कर दूँ किंतु अपने स्वार्थ के लिये मैं इन निरीह प्राणियों का वध कैसे कर दूँ ? अग्रसेन जोश में आकर दृढता से बोलते हैं कि समुद्र भले ही अपनी सीमाओं का उल्लंघन कर दे, हिमालय भले ही अपनी हिम का त्याग कर दे तथा

दो० : चन्द्र चाँदनी छोड़ दे, मैं नहिं छोड़ूँगा।
हत्या निरअपराधिनन, मैं नहिं कर लूँगा।।क।।

दो० : (क) चन्द्रमा भले ही अपनी (शीतलता) चाँदनी का त्याग कर दे परन्तु मैं अपने क्षत्रित्व का त्याग कदापि नहीं करूँगा। इन निरपराधियों की हत्या का दोष मैं अपने हाथ नहीं लूँगा।

क्षत्रिन हित नहिं दोष कुछ, धर्म ये त्यागूँगा।
दया-धर्म जिस भाव में, वो ही ग्रहणूँगा।।ख।।

(ख) क्षत्रियों के लिये कुछ भी दोष नहीं- ऐसे धर्म को मैं त्यागूँगा तथा जिस भाव में दया जैसा महान धर्म कर्तव्य रूप में विद्यमान होगा मैं उसी धर्म को ग्रहण करूँगा।

करूँ घोषणा आज मैं, 'सत्य' शपथ लेकर।
'वैश्य धर्म' ही आज से, मानूँगा हितकर।।ग।।

(ग) अपने दोनों हाथ आकाश की ओर उठाकर श्री अग्रसेन 'सत्य' की शपथ लेकर घोषणा करते हैं कि आज से मैं अग्रसेन प्राणीमात्र का हित करने वाले उस महान वैश्य धर्म को मानूँगा।

'प्रजापालनम्' वैश्य का, दया प्रधानम् धर्म।
उत्तम आदर्श राज्य का, यह ही उत्तम कर्म।।घ।।

(घ) प्रजा का पालन करना ही वैश्यों का दयाप्रधानम् धर्म है। साथ ही यह राज्य का उत्तम आदर्श तथा उत्तम कर्म भी है।

दो० : चला दिवस नित तीस तक, वंशकरण शुभ यज्ञ।
कीर्ति-कथा जिसकी कहै, विष्णू आजहु जज्ञ।। (ङ)

(ङ) वंशकर नामक यह शुभ यज्ञ तीस दिनों तक निरन्तर चलता रहा जिसकी कीर्ति-कथा आज भी सारा संसार गाता है ऐसा विष्णुदास जी का मानना है।

दो० : चैत्र पूर्णिमा को हुआ, प्रारंभ पुण्यक यज्ञ।
पूर्ण विशाखहिं पूर्ण लख, त्रय जग कौतुक जज्ञ।। (च)

(च) जैमिनी ऋषि कहते हैं—हे जन्मेजय ! चैत्र मास की पूर्णिमा तिथि को यह शुभ यज्ञ प्रारम्भ हुआ और वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि को इस यज्ञ की पूर्णता को देखकर तीनों लोकों में इस विशिष्ट यज्ञ के प्रति कौतुक का भाव उत्पन्न हो गया।

दो0 : दिवस अहिंसा भी यही, वैश्य दिवस हू होय।
पूर्ण विशाखा लाभप्रद, दूजी तिथि ना कोय।। (छ) (145)

(छ) कवि कहता है कि अहिंसा दिवस की यही तिथि है साथ में वैश्य (अग्र) दिवस की भी। वैशाख सुदी पूर्णिमा जैसी ज्ञान- लाभ प्रदान करने वाली अन्य कोई दूसरी तिथि नहीं है अर्थात् भगवान अग्रसेन ही अहिंसा एवं वैश्य दिवस के प्रणेता हैं। (145)

चौ0 : वैश्य सहायक होते सबके। छोटे बड़े बीच के तबके।।
कृषि गोपालन अरु वाणिज्यम्। वैश्य कर्म स्वाभाविक सर्वम्।।

चौ0 : (1) श्री अग्रसेन वैश्य धर्म की महानता का बखान करते हुए कहते हैं कि - वैश्य सबके सहायक होते हैं फिर वह चाहे छोटा हो, बड़ा हो या फिर वह मध्यम श्रेणी का ही क्यों ना हो ? कृषि, गोपालन और वाणिज्यम् ये तीन कर्म ही वैश्यों के स्वाभाविक कर्म बतलाये गये हैं।

वैश्य सकल जग पोषण कर्ता। देव संत पशु ऋषि के भर्ता।।
वैश्य कर्मकर्ता यदि ना हो। तो क्या जग में कोइ बचा हो?।।

(2) वैश्य सम्पूर्ण संसार के पोषण करने वाले माने जाते हैं। वैश्य ही देवता, संत, पशु तथा ऋषियों का भरण-पोषण करते हैं। यदि वैश्य सर्वहित कर्म के कर्ता ना हों तो क्या जगत में कोई जीवित बचा रह सकता है ?

अब से वैश्य होय कुल मेरा। जब जागे तब होय सबेरा।।
कर्म करेंगे धर्म धरेंगे। कभी किसी का कुछ न हरेंगे।।

(3) अब से मेरा कुल 'वैश्य' होगा। जब जागो तभी सवेरा। हम कर्म करेंगे और दया रूपी महान धर्म को अपने हृदय में धारण करेंगे। हम कभी भी किसी व्यक्ति का कुछ भी नहीं (छीनेंगे) हरण करेंगे।

महालक्ष्मि कुलदेवी होगी। पहली पूजा माँ की होगी।।
गणपति शिव हनु को ध्यावेंगे। आवत का सम्मान करेंगें।।

(4) वैश्य वंश की कुलदेवी जगतजननी माता महालक्ष्मी होंगी। हमारे वैश्य कुल में प्रथम पूजा माता की होगी। हम भगवान गणेश, भगवान शिवशंकर तथा हनुमान जी महाराज का भी ध्यान (अर्चन) करेंगे। हम आगत का भी सम्मान करेंगे।

दो0 : वैश्य बली देते सदा, हे गुरुवर यज्ञहिं।
दूध दही गौ-घृत सहित, गंधित वस्तु मखहिं।। क।।

दो0 : हे गुरुवर। जहाँ तक बलि-कर्म की बात है तो वैश्य केवल दूध, दही, गौ-घृत सहित गंधित वस्तुओं की ही बलि अब तक यज्ञ में देते आये हैं।

बलि दीजे देवन चहैं, षड्विकार की मित्र।
काम क्रोध मद लोभ मो, मत्सर दुष्ट चरित्र।। ख (146)

(ख) हे आचार्यगण! यज्ञ में बलि देना यदि अपरिहार्य है तो काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मत्सर जैसे मित्र की तरह सदा साथ रहने वाले षडविकारों की बलि दी जानी चाहिये। (146)

चौ0 : तब सब ऋषि मुनि बोलन लागे। वचन निर्णयात्मक अनुरागे।
वचन तुम्हारे लोकुपकारी। कुलकीर्तीवर्धनम सुखारी।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि हे जनमेजय! तब समस्त ऋषिगण अपने निर्णयात्मक किन्तु अनुरागयुक्त वचन इस प्रकार बोलने लगे- हे राजन! तुम्हारे वचन लोक का उपकार करने वाले, कुल की कीर्ति बढ़ाने वाले तथा सबको सुख देने वाले हैं।

जैमिनि बोले जनमेजय से। अग्र-चरित हैं चरित देव से।।
करत यज्ञ नृप मध्यहिं छोड़ा। वैश्यवंश से निज उर जोड़ा।।

(2) जैमिनी ऋषि नृप जनमेजय से रहस्यपूर्ण वचन कहते हैं कि हे जनमेजय! अग्रसेन जी का चरित्र देवताओं के महान चरित्र की तरह (लोकोपकारी एवं अनुकरणीय) है। राजा अग्रसेन जी ने करते हुए यज्ञ को बीच में छोड़ दिया और स्वयं को हृदय से वैश्यवंश से जोड़ लिया।

कौन कुलीन कौन अकुलीनहिं? कौन वीर धर्मज बुधिमानहिं?।।
कौन पवित्र? चरित्र बताता। वर्ण से इसका कोइ न नाता।।

(3) विद्वानों का कथन है कि कौन कुलीन है? कौन अकुलीन है? कौन वीर है? कौन धर्मी है? कौन बुद्धिमान है? तथा कौन पवित्र है? इन सब बातों का पता उसके चरित्र से लगता है। वर्ण से इसका कोई नाता नहीं होता।

अग्रसेन निज जन बुलवाये। दृढ़ता से ये वचन कहाये।।
अब से हम सब वैश्य-वंश के। अग्रवंश के अर्थ-वंश के।।

(4) श्री अग्रसेन जी ने तुरन्त ही अपने विश्वस्त लोगों को बुलाया और अपने वचनों को दृढ़ता से कहते हुए घोषणा की - कि अब से हम सब वैश्य-वंश के कहलायेंगे अर्थात् आज से हम सभी को अग्रवंश का यानि अर्थ वंश का समझा जाए।

दो0 : सब धर्मों से है बड़ा, धर्म अहिंसा का।
सेवा पोषण लोक का, कुल की वृद्धी का।।क।।

दो0 : (क) कवि कहता है कि अहिंसा धर्म सब धर्मों से बड़ा धर्म है। अहिंसा धर्म ही लोक की सेवा और पोषण करने वाला तथा कुल की (सदाचारयुक्त) वृद्धि का मूल कारण है।

यदि चाहो कल्याण निज, लेवो शपथ तुरंत।
धर्म अहिंसा श्रेष्ठ की, कहते सुर मुनि संत।।ख।।

(ख) हे प्रजाजनों! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो तुरन्त ही अहिंसा रूपी धर्म की शपथ ले लो - सुर, मुनि तथा संतों का ऐसा ही कथन है।

नित्य अहिंसा राखिये, मन वच कर्मों में।
सत्य अहिंसा धर्म ही, दीरघ धर्मों में।।ग।।

(ग) हे निजजनों! आप अपने मन, वचन एवं कर्मों में नित्य अहिंसा का भाव रखिये क्योंकि यह कथन सत्य है कि यह अहिंसा रूपी धर्म को ही वैश्य धर्म कहा गया है।

वैश्यधर्म यह ही बना, भेद नहीं कोई।
समताधारित लोक की, कल्पना सच होई।।घ।।

इस विषय में किसी प्रकार को कोई (मत) भेद नहीं है। यह सत्य ही है कि भगवान श्रीकृष्ण द्वारा देखी गयी समता पर आधारित लोक (-समाज) की कल्पना आखिर सच हो ही गयी। (घ)

अहिंसा मानव-धर्म है, रखते उर भर के।
तब सबने ऐसा कहा, हाथ उठाकर के।।ङ।।

(ङ) उपस्थित समाज ने अपने हाथों को उठाते हुए इस प्रकार कहा कि अहिंसा धर्म ही मानव-धर्म है। हम इस धर्म को सदा के लिये अपने उर में स्वीकार कर लेते हैं अर्थात् भर लेते हैं।

जनमेजय! सोचो तनिक, अग्र ने जोइ किया।
पर मुझको लगता यही, उसने सही किया।।च।।

(च) जैमिनी ऋषि बोले- हे जनमेजय ! तनिक सोचो कि अग्रसेन जी ने जो कुछ किया वो ठीक किया या गलत। परन्तु मुझको तो यही लगता है कि राजा अग्रसेन ने जो किया सही किया।

'वैश्य-धर्म' जो धारता, नित आगें बढ़ता।
"विष्णुदास" जस शुक्ल पख, चन्द्र अग्र चढ़ता।।छ।। (147)

(छ) विष्णुदास जी कहते हैं कि जो प्राणी इस महान वैश्य धर्म को हृदय में धारण करता है वह सदा आगें ही बढ़ता है, ठीक उसी तरह जिस तरह शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा आगें (पूर्णता) की ओर ही चढ़ता है। (147)

गोत्राधिपति, ऋषि एवं गोत्रों का वर्णन

चौ० : अष्टादश ऋषि यज्ञ कराये। जिनसे अठरह गोत्र धराये।।
अग्र प्रभू के पुत्र अठारा। एक एक से जिन्हें सँवारा।।

अर्थ—जैमिनी ऋषि कहते हैं—हे जनमेजय ! अठारह ऋषियों के द्वारा इन अठारह यज्ञों को सम्पन्न कराया गया था जिस कारण इन ऋषियों से ही

अठारह गोत्रों को अग्रवंश में धारण किया गया है। ऐसा माना जाता है। प्रभु श्री अग्रसेन जी के अठारह पुत्र थे। प्रत्येक पुत्र को एक एक गोत्र देकर उसके वंश को सँवारने की यह अद्‌भुत परम्परा दूरदर्शी महाराजा अग्रसेन जी के द्वारा तब प्रारम्भ की गई थी।

गर्ग ऋषी से गर्ग विभू को। वशिष्ठ से बिंदल विक्रम को।।
कश्यप से कुच्छल अजया को। गौतम से गोयल विजया को।।
गोभिल से गोयन अनन्त को। जैमिनि से जिंदल नीरज को।।
वात्सिल से बंसला अमर को। नाँगल से नागल नगेन्द्र को।।
भारवि से भन्दल सुरेश को। शाण्डिल्य से सिंघल श्रिमंत को।।
मैत्रेय से मित्तल सोमा को। ताण्ड्य से तिंगल धरणीधर को।।
मुद्‌गल से मधुकुल आतुल को। कौशिक से कंसल अशोक को।।
तैत्रे से तायल दर्शन को। धौम्य से धारण सुत सिधार्थ को।।
माण्डव से मंगल गणपति को। और्व से ऐरण लोकपती को॥

अर्थ—ऋषि, गोत्र एवं उनके अधिपतियों के नाम इस प्रकार हैं—गर्ग ऋषि से गर्ग विभुसेन को, ऋषि वशिष्ठ से बिंदल विक्रमसेन को, कश्यप ऋषि से कुच्छल अजयसेन को, गौतम ऋषि से गोयल विजयसेन को, गोभिल ऋषि से गोयन अनन्तसेन को, जैमिनि ऋषि से जिंदल नीरजसेन को, वात्सिल ऋषि से बंसल अमरसेन को, नाँगल ऋषि से नागल नगेन्द्रसेन को, भारवि ऋषि से भन्दल सुरेशसेन को, शाण्डिल्य ऋषि से सिंघल श्रीमंत को, मैत्रेय ऋषि से मित्तल श्रीसोम को, ताण्ड्य ऋषि से तिंगल धरणीधर को, मुद्‌गल ऋषि से मधुकुल अतुल को, कौशिक ऋषि से कंसल अशोक को, तैत्रेय ऋषि से तायल सुदर्शन को, धौम्य ऋषि से धारण सिद्धार्थसेन को, ऋषि माण्डण्य से मंगल गणेश्वर को तथा ऋषि औरव से ऐरन कनिष्ठ पुत्र लोकपति को प्रदान किया गया।

दो0 : ऐरन आधा गोत्र है, क्योंकी यज्ञ अपूर्ण।
बाकी सत्रह गोत्र हैं, अपने में सम्पूर्ण।।(क)

अर्थ—ऊर्वन जैगिनी ऋषि कहते हैं कि ऐरन आधा गोत्र है क्योंकि अठारहवाँ यज्ञ अपूर्ण ही रहा। बाकी सत्रह गोत्र सम्पूर्ण गोत्र है।

अपने गोत्र को छोड़कर, अन में कीजे व्याह।
अग्रेश्वर आदेश यह, रक्तशुद्धि अनचाह।।(ख)

जैमिनी ऋषि कहते हैं—हे जनमेजय ! एक अपने गोत्र को छोड़कर अन्य सत्रह गोत्रों में आप ब्याह करें। भगवान अग्रसेन जी का यह आदेश भी है और न चाहते हुए भी रक्तशुद्धि का प्रमुख सूत्र भी।

शंका इसमें कोई ना, रखो मान विश्वास।
अग्रवंश रीती यही, कहते विष्णूदास।।(ग) ।।148।।

अर्थ—विष्णुदास जी कहते हैं—कि इस पद्धति में शंका करने वाली कोई बात नहीं है। बस आप इसका मान रखें। इसमें विश्वास रखें। विवाह की यह पद्धति ही पाँच हजार एक सौ वर्ष से अधिक समय से महान अग्रवंश की स्थिरता की रीति रही है और यही शाश्वत सिद्धांत है तथा एकमेव सूत्र भी। (148)

अध्याय इक्कीस 'पशु-बलि' पूर्ण हुआ।

:::::

(दोहे के अन्त में गाइये)

अग्रवर अग्रसेन पद गहि शरणम्
लक्ष्मी हरि ओम जय विश्वेश्वर
जय करुणेश्वर जय समतेश्वर

अध्याय बाईस (अग्रसेन महाराजा बने)

चौ0 : अग्रसेन समभावुर भरते। जन-हित-कार्यों को नित करते।।
सबको तृप्त और खुश रखना। धन याचक कौं औ मृद बचना।।

चौ0 : (क) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि हे जनमेजय! अग्रसेन जी का हृदय समता के भाव सदा भरा रहता था इसलिये वह समत्व भाव से जन-हित के कार्यों को सम्पन्न करते रहते थे। सबको तृप्त करना, सबको खुश रखना, याचक को धन देना तथा सबसे मृदु वाणी में बातें करना,

प्रजा की रक्षा सत्य का पालन। मानवता-रिपु पूर्ण सँहारन।।
प्रजावर्ग बेफिक्र वहाँ था। निज निज कर्मन लिप्त तहाँ था।।

(2) प्रजा की रक्षा करना, सत्य का पालन करना तथा मानवता के शत्रुओं का पूरी तरह से सफाया करना आदि कार्य अग्रसेन जी पूर्ण तत्परता से करते थे। आग्रेयपुरी में प्रजावर्ग पूर्णतया बेफिक्र होकर अपने-अपने कर्मो में (सं-)लिप्त रहता था)

गोरक्षा कृषि अरु वाणिज्यम्। कार्य ठीक से होते सत्यम्।।
राज्य-व्यवस्था अति उत्तम थी। प्रबन्धकों से सर्वोत्तम थी।।

(3) गायों की समुचित देखभाल करना, कृषि-सम्बन्धी कार्यों को तत्परता से करना तथा वाणिज्यादि व्यावसायिक कर्मो को उचित रूप से करना- जैसे कर्म वहाँ सही ढंग से किये जाते थे। वहाँ की राज्य-व्यवस्था अति उत्तम थी जिसे वहाँ के कुशल प्रबन्धकों ने विश्व की सबसे उत्तम व्यवस्था बना दिया था।

यश वैभव वंशैश्वर भारी। वैश्यवंश की प्रजा सुखारी।।
कुछ कपटी नर अती व्यथित थे। दुख अमर्षमय से चिंतित थे।।

(4) वहाँ यश-वैभव तथा वंश की भारी वृद्धि हो रही थी। वैश्यवंश की प्रजा सभी तरह से सुखी थी। किन्तु वहाँ कुछ ऐसे कपटी व्यक्ति भी जो यह सब देखकर अति व्यथित हो रहे थे। वहाँ की प्रगति देखकर ये कपटी लोग दुख एवं अमर्ष के कारण चिंतित रहने लगे।

दो0 : चहुँ दिसि कीरत अग्र की, दुखी करत अत्यहि।
होत सदा उपहास अरु, हृदय दग्ध अन्यहि।।क।।

दो0 : (क) आग्रेयपुरी की चारों दिशाओं में फैलने वाली कीर्ति अन्य लोगों के दुखों का कारण बन गयी जिससे इनका सदा उपहास होता था। इस कारण उनका हृदय बहुत जलने लगा।

शोकातुर दुविधा फँसे, नृप बैठे इक साथ।
कैसे हो वध अग्र का ? सोचत कर रख माथ।।ख।। (149)

(ख) शोक से पीड़ित एवं दुविधा में फँसे हुए ऐसे कपटी राजा तब एक साथ बैठे और माथे पर हाथ रखकर सोचने लगे कि अग्रसेन का वध कैसे हो ? (149)

चौ0 : इक राजा उनमें से बोला। अग्र मूर्ख है मैंने तौला।।
या बूढ़े जो बाल-बुद्धि भइ। क्षत्रि-महत्व न समुचित समुझइ।।

चौ0 : (1) तदनन्तर, उन राजाओं में से एक राजा बोला कि अग्रसेन मूर्ख है – मैंने यह भलीभाँति तौल लिया है। या फिर वह बूढ़े हो चुके हैं जिससे उनकी बुद्धि बालकों जैसी हो गयी है। वह क्षत्रियों के महत्व (महानता) को समुचित नहीं समझ पा रहे हैं।

क्षत्रि धर्म थिर सर्वव्यापकहिं। अग्र कथन अनुचित या विषयहिं।।
क्षत्री-कुल को किया कलंकित। हुआ नपुंसकता में स्थित।।

(2) अरे क्षत्रिय धर्म तो सदा स्थिर एवं सर्वव्यापक रहा है। इस विषय में अग्रसेन का कथन अनुचित ही है। उसने कुल को कलंकित कर दिया। मेरे विचार से वैश्य-धर्म अपनाकर वह नपुंसकता को प्राप्त हो गया है।

ऋषिहू अग्रहि पाछे चलते। जैसे अंधे अंधन चलते।।
श्रेष्ठ धर्म निज जो जन त्यागे। कहते उसको लोग अभागे।।

(3) जिस प्रकार अंधों के पीछे अंधे चलते हैं वैसे ही ऋषिगण भी अग्र के पीछे चलते हैं। जो व्यक्ति अपने श्रेष्ठ धर्म का त्याग कर देता है उसको लोग अभागा कहते हैं।

अग्र-धर्म आखिर को क्या है ? धर्म-अहिंसा ढकोसला है।।
मोह-नपुंसकता के कारण। धर्म अहिंसा कीन्हा धारण।।

(4) आखिर, अग्रसेन का धर्म क्या है? अहिंसा धर्म मात्र ढकोसला ही तो है। मुझे तो लगता है कि मोह की नपुंसकता के कारण ही अग्रसेन ने अहिंसा जैसे तथाकथित धर्म को धारण किया है।

दो0 : आओ मिलकर मार दैं, दुष्ट बुद्धि अग्रहि।
गला दबाकर तार दैं, या जीवित फूँकहि।। (150)

दो0 : वह राजा बोला - आओ, हम सब मिलकर उस दुष्ट बुद्धिवाले अग्रसेन को मार डालें। गला दबाकर उसका उद्धार कर दें या फिर उसे जीवित ही आग में जलाकर फूँक डालें। (150)

चौ0 : मालव राजा यतेन्द्र बोले। रोहता-नृप सुझाव अनमोले।।
युक्तीसंगत क्षण अनुकूलहि। तुरत सर्व जन आगें बढ़हहि।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि तब मालव देश के राजा यतेन्द्र ने कहा कि रोहता राज्य के नृप द्वारा दिये गये सुझाव अनमोल हैं। ये सुझाव युक्तिसंगत एवं समय के अनुकूल हैं। हमें तुरन्त ही आगे बढ़ जाना चाहिये।

तहस-नहस आग्रे कर देंगे। विपुल अर्थ अधिकारहिं लेंगे।।
सबने ऐसा निश्चय कीया। 'सेना बढ़' का आदेश दीया।।

(2) सभी राजा आवेशयुक्त वाणी में बोले - हम सम्पूर्ण आग्रेय गणराज्य को तहस-नहस करके उसके विपुल अर्थ को अर्थात् वहाँ की विपुल सम्पदा पर अधिकार कर लेंगे। सबने ऐसा निश्चय करके अपनी-अपनी सेनाओं को आगें बढ़ने का आदेश दिया।

आग्रे घेरी चहूँ ओर से। करैं आक्रमण जोर-जोर से।।
लोभ-मोह जस जग को घेरैं। वैसेहि दुष्ट पुरी को घेरैं।।

(3) इन क्षत्रिय राजाओं ने उस महान आग्रेयपुरी को चारों ओर से घेरकर उस पर जोर-जोर से आक्रमण करना शुरू कर दिया। जिस प्रकार जगत

को लोभ और मोह घेर लेते हैं वैसे ही इन दुष्ट राजाओं ने सद्‌गुणों से युक्त आग्रेयपुरी को चारों ओर से अपने घेरे में ले लिया।

शौर्यसेन बोले नृप अग्रहि। निज पुत्रन अरु विभु सँग भ्रातहि।।
पद्‌मकेतु सेनापति जी भी। रथी सुषेन वीर सँग मैं भी।।
सभी उपस्थित इत में राजन! नेतृत्व-अज्ञा दें दुखभाजन!।।

(4) उधर आग्रेयपुरी में जब इस षड़यन्त्र का पता लगा तो अनुज शौर्यसेन राजा अग्रसेन जी से बोले - हे राजन्! अपने पाँचों पुत्रों सहित, भ्राता सहित वीर विभुसेन, सेनापति पद्‌मकेतु, रथी सुषेन तथा अन्य वीरों सहित मैं स्वयं भी इस राजभवन में उपस्थित हूँ। सबके दुखों को सदा दूर करने वाले हे महान राजा! आप मुझे इस युद्ध के नेतृत्व की आज्ञा प्रदान कीजिये।

दो0 : हाथ जोड़ विभु ने कहा, चाचा पापा से।
शत्रू ज्यादा हैं नहीं, वे तो गिनती से।।क।।

दो0 : (क) तब अपने दोनों हाथों को जोड़कर ज्येष्ठ पुत्र विभु ने अपने पिता और चाचा से कहा- कि हे तात! शत्रु अधिक नहीं है। वे तो गिनती से हैं।

रूई सम बल है जिहहि, फूँक से ही जड़ जात।
उसे जलाने के लिये, बड़वानल न सुहात।।ख।।

(ख) जिसका बल रुई के समान हो और जो फूँक से उड़ जाने योग्य हो, उसे जलाने के लिए बड़वानल का प्रयोग उचित नहीं होता।

बूँदा-बाँदी अल्प से, होय शांत जो धूल।
वरुण क्रोध ता पर करे, उचित नहीं सुख-फूल!।।ग

(ग) थोड़ी सी बूँदा-बाँदी से ही जो धूल शांत हो जाने वाली हो, उस पर वरुणदेव का क्रोध करना, हे सुखफूल! उचित प्रतीत नहीं होता।

उन दुष्टों को बाँधकर, मैं वेगहि लाऊँ।।
स्वीकृति अपनी दीजिये, वायू सम धाऊँ।।घ।। (151)

(घ) उन दुष्ट राजाओं को बाँधकर मैं शीघ्र ही यहाँ लेकर आता हूँ। हे राजन्! बस आप मुझे अपनी स्वीकृति देने की कृपा करें। मैं अभी वायु की तरह दौड़ लगाता हूँ। (151)

चौ0: सेना सँग विभुसेन पहुँच गए। दिग्गजसेन कहे कटु बचनए।
कुलद्रोही! तू राज्य छोड़ दे। धर्म त्याग तू वीर नहीं रे।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि वीर विभुसेन अपनी सेना के साथ शत्रुसेना के नेतृत्वकर्ता राजा दिग्गजसेन के समीप पहुँच गये। तब दिग्गजसेन विभुसेनसे इस प्रकार कटु वचन कहने लगे - अरे कुलद्रोही! तू इस राज्य को छोड़कर कहीं और चला जा। अरे, अपने धर्म का त्याग करके अब तू वीर नहीं रहा।

वैश्व तत्त्व नापुंसकता नहिं। है पुरुषारथपूर्ण कर्म यहि।।
युद्ध-पूर्व क्यों डरते ऐसे ? क्षमा पराक्रम सीखो हमसे।।

(2) तब विभुसेन शांत स्वर में बोले- हे राजन्! वैश्व - तत्व नपुंसकता नहीं है। यह तो पुरुषार्थ पूर्ण कर्म से युक्त है। आप लोग युद्ध से पहले ही इस प्रकार क्यों भयभीत हो रहे हो? अरे? क्षमा और पराक्रम को सही ढंग से सीखना है तो हमसे सीखिये।

इच्छा यदि संग्राम तुम्हारी। नहिं इच्छा शांती सुखकारी।।
तो फिर युध का प्रारँभ करिये। देखैं मुझसे कौन सँवरिये?।।

(3) यदि आपकी इच्छा सबको सुख देने वाली शांति की ना होकर केवल संग्राम की ही है तो फिर आप युद्ध को प्रारम्भ कीजिये। (गुस्से से) देखता हूँ, तुम्हें मुझसे कौन बचाता है ?

युद्ध भूमि में विभु ललकारा। मानो गज से रिपु रथ हारा।।
तिल्लि जलावै वृहद् घास को। वैसे ही विभु विपुल सैन को।।

(4) जब युद्धभूमि में विभुसेन ने इस प्रकार शत्रुपक्ष को ललकारा तो ऐसा लगा मानो एक ही हाथी से शत्रुओं के रथ हार मान बैठे हों। जैसे तिल्ली घास के विशाल ढेर को पल भर में भस्म कर डालती है वैसे ही विभुसेन विशाल शत्रु-सेना का वध करने लगे।

दो0 : सेना दिग्गजसेन की, नष्ट-भ्रष्ट कर दी।
फिर अपने अधिकार में, सब सेना कर ली।।क।।

दो0 : (क) विभुसेन जी ने दिग्गजसेन की समस्त सेना नष्ट-भ्रष्ट करके बची हुयी सेना को अपने अधिकार में कर लिया।

मूर्छित होकर गिर पड़ा, वीरन सँग दिग्गज।।
आग्रेपुरि लाये तुरत, विभूसेन दिग्गज।।ख।।(152)

(ख) राजा दिग्गजसेन अपने जीवित बचे शेष वीरों सहित मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। विभुसेन दिग्गजसेन आदि शत्रु पक्ष को लेकर तुरन्त आग्रेयपुरी को ले चले। (152)

चौ0 : महाराज सन लाये उनको। हथकड़ियों में विभु दिग्गज को।।
चाचाजी! नृप सूचित कर दें। सब द्रोही अधीन ये कह दें।।

चौ0 : (1) वीर विभुसेन हथकड़ियों में जकड़े हुए दिग्गजसेन आदि क्षत्रिय वीरों को महाराज अग्रसेन जी की सभा में लाकर बोले- हे चाचाजी! कृपया आप राजाश्री को सूचित करके यह कह दीजिये कि राज्य के सम्पूर्ण द्रोही आपके आधीन हो चुके हैं।

जैसे मात पिता तस पुत्रहि। किया न वध संरक्षण लीनहि।।
अग्रसेन देखा पत्नी को। 'हित-निर्णय हो' कहा पती को।।

(2) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि जैसे माता-पिता हैं वैसे ही उनके पुत्र हैं। विभु ने शत्रुओं का वध न करके केवल उन्हें अपने संरक्षण में लिया। तब राजा अग्रसेन जी ने कुछ दूर स्थित रानी के रूप में सिंहासन पर बैठी हुयी विद्वान माधवी जी की ओर देखा। पत्नी ने मूक शब्दों में मात्र संकेतों से अपना अभिमत प्रकट करते हुए कहा- हे महाराज! आपका निर्णय ऐसा हो जिसमें सबका हित हो।

अग्रसेन बोले रिपु-नृप से। मुक्त सभी तुम दास न अब से।।
घृणित कार्य फिर से ना करना। इससे तो उत्तम है मरना।।

(3) अग्रसेन जी रिपु-पक्ष के राजा से कहते हैं कि आप सब मुक्त हुये। अब आप हमारे दास नहीं रहे। आप पुन: ऐसा घृणित कार्य ना करें। इससे तो मरना श्रेयस्कर है।

दुष्टों से रक्षा करना ही। क्षत्रिय धर्म श्रेष्ठ इति कहही।।
बुद्धि आपकी धर्म में रत हो।मनहु अधर्महिं कबहुँ न नत हो।।

(4) दुष्टों से जनता की रक्षा करने को ही श्रेष्ठ क्षत्रिय धर्म कहा गया है। मेरी परमात्मा से प्रार्थना है कि आपकी बुद्धि सदा धर्म में रत रहे तथा आपका मन अधर्म के सामने कभी ना झुके।

रथ घोड़े सबही ले जायें। कटकु-कुशलता सँग में पायें।।
दिग्गजसेन कहा राजा से। आप न राजा 'महाराजा' से।।

(5) आप अपने सभी रथ-घोड़े ले जाइये। आप अपनी सेना भी कुशलतापूर्वक यहाँ से पाइये। तब दिग्गजसेन बोला- हे अग्रसेन! आप राजा नहीं, आप तो महाराज है। अर्थात् राजा तो हम हैं। आप तो हम राजाओं के राजा अर्थात् महाराजा हैं।

हम अज्ञानी सो नहिं जाना। तव स्वरूप को नहिं पहचाना।।
बड़ अपराध किये हैं तुम प्रति। क्षमा करैं हम हे विराटपति!।।

(6) हम अज्ञानी थे जो अब तक आपको जान नहीं पाये। अरे, हम आपके स्वरूप को भी नहीं पहचान पाये। हमने आपके प्रति बड़े-बड़े अपराध किये हैं। हे विराटपति! कृपया आप हमें क्षमा कर दीजिये।

दो0 : वैर कभी टिकता नहीं, इक पल शुभ हिरदय।
बीते पल का शोक क्या? अब तुम हम इक हय।। क।।

दो0 : (क) श्री अग्रसेन कहते हैं - हे प्रिय राजाओं! अच्छे हृदय में वैर का भाव एक पल भी नहीं टिकता। अरे, बीते हुए पल का शोक क्या करना? अब हम-तुम सब एक हैं।

वैर-भाव को त्यागकर, हो जावो निर्वैर।
मुझको प्रिय लगता यही, सबकी इसमें खैर।।ख।

(ख) आप लोग भी अब वैर भाव को त्यागकर निर्वैरता को प्राप्त हो जाइये। मुझे यही प्रिय लगता है। इसी में सब की खैर है।

अग्रसेन को चाहते, सभी पिता की भाँत।
शत्रू उनका कोइ ना, सो भए शत्रु अजात।।ग।।

(ग) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि सभी प्राणी महाराजा अग्रसेन जी को पिता की तरह प्रेम करते हैं। अब सारी पृथ्वी पर उनका एक भी शत्रु नहीं रहा। इस कारण महाराजा अग्रसेन अजातशत्रु भी कहलाने लगे।

जैमिनि जनमेजय कहैं, ऐसा दिव्य चरित्र।
अग्रसेन महाराज सा, नहीं दूसरा मित्र।।घ।।(153)

(घ) जैमिनी ऋषि नृप जनमेजय से कहते हैं कि महाराजा अग्रसेन जैसे दिव्य चरित्र वाला भला कोई दूसरा महाराजा कभी हुआ। नहीं, राजन्! ऐसा कभी नहीं हुआ। (151)

नीतिगत दोहे

द्वेष न करना है हमें, ना ही शत्रूता।
हमको रखनी है सदा, उर में बस निजता।।1।।

(क) कवि कहता है कि हम अग्रवंशियों को न तो कभी किसी से द्वेष करना है और ना ही शत्रुता। हमको तो अपने हृदय में निजता का ही भाव रखना है।

हार न उसकी है कभी, क्षमावान है जो।
"विष्णुदास" सो अग्र सम, उर विशालयुत हो।।2।।

(2) विष्णुदास जी कहते हैं कि क्षमावान की कभी हार नहीं होती। अतः प्राणी को चाहिये कि वह महाराजा अग्रसेन जी की तरह 'सम' भाव से युक्त रहे।

हाथ उठाकर आज हम, बस ये ही कहते।
क्षमा प्रेम सद्भाव सत, उर रहँ नित बहते।।3।।

(3) हम सभी वैश्यवंशी हाथों को उठाकर केवल ये ही कहते हैं कि क्षमा, प्रेम, सद्भाव और सत् (सत्य) जैसे महान गुण हर हृदय में नित्य प्रवाहित होते रहें।

"विष्णुदास" की प्रार्थना, अग्रवंशियों से।
दया-भाव सबसे बड़ा, मानो हिरदय से।।4।।

(4) विष्णुदास की अग्रवंशियों से बस यही प्रार्थना है कि दया अर्थात् करुणा का भाव सबसे बड़ा भाव है। बस आवश्यकता है तो इस भाव को हृदय से स्वीकार करने की यानी कि मानने की।

अध्याय बाईस 'अग्रसेन महाराजा बने' पूर्ण हुआ।

:::::

(दोहे के अन्त में गाइये)

अग्रवर अग्रसेन पद गहि शरणम्
लक्ष्मी हरि ओम जय विश्वेश्वर
जय करुणेश्वर जय समतेश्वर

卐 अध्याय तेईस "समाजवाद" 卐

चौ० : जनमेजय से कहैं जैमिनी। अग्र-सुकर्म कथा तुम सुनी।।
अति अद्‌भुत गाथा सुनिये अब।अग्रवंश में घटी थी जो जब।।

चौ० : (1) परीक्षितनन्दन जनमेजय से जैमिनी ऋषि कहते हैं कि हे जनमेजय! अब तक तुमने महाराजा अग्रसेन के सुन्दर कर्मो की कथा सुनी। अब आप उस अद्‌भुत गाथा को सुनिये जो उस समय अग्रवंश में घटित हुयी थी।

इक दिन नृप बन्दीगृह आए। हाथ बँधा इक बन्दी पाए।।
नाम शऽकुन्तहि जाती ब्राह्मण।जो था उनका बचपन प्रियजन।।

(2) एक दिन राजा श्री अग्रसेन भ्रमण करते-करते राज्य के बन्दीगृह में आये। वहाँ उन्होंने दोनों हाथ बँधे हुए एक विचित्र कैदी को पाया। उस बन्दी का नाम शाकुन्त था जो जाति से ब्राह्मण था। साथ ही वह उनके बचपन का मित्र भी था।

अग्रसेन ने पूँछा उससे। पापकर्म क्या हुआ है तुमसे ?।।
को अपराध हुआ है तुमसे? प्राप्त हुई यह दुर्गति जिससे।।

(3) श्री अग्रसेन जी ने उस कैदी से पूछा - तुमसे क्या पाप-कर्म हुआ है ? तुमसे ऐसा कौन - सा अपराध हुआ है जिससे तुम्हें यह दुर्गति प्राप्त हुयी है।

तुम्हें देखकर दीन दशा में। छाई वृहद् अशांती मन में।।
ब्राह्मण बोले डरते-डरते। क्षुधा है कारण हे शुभमते!।।

(4) हे बंदी! तुम्हें ऐसी दीन-दशा में देखकर मेरे मन में बहुत अशांति छा रही है। तब बन्दी ब्राह्मण डरते-डरते बोले- हे शुभमते! मेरी इस दुरावस्था का कारण मेरी क्षुधा है।

दो० : बच्चे व्याकुल भूख से, शव समान सगरे।
बन्धू छूटे नारि मम, फटे वस्त्र पहिरे।। (154)

दो0 : (1) मेरे बच्चे भूख से व्याकुल हो रहे थे। वे शव के समान प्रतीत होने लगे थे। मेरे बन्धु-बांधव भी मुझसे छूट गये थे। मेरी पत्नी को फटे हुए वस्त्र पहनने पड़ते थे। (154)

चौ0 : दरिद्रता-अग्नी दुखदायी। शांत होत जल संतोषायी।।
दरिद्रता परमूर्ति याचना। मनुष-शील का करे भेदना।।

चौ0 : (1) विद्वान कैदी कहता है कि हे धीमते! दरिद्रता की अग्नि बड़ी दुखदायी है। यह संतोष रूपी जल से ही शांत हो पाती है। दरिद्रता याचना की परमूर्ति है जो मनुष्य के शील रूपी धन का भेदन कर देती है।

विमुख देवता जिसके हो गए।यत्नऽरु पौरुष उहहि नष्ट भए।।
ऐसे मनसी किन्तु दरिद्री। मृत्यु तज कित में सुख-इन्द्री?।।

(2) जिसके देवता जिससे विमुख हो गये हों उसके यत्न और पौरुष नष्ट हुए ही समझो। ऐसे मनस्वीजन दरिद्रता के कारण मृत्यु के अतिरिक्त भला और कहाँ सुख प्राप्त कर सकते हैं ?

जैसे अगन भले बुझ जाये। पूर्ण शांत कबहुँन हो पाये।।
जो धन-साधन छीने दूसर। दुख देवे होकर अति निष्ठुर।।

(3) जैसे कि अग्नि बुझ भले ही जाती है परन्तु वह पूर्ण शांत कभी नहीं हो पाती। जो प्राणी दूसरे का धन छीनता है अथवा अति निष्ठुर होकर दूसरे को दुख देने का कारण बनता है अथवा

कीर्ति-लोभ में दाता बनकर। 'यश फैले' की इच्छा रखकर।।
यत्नसहित दाता याचक को। जीवित रक्खे सँग में निज को।।

(4) मेरा ही यश चतुर्दिक फैले की इच्छा रखते हुए यत्नसहित कीर्ति-लोभ में दाता बनकर यदि याचक को दान देता है तो वह याचक के साथ स्वयं को भी जीवित रखता है।

दो0 : हो दरिद्र जब कोइ नर, घेरत है लज्जा।
क्षीण होय पुरुषार्थ सब, शांति न चित सज्जा।। (155)

दो० : जब कोई व्यक्ति दरिद्र हो जाता है तो उसे लज्जा घेर लेती है। उसका सारा पुरुषार्थ क्षीण हो जाता है। और ना ही उसका हृदय कभी शांति से सज पाता है। (155)

चौ० : सर्वत्रहिं अपमानित होता। हिरदय ग्लानि भाव से रोता।।
ग्लानि से शोक फेर बुद्धी-क्षय। अन्त में होता पूरा ही क्षय।।

चौ० : शाकुन्त नामक कैदी आगे कहता है कि याचक सर्वत्र अपमानित होता है। उसका हृदय ग्लानि के कारण रोता रहता है। हे राजन्! ग्लानि से शोक उत्पन्न होता है। शोक से उसकी बुद्धी का भी क्षय हो जाता है और तब, अन्त में उसका पूरा क्षय हो जाता है।

विपदायें उसके ढिंग रहती। दरिद्रता में ही सब रहतीं।।
राजन्! मैं तो पराधीन था। किन्तु क्षुधा ने किया विवश था।।

(2) समस्त विपदायें उसके निकट डेरा जमा लेती हैं। हे महाराज! ये सारी तकलीफें दरिद्रता में ही रहती हैं। हे राजन्! मैं तो पराधीन था परन्तु मुझे भी इस निगोड़ी क्षुधा (भूख) ने विवश कर दिया।

अकर्म कराया मैं दोषी नहिं। 'भूख-दास मैं' सो दोषी नहिं।।
हे राजन! मैं सबहि बखाना। करिये अब जो मन में ठाना।।

(3) हे मानी! मैं इस क्षुधा के वश में था इसलिये मुझे दोष सिद्ध नहीं होता। हे राजन्! मैंने सारी घटना आपको अक्षरश: बतला दी है। अब आप जैसा ठान चुके हैं या सोच चुके हैं आप वैसा करने को स्वतन्त्र है।

सप्रमाण द्विज जो बतलाया। राजा ने वो कण्ठ लगाया।।
राजा मन में सोचन लागे। निरपराध को बन्ध न लागे।।
चिंतित अन्त:करण हो गया। इन्द्रिय-चेतन व्याकुल भऽया।।

(4) जैमिनी जी कहते हैं कि उस विद्वान ब्राह्मण ने प्रमाणसहित जिस सत्य का रहयोद्घाटन राजा के सम्मुख किया था उस कारण राजा ने उसे अपने कण्ठ से लगा लिया। राजा अग्रसेन मन में सोचने लगे कि निरपराधी को बन्धन में बाँधे रखना उचित नहीं होता। इस चिंता से

अग्रसेन जी का अन्तकरण चिंतित हो गया। इन्द्रियों सहित उनकी चेतना व्याकुलता को प्राप्त होने लगी।

दो0 : जीवन-निर्वाह के लिये, हो ना उचित उपाय।
धीजन भी फिर क्या करे,याचक बन ही जाय।।क।

दो0 : (क) शास्त्र कहते हैं कि जीवन-निर्वाह के लिये यदि कोई समुचित उपाय न हो तो फिर धीजन भी क्या करेगा? वह याचक बन ही जायेगा।

जो अधिकारी मान का, याचक बन माँगत।
होत तिरस्कृत दुष्ट से, दुष्कर्मन लागत।।ख।। (156)

(ख) जो मान का अधिकारी है यदि वह याचक बनकर भिक्षा माँगने लग जाता है तो वह दुष्टों से तिरस्कृत होने के कारण (अन्त में) दुष्कर्मों में प्रवृत्त हो जाता है। (156)

चौ0 : कोमलता का आश्रय लेकर। छोड़ दूँ इसके दोष भूलकर।।
क्योंकि श्रेष्ठ ब्राह्मण भी है यह। सँग में बचपन मित्रहु है यह।।

चौ0 : (1) राजा अग्रसेन किन्तु - परन्तु करते हुए मन में विचार कर रहे हैं कि कोमलता (उदारता) का आश्रय लेकर तथा इसके दोषों को भूलकर यदि मैं इसे छोड़ दूँ क्योंकि एक तो यह श्रेष्ठ ब्राह्मण है दूजे यह मेरे बचपन का मित्र भी है।

किन्तू जो अपराधी होता। 'हो स्वकीय' त्यागा ही जाता।।
पर जब निर्णय दोष का करते।कारण को भी ध्यान में धरते।।

(2) किन्तु जो अपराधी होता है वह भले ही स्वकीय हो, उसको त्यागा ही जाता है। परन्तु जब हम दोष का निर्णय करते हैं तो उसके कारण को हम ध्यान में धरते हैं।

मैं राजा सो कारण मैं हूँ। ब्राह्मण सँग अपराधी मैं हूँ।।
चिंतन से बेचैन हो गये। चिंतित दुविधाग्रस्त हो गये।।

(3) मैं इस पृथ्वी का राजा हूँ इसलिये कारण मैं हूँ। इस ब्राह्मण के साथ मैं भी अपराधी हूँ। इस चिंतन से राजा बेचैन हो गये। श्री अग्रसेन चिंतित और दुविधाग्रस्त हो गये।

गर्ग कहा नृप! मन वश करिये। धीरज को बुद्धी में धरिये।।
जीव-जन्तु जैसे नदि रहते। वैसेहि पाप-पुण्य मन बहते।।

(4) तदनन्तर, गर्गाचार्यजी बोले - हे नृप! आप अपने मन को वश में रखिये अर्थात् मन को नियंत्रित कीजिये। आप धीरज को अपनी बुद्धि में धारण कीजिये। हे महाराज! जिस प्रकार जीव-जन्तुओं का नदी में निवास होता है उसी प्रकार पाप और पुण्य भी सदा मन में बहते रहते हैं।

दो0 : कैसे हो जग-यात्रा? धर्म-आत्म-कल्याण।
पाप-पुण्य जो जाँचते, वो राजा धीमान।।(157)

दो0 : हे राजन्! धर्म एवं आत्म-कल्याणार्थ इस जगत की यात्रा कैसे सम्भव हो ? इस विषय में जो राजा पाप - पुण्य का विचार कर भली-भाँति उनकी जाँच करते हैं वे राजा धीमान कहे जाते हैं।(157)

चौ0 : न्याय-सिधांत सनातन जो है। भलीभाँति नृप! जानत तू है।।
धर्मशास्त्र के सूक्ष्म विषय भी। तुम जानो क्योंकी ज्ञानी भी।।

चौ0 : (1) गर्ग ऋषि कहते हैं कि हे राजन्! आप न्याय के सनातन सिद्धान्त को भलीभाँति जानते हैं - ऐसा माना जाता है।

दोष का कर्ता यदि दोषी है। तो कारण ज्यादा दोषी है।।
धूप-छाँव जस दोउन कारण। अच्छे-बुरे कर्म के कारण।।

(2) राजा बोले - हे गुरुदेव! दोष का कर्ता यदि दोषी है तो कारण उससे कहीं ज्यादा दोषी है। धूप और छाँव जैसे एक दूसरे का कारण होते हैं वैसे ही अच्छे और बुरे कर्म भी एक दूसरे के कारण होते हैं।

कारण के कारण यदि कीया। दुष्ट कर्म जस ब्राह्मण कीया।।
दण्ड का भागी निश्चित ही वह।न्यायनीति का भी सिधांत यह।।

(3) उस कारण के कारण यदि किसी ने दुष्कर्म किया जैसे कि इस ब्राह्मण ने किया है तो वह कारण निश्चित ही दण्ड का भागी है। न्यायशास्त्र एवं नीति शास्त्र का भी यही सिद्धान्त है।

अभयदान प्राणी को देना। वस्तु अभीष्ट याचकहि देना।।
देकर सदा भूल फिर जाना। दान होत सर्वोच्च जहाँना।।

(4) प्राणियों को अभयदान देना, याचक को अभीष्ट वस्तु प्रदान करना तथा दान देकर सदा के लिये भूल जाने वाला दान ही सबसे बड़ा दान समझा जाता है।

दो0 : आय शरण यदि शत्रु भी, दीन हीन होकर।
उस क्षण जो करता दया, वो हो उत्तम नर।।(158)

दो0 : हे मुनिवर! दीन हीन होकर यदि शत्रु भी हमारी शरण में आता है तो उस क्षण जो उस पर दया करता है वह उत्तम नर माना जाता है। (158)

चौ0 : याचक मानो मर जाता है। जब तक जीता नित मरता है।।
दाता सदा हि जीवित रहता। मृत्यु बाद यशरूपहिं बहता।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि न्यायप्रिय महाराजा अग्रसेन कहते हैं कि हे मुनिराज! याचक याचना करते ही मानो मर ही जाता है। याचक जब तक जीवित रहता है तब तक वह नित्य मरता है। इसके विपरीत दाता सदा जीवित रहता है। मृत्यु के बाद वह दाता यशरूप में इस जगत (रूपी नदी) में बहता रहता है।

याचक को जो दिया दान है। दयारूप वहि परम धर्म है।।
जो विद्वान न रोजी कोई। घर-पालन में अक्षम होई।।

(2) हे तपोनिष्ठ! याचक को जो दिया गया दान है वही दयारूपी दान परम धर्म है। जो लोग विद्वान है जिनके पास रोजी-रोटी की कोई समुचित व्यवस्था नहीं है यदि वे घर का पालन करने में समक्ष नहीं है,

काहू से माँगन नहिं जावैं। उनके दुख को सभी मिटावैं।।
ऐसे पुरुष भयंकर होते। विषधर सम दुखकारी होते।।

(3) तथा वे किसी से माँगने भी नहीं जाते हैं तो (हम) सबको उनके दुखों को मिटाना चाहिये। हे प्रभो! ऐसे विद्वान पुरुष बड़े भयंकर होते हैं। ये लोग विषधर के समान दुखकारी सिद्ध होते हैं।

जैसे अग्नी छिपी राख में। 'ये' भी जग के दुख कारण में।।
ऐसे योग्यजनन ना तजिये। यत्नसहित खोजत ही रहिये।।

(4) जैसे अग्नि राख के ढेर में छिपी रहती है वैसे ही ये लोग जगत् के लिये दुख के कारण में छिपे रहते हैं। ऐसे योग्य जनों का कभी त्याग नहीं करना चाहिये उल्टा इन्हें यत्न सहित खोजते रहना चाहिये।

दो0 : कष्ट उठायें माँगु ना, कैसे हो उपकार?
ऐसे जन का बोलिये, पूँछा विभु सुविचार।।(159)

दो0 : ऐसे विद्वतजन कष्ट तो उठा सकते हैं परन्तु किसी से माँगने नहीं जा सकते। फिर ऐसे लोगों का उपकार कैसे हो? तब, विभु ने सुविचार करके पूँछा- हे पिताश्री! ऐसे लोगों के प्रति हमें क्या बोलना चाहिए? उनके प्रति हमें किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये ? (159)

चौ0 : किसी राष्ट्र में लोग हों ऐसे। निश्चित ही वे पूजनीय से।।
सिवा तुम्हारे कौन हितैषी? करे जो रोजी-प्रबँध सुखैषी।।

चौ0 : (1) तब, महाराजा अग्रसेन बोले - पुत्र विभु! यदि किसी राष्ट्र में ऐसे विद्वतजन हों तो वे निश्चित ही पूज्यनीय हैं। भला तुम्हारे (राजा के) अतिरिक्त उनका और कौन हितैषी है जो उनके लिये सुख के कारण रूपी रोजी-रोटी की व्यवस्था कर सके ?

याचन तिरस्कार का कारण। दूसर द्वार मृत्यु का याचन।।
अंगीकार करैं जो कष्टन। स्वीकारैं वो कभी न याचन।।

(2) हे पुत्र! याचना एक ओर तो तिरस्कार का कारण है तो दूसरी ओर यह याचना मृत्यु का कारण भी है। जो श्रेष्ठजन कष्टों को अंगीकार कर लेते हैं। वे कभी याचना को स्वीकार नहीं करते हैं।

मनस्वि ऐसे सदा श्रेष्ठ हैं। बिन शंका ये सर्वश्रेष्ठ हैं।।
धर्म सनातन है जो नारिन। पति-सेवा उनका अवलम्बन।।

(3) हे पुत्र! ऐसे मनस्वी सदा श्रेष्ठ कहे गये हैं। ये सर्वश्रेष्ठ हैं। इसमें कोई शंका नहीं। जिस प्रकार नारियों के सनातन धर्म का अवलम्बन (आधार) उनकी पति- सेवा है, उसी प्रकार प्रजाजनों का आश्रय वह राजा है।

राजा-आश्रय सदा प्रजाजन। कोइ न गति राजा की उन बिन।।
राजा का बस एक धर्म है। प्रजा की सेवा दिव्य कर्म है।।

(4) राजा के बिना उस राज्य के प्रजाजनों की कोई गति नहीं होती। राजा का बस एक ही धर्म है प्रजा की सेवा। यही उसका दिव्य एवं सर्वोच्च कर्तव्य कर्म है।

दो0 : भूखे की आँखें सदा, देखैं भोजन को।
हो कुकर्म यदि ना मिले, कहा दोष उसको?।। (160)

दो0 : हे पुत्र! भूखे की आँखें सदा भोजन की ओर टकटकी लगाकर देखती (ताकती) रहती हैं। यदि उसे भोजन ना मिले तो फिर उससे कुकर्म हुआ ही, - ऐसा समझना चाहिये तो फिर उस क्षुधापीड़ित का दोष कैसे सिद्ध हुआ? (160)

चौ0:क्षुधा से आत्मा एकहु मरती। तो उस राष्ट्र की उन्नति रुकती
राष्ट्र शत्रु-हाथों में जाता। अरु विद्रोह प्रकट हो आता।।

चौ0 : (1) नीतिवान श्री अग्रसेन जी कहते हैं कि - हे ज्येष्ठ! किसी राज्य में क्षुधा से पीड़ित होकर वहाँ की एक भी आत्मा यदि मृत्यु को प्राप्त हो जाती है तो उस राष्ट्र की उन्नति अर्थात् उस राष्ट्र का चहुँमुखी विकास रुक (अवरुद्ध हो) जाता है। राष्ट्र शत्रुओं के हाथों में चला जाता है और वहाँ विद्रोह प्रकट हो उठता है।

बिन रोजी यदि पाप करे जन। तो राजा दोषी है राजन।।
पूर्व आचरण जिन्ह नहिं निंदित।बिना जीविका यदि वे चिंतित।।

(2) हे पुत्र! बिना रोजी वाले लोग यदि पाप करने लग जाते हैं तो उस राज्य के राजा को दोषी समझा जाना चाहिये। जिन लोगों का पूर्व का आचरण निंदित नहीं रहा हो और यदि वे बिना जीविका के चिंतित रहते हैं

गुप्त रूप से पता लगाओ। भरण-पुषण उपलब्ध कराओ।।
दुख में उसका कोइ न साथी। जैसे दुलहा बिन बाराती।।

(3) तो राजा को गुप्त रूप से उन लोगों का पता लगाकर उनके भरण-पोषण को उन्हें उपलब्ध कराना चाहिये। उस विद्वान का उसकी उस दुख की घड़ी में कोई साथी नहीं होता जैसे कि दूल्हे के बिना बारात का कोई अर्थ नहीं होता।

छिपकर उसके बनो सहायक। यहि 'उपकरौ हीन उपक्क्रम'।।
विद्वानों की सेवा करिये। धन-सम्पति से झोली भरिये।।

(4) आदर्श राजा को चाहिये कि वह छिपे रहकर उस विद्वान का सहायक बने। हे पुत्र! यही 'उपकारौहीनउपक्रम' रूपी धर्म कहलाता है। राजा को चाहिये कि वह सदैव ऐसे विद्वानों की सेवा करे साथ ही वह राजा ऐसे विद्वतजन रूपी धन-सम्पत्ति से सदा अपनी झोली भरता रहे।

दो0 : योगक्षेम कर्तव्य बुधि, से सहयोग करहु।
मानहु उत्तम कर्म इहि, स्वाभिमानि सेवहु।।क।।

दो0 : (क) हे विभु! विद्वानों (प्रजा जनों) का योगक्षेम एवं कर्तव्य बुद्धि से सहयोग करना चाहिये। यही उत्तम कर्म माना गया है। हमें सदा ऐसे स्वाभिमानिओं की सेवा करनी चाहिये।

अब से जो भी आएगा, अग्रवंश राष्ट्रहिं।
एक निष्क इष्टिक सहित, जाकर देंय उहहिं।।ख।

(ख) श्री अग्रसेन अग्रवंश का मुख्य धर्म घोषित करते हुए घोषणा करते हैं कि अब से जो भी इस आग्रेयगणराज्य में आयेगा तो यहाँ का प्रत्येक निवासी उस आगन्तुक के पास जाकर श्रद्धाभक्तिपूर्वक उसे एक ईंट और एक रुपया भेंट करेगा।

चैत्र प्रतिपदा शुभ दिवस, जब समता जागी।
अग्रसेन सिद्धांत से, थिर जड़ता भागी।। ग।।

(ग) जैमिनी ऋषि कहते हैं—हे परीक्षितनंदन ! यह चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा का शुभ दिन था जब समत्व भाव की ज्योति जागी। अग्रदेव अवतारी भगवान श्री जग्रसेन जी के द्वारा स्थ्ज्ञापित इस विषमता निवारक समता के सिद्धांत से तीन प्रकार की स्थायी जड़ता—अर्थात् निध नता, आवास का अभाव तथा व्यापार हेतु धन की अनुपलब्धता—जैसे दोषों का निराकरण सम्भव हो सका।

एक कुटंब हो जाएगा, समत् भाव जागइ।
तब निर्धन कोई नहीं, सबही बड़ भागइ।।घ।।

(घ) हे पुत्र! ऐसा करने से वह राष्ट्र एक कुटुम्ब बन जाएगा। वहाँ सर्वत्र समत्व भाव जागृत हो जाएगा। तब वहाँ कोई निर्धन नहीं होगा। वहाँ के समस्त जन बड़भागी कहलाने लगेंगे।

सारी पृथ्वी मम कुटुँब, समता का सिद्धान्त।
अग्रसेन जी ने दिया, पूर्वहिं जब जग भ्राँत।।ङ।।

(ङ) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि पूर्व में जब यह सारा जगत भ्रांति में पड़ा हुआ था तब महाराजा अग्रसेन जी ने ही इस समता के सिद्धान्त से सारे संसार को परिचित करवाया था।

कर्म सदा करते रहो, समत भाव से नित्त।
सारे सुख मिल जाएँगे, "विष्णुदास" धरु चित्त।।च।।(161)

(च) हे पुत्र! समता के भाव में आस्था रखते हुए तुम सदा अपना कर्म करते रहो। विष्णुदास कहते हैं कि ऐसा करने से सबको सु:खों की प्राप्ति हो जाएगी। मेरी यह बात आप सदा अपने मन में धारण कर लो। (161)

अध्याय तेईस 'समाजवाद' पूर्ण हुआ।

:::::

卐 अध्याय चौबीस (यात्रा) 卐

चौ० : जैमिनि बोले जनमेजय से। अग्र-चरित को सुनो ध्यान से।
श्रद्धावानहु अरु दानी हू। मानदातहू जितक्रोधाहू।।

चौ० : (1) जैमिनी ऋषि नृप जनमेजय से कहते हैं कि इस महान अग्र-चरित को आप ध्यानपूर्वक सुनिये। महाराजा अग्रसेन जी श्रद्धावान थे। वह दानी, मानदाता तथा क्रोध को जीतने वाले थे।

आर्ष-पुरुष सम व्यवहारी थे। साक्षात् करुणा की मूर्ती थे।।
त्रस्त विषादग्रस्त उद्विग्नहु। व्याधिग्रस्त दुर्बल भयभीतहु।।

(2) आर्यपुरुष की तरह वह सद्व्यवहार करने वाले थे। हे नृप! अग्रसेन जी साक्षात् करुणा की मूर्ति थे। त्रस्त, विषाद-ग्रस्त, उद्विग्न, व्याधि-ग्रस्त, दुर्बल, भयभीत

पीड़ित और हरण भए जन को। धैर्य बँधाते सबके मन को।।
वे नित धर्म आचरण करते। अनुमोदन चर्चा उर भरते।।

(3) पीड़ित तथा जिसका सब कुछ हर लिया गया हो ऐसे लोगों के मन को श्री अग्रसेन सदा धैर्य बँधाते थे। वह नित्यधर्म का आचरण करते थे। वह सदा समस्याओं का अनुमोदन करके उन पर सामूहिक चर्चा करके उसका उचित निर्णय ढूँढते थे।

प्रतिगृह से वे नित ही बचते। धर्मभाव कर्मन सँग जँचते।।
अग्रसेन में नित्य दान था। संग सरलता परम ज्ञान था।

(4) वह प्रतिगृह से बचते थे। श्री अग्रसेन अपने धर्म के प्रति स्थायीभाव रखने तथा कर्म की तत्परता से ही जँचते थे अर्थात् शोभित होते थे। श्री अग्रसेन जी में नित्य दान विद्यमान था। साथ ही, उनमें सरलता तथा परम ज्ञान भी था।

उत्साहौ हंकारशून्यता। सत्य परम सौहार्द्र धीरता।।
तप शौचऽरु करुणा मृदु बचना। काऊ प्रति कभि द्रोह भाव ना।।

(5) श्री अग्रसेन जी में उत्साह, अहंकारशून्यता, सत्य, परम सौहार्द्र, धीरता, तप, शौच, करुणा, मृदु वचनयुक्त वाणी तथा किसी के प्रति कभी भी द्रोह के भाव का अभाव विद्यमान रहता था।

दो0 : 'सम' सद्गुण से युक्त थे, अग्रसेन महाराज।
यासों जन-जन के भये, अग्रसेन सरताज।।(162)

दो0 : हे राजन! महाराजा अग्रसेन 'सम' रूपी सद्गुण से युक्त थे। इसीलिये वह शीघ्र ही जन-जन के सिर के ताज अर्थात सिरमौर और मुकुट बन गये। (162)

चौ0 : द्वापर अन्तहिं धर्म क्षीण हए। लोग काम क्रोधादिक वश भए।।
कलियुग का तब हुआ आगमन। तातें मानव गुण विपरीतन।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि यह द्वापर युग की अन्तिम बेला था। धर्म क्षीण होने लगा था। लोग काम, क्रोध आदि के वश में होने लगे थे। तभी कलियुग का आगमन हो आया जिस कारण मानव-गुण विपरीत होने लगे।

कहिं चोरों से अस्त्र-शस्त्र से। राजाओं के निज द्वन्द्वन से।।
क्षुधापीड़ितन उपद्रवन से। कहिं आपस के भय कारन से।।

(2) कहीं तो चोरों से, कहीं अस्त्र-शस्त्र से, कहीं राजाओं के आपसी झगड़ों से, कहीं भूख से उत्पन्न उपद्रवों से, तो कहीं आपस में भयभीत रहने के कारण से

कई राज्य पुर लगे उजड़ने। कलि-प्रभाव से लगे सिमटने।।
ब्राह्मण नष्ट भ्रष्ट अति हो रहे। देवालय मठ-मंदिर उठ रहे।।

(3) बहुत से राज्य और नगर उजड़ने लगे। कलियुग के प्रभाव से सभी कुछ सिमटने लगा। ब्राह्मण नष्ट-भ्रष्ट होने लगे। देवालय, मठ और मन्दिर भी उजड़ने लगे।

श्रद्धा सँग विश्वास छिप रहा। प्राणिन्ह हाहाकार मच रहा।।
लोगों में नहिं धर्म रह गया। शौचभाव हू लुप्त हो गया।।
पुत्र पिता को मारन लागे। पति हू पीड़ित होवन लागे।।

(4) श्रद्धा और विश्वास छिपने लगा। प्राणियों में सर्वत्र हाहाकार भी मचने लगा था। अब लोगों में धर्म का महान भाव भी नहीं रह गया था। प्राणियों में शौच भाव भी लुप्त हो रहा था। पुत्र पिता को मारने लगे तो पति भी पत्नी द्वारा पीड़ित होने लगे।

दो0 : अधर्मों निंदित कर्म से, विपुल अर्थ था आत।
और प्राप्त पुनि-पुनि करूँ,अभिलाषा मन भात।। (163)

दो0 : हे राजन्! केवल अधर्म और निंदित कर्मों से ही विपुल धन की प्राप्ति होती थी। सबके मन में एक ही अभिलाषा रहती थी कि मैं पुनः और, और, और प्राप्त करता ही जाऊँ। (163)

चौ0 : कृतघ्न नास्तिक पापाचारी। अऽचरण निर्मयादी भारी।।
घर में चले न वृध दम्पति की। करैं चिरौरी नित पुत्रों की।।

चौ0 : (1) कलियुग के प्रभाव का वर्णन करते हुए जैमिनी ऋषि कहते हैं कि लोग कृतघ्न, नास्तिक, पापाचारी, आचरण रहित तथा अपनी मर्यादाओं को भूलते जा रहे थे। घर में वृद्ध दम्पत्ति की नहीं चलती थी। बेचारे बूढ़े माता-पिताओं को अपने पुत्रों की नित्य चिरौरी करनी पड़ती थी।

भीख माँगकर जीवित रहते। पुत्र-वधू से पीड़ा सहते।।
धर्ममार्ग अवरुद्ध हो गया। भय दर्शन चहुँ ओरऽति भया।।

(2) ये वृद्ध दम्पत्ति भीख माँगकर अर्थात् बाहर के लोगों पर आश्रित रहकर जीवित रहने को मजबूर थे। ये बेचारे पुत्र और पुत्रवधू दोनों से पीड़ा सहते थे। कलि के प्रभाव से धर्म का मार्ग भी अवरुद्ध होने लगा था। चारों ओर भय ही भय दिखायी देने लगा था।

सोच-विचार किया ऋषिवर ने। कहा अग्र से फिर यों मुनि ने।।
इहि कालहि संक्रान्तीकालहिं। उचित प्रयास करो नृप धावहिं।।

(3) तब ऋषि गर्ग ने बहुत सोच-विचार किया। एक दिन मुनिश्री ने प्रिय अग्र से इस प्रकार कहा - हे राजन्! यह संक्रान्ति काल है। इस हेतु तुम्हें शीघ्र ही कुछ ना कुछ उचित प्रयास करना चाहिये।

अशांतिग्रस्त है पृथ्वी सारी। धर्म-शाँति आवश्यक भारी।।
नष्ट होत को बचाओ राजन! तुम धर्मी धर्मरक्षक राजन!।।

(4) हे महाराज! इस समय सारी पृथ्वी अशांति से ग्रस्त है। आज धर्म और शांति की बड़ी भारी आवश्यकता है। हे राज्य! इस नष्टप्राय पृथ्वी को बचाइये। हे राजन्! इस समय सारे संसार में आप ही तो सबसे बड़े धर्मी हैं। हे राजन्! आप धर्म के रक्षक हैं।

दो0 : धर्म-शांति हित साधने, निकल पड़े पुर से।
जन-जन को समझावते, मिलते प्रति उर से।।क।।

दो0 : (क) धर्म एवं शांति की (पुन:) स्थापना करने तथा सबका हित साधने के पवित्र उद्देश्य से श्री अग्रसेन जी पुरी से निकल पड़े। वह जहाँ-जहाँ जाते वहाँ वह हर व्यक्ति को समझाते थे। अग्रसेन जी हर वर्ण-सम्प्रदाय-रंग एवं धर्म के लोगों से मिलते थे।

दो0 : युद्ध महाभारत मरे, योद्धा आठ अरब।
स्त्रीयाँ विधवा भईं, अब क्या होगा रब ?।। (ख)

(ख) महाभारत के युद्ध में लगभग आठ अरब सैनिक मृत्यु को प्राप्त हुए थे। एक-दूसरे की ओर देखकर लोग परस्पर कहने लगे—हे प्रभु ! इन विधवा स्त्रियों का अब क्या होगा ?

दो0 : उन स्त्रिन के गर्भ में, पल रहे अनगिन वीर।
महाराज सोचन लगे, दूर हो कैसे पीर ? ।। (ग)

(ग) उन स्त्रियों के गर्भ में अनगिनत वीर्य पल रहे थे। महाराजाश्री सोचने लगे कि संसार से इस पीर को कैसे दूर किया जाय ?

धर्म-संस्थापन कर्म शुभ, धर्मदेव कीया।।
ख्याती त्रय लोकन भई, जन-जन सुख लीया।।घ।(164)

(घ) धर्म की संस्थापना का यह शुभ कर्म धर्मदेव ने शीघ्र सम्पन्न कर दिया। इससे अग्रसेन जी की ख्याति तीनों लोकों में जा पहुँची। अब संसार का हर प्राणी सुखी था। (162)

चौ0 : भू-यात्रा पर निकले राजा। पीड़ित जन के साधन काजा।।
सबसे पहले दुष्ट भगाए। शक सँग हूण दूर छितराए।।

(1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि—हे जनमेजय ! महाराजा अग्रसेन जी अपने राज्य को सुव्यवस्थित करने के उपरान्त संसार के पीड़ितजनों के कार्यों को साधने के लिए संसार की यात्रा पर निकल पड़े। यात्रा में सबसे पहले उन्होंने दुष्टों को मृत्युपुर की ओर भगाया। उसके बाद महाराजाश्री ने शक और हूणों को दूर-दूर तक छितरा दिया ताकि वे कभी एक न हो सकें।

आतातायिन्ह पामन लागे। बोले कृपा करो हतभागे।।
सबने सौगँध शुभ की लीन्ही।। समत् प्रतीक प्रभू ने दीन्ही।।

(2) आतातायी प्रभुश्री के पाँवों में गिरकर बोले—हे प्रभो ! हम हतभागियों पर कृपा कीजिए। जब उन आततायियों ने शुभ की सौगँध ली तब प्रभु ने उन्हें परखकर तथा भलीभाँति सोच-विचारकर समता के प्रतीक एक ईंट और एक रुपया उन्हें भेंट किया अर्थात् अपने राज्य में आश्रय प्रदान कर दिया।

विधिवन्ह दशा देख नृप सोचहिं। उचित व्यवस्था कैसे होवहिं।।
वृद्ध बुद्धि श्री नृप समझाए। संकरता परिणाम बताए।।

(3) ऋषिवर बोले—हे जनमेजय ! विधवाओं की कु-दशा को देखकर श्री अग्रसेन जी सोचने लगे कि इनकी उचित व्यवस्था कैसे हो ? तब महाराजाश्री ने राष्ट्र के विभिन्न भागों में बस रहे वृद्धों (प्रधानों) को, बुद्धिमानों को तथा श्रेष्ठियों को समझाया और वर्णसंकरता से उत्पन्न दोषरूपी कारणों से परिचित करवाया।

घर-घर सबको प्रभू बसाया। रोवत मन बहुभाँति हँसाया।।
दूजि यातरा फिर प्रभु कीन्ही। नई सीख जनता को दीन्ही।।

(4) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि—हे जन्मेजय ! प्रभुश्री अग्रसेन जी ने उन अरबों विधवा स्त्रियों की व्यवस्था घर-घर में बसाकर कर दी और इस प्रकार प्रभु ने रोते हुए मनों को भली-भाँति हँसाया। कुछ वर्षों के बाद प्रभु ने दूसरी बार यात्रा प्रारम्भ की जिसमें जिसमें एक नई सीख उन्होंने विश्व की जनता को दी।

दो0 : उप पत्नी के रूप में, रखो नारी सँग पुत्र।
सुख समाज छा जाएगा, संग पिता अरु पुत्र।। (165)

अर्थ—श्री अग्रसेन जी जन-जन से बोले—आप अपने साथ पत्नी के रूप में न सही किन्तु सम्मान प्रदान करने के लिए उप पत्नी के रूप में पुत्र-पुत्री सहित इन्हें अपने साथ रख लें क्योंकि पुत्र को पिता का नाम मिल जायेगा और समाज में सुख ही सुख छा जाएगा अर्थात् वर्णसंकरता रूपी राक्षस जन्मने से पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। (165)

चौ0 : तीजी यात्रा अब प्रभु आए। नई व्यवस्था जग में लाए।।
विधिवन्ह संतति भई युवाना। चंचल मन कत सुनै न काना।।

(1) ऋषि कहते हैं—कि अब श्री अग्रसेन जी ने विश्व की तीसरी बार यात्रा प्रारम्भ की। इस यात्रा में प्रभु जगत में एक नई व्यवस्था लेकर आए। महाभारत के युद्ध में बच रहीं विधवा स्त्रियों की सन्तति अब युवावस्था को प्राप्त हो चुकी थी। इस अवस्था में चंचल मन किसी की नहीं सुनता। वह तो बस अपनी मनमानी करने लग जाता है।

वीर युवा सेना को दीये। शिक्षित ज्ञानक्षेत्र में कीये।।
चतुर वैश्य कर्मन सँग नाचैं। सेवाभावी सेवा बाँचैं।।
युवतिन के घर बार बसाए। अग्रसेन जन-जन उर छाए।।

(2) जैमिनी ऋषि कहते हैं—कि हे जन्मेजय ! श्री अग्रसेन जी ने युवा पीढ़ी में से ऐसे युवा जो वीर थे उन्हें आग्रेय गणराज्य की सेना में भर्ती कर

लिया, शिक्षितों को शिक्षा के क्षेत्र में लगाकर समाज को ज्ञान, देशभक्ति एवं अच्छे कार्य सिखाने जैसे क्षेत्र में नियोजित कर दिया, ऐसे युवा जिनकी बुद्धि चतुर (प्रखर) थी उन्हें महाराजाश्री ने वैश्य कर्म में लगाकर नाचने का अवसर प्रदान किया तथा जो युवा सेवा-भाव से युक्त थे उन्हें सेवा-सम्बन्धी क्षेत्र में लगा दिया। जगत पिता श्री अग्रसेन जी ने युवतियों के लिए योग्य वर तलाशकर उनका विवाह करा दिया। जगत हितैषी इन कार्यों को सम्पन्न करके महाराजा श्री अग्रसेन जन-जन के उर में छा गए अर्थात् भगवान बन गये। कवि का मत है कि श्री अग्रसेन जी भगवान तो थे ही, यह तो श्री अग्रदेव की मानव रूप में लीला मात्र है।

कलि-प्रभाव से ग्रसित प्रजा को। धर्मुपदेश कहत जनता को।।
प्रजा की रक्षा भी नृप करते। भलीभाँति सबके दुख हरते।।

चौ0 : (3) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि हे जनमेजय! कलियुग के प्रभाव से दुखी प्रजा को तथा हर राज्य की जनता को श्री अग्रसेन जी उसी के धर्मानुसार उपदेश देने लगे। श्री अग्रसेन राजा रूप में प्रजा की रक्षा करते थे। महाराजा अग्रसेन भलीभाँति प्रजाजनों के दुखों को हरते थे।

दूर-दूर से सुनने आते। पुनि-पुनि सुनइ न तौउ अघाते।।
भू-यात्रा कीन्ही त्रय बारा। धर्म-कर्म अगदेव सँवारा।।

(4) महाराजा अग्रसेन जी के नीतिपरक समत्वाधारित निष्पक्ष उपदेशों को सुनने के लिये लोग दूर-दूर से सुनने आते थे। अग्रसेन जी के उपदेश इतने सारगर्भित होते थे कि लोग उन्हें बार-बार सुनकर भी तृप्त नहीं होते थे। श्री अग्रसेन जी ने सम्पूर्ण पृथ्वी की तीन बार यात्रा की लेकिन यह सत्य है कि श्री अग्रदेव जी ने सभी के धर्म एवं कर्म को पूरी तरह सँवार दिया।

लोक हुआ जब पुनः सुव्यवस्थित। मर्यादित अरु पूर्ण सुरक्षित।।
अग्र "महात्मा" बनकर आये। राज्य-सिंहासन पर पधराये।।

(5) यह लोक जब एक बार पुनः सुव्यवस्थित, मर्यादित तथा सुरक्षित हो गया तब श्री अग्रसेन 'महात्मा' के रूप में प्रसिद्ध होकर वापस आये और पुनः आग्रेयपुरी के राज सिंघासन पर आरूढ़ हुये।

नागसुता आरती उतारी। प्रजा मुदित हिरदय अति भारी।।
मुनि नेत्रन आँसू भर लाए। धर्मदेव सों वचन कहाए।।

(6) नागसुता महारानी माधवी ने महात्मा श्री अग्रसेन की आरती उतारी। प्रजा प्रसन्न हुयी। सबके हृदय में भारी प्रसन्नता हुयी। मुनि गर्ग के नेत्रों में आँसू भर आये। तब मुनि गर्ग धर्मदेव अग्रदेव अग्रसेन जी से इस प्रकार वचन कहने लगे –

दो0 : सुखमय प्रत्यक्ष युक्त जो, आत्मा के साक्षित्व।
अछल सर्वहित धर्म वो, तुममें प्रऽतिष्ठित्व।।क।।

दो0 : (क) हे महात्मन! सबको सुख देने वाला तथा जो आत्मा के साक्षित्व से युक्त एवं प्रत्यक्ष है, वह अछल एवं सर्वहितकारी धर्म अब तुममें प्रतिष्ठित हो गया है।

अग्रसेन सामान्य नहिं, अग्र असाधारण।
अग्र महात्मा धर्म हैं, अग्र ही जगतारण।।ख।।(166)

(ख) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि श्री अग्रसेन जी कोई सामान्य व्यक्ति नहीं है। महाराजा अग्रसेन असाधारण व्यक्ति हैं। श्री अग्रसेन जी महात्मा हैं। श्री अग्रसेन जी साक्षात् धर्म हैं। श्री अग्रसेन जी ही इस जगत के तारणहार हैं। (166)

अध्याय चौबीस 'यात्रा' पूर्ण हुआ।

:::::

(दोहे के अन्त में गाइये)
अग्रवर अग्रसेन पद गहि शरणम्
लक्ष्मी हरि ओम जय विश्वेश्वर
जय करुणेश्वर जय समतेश्वर

卐 अध्याय पच्चीस (राज्य के अधिकार) 卐

दो0 : यथा काम उत्साह अरु, यथा काल सुःखम्।
यथा धर्म अनुकूलनम्, अग्रहि सर्वोत्तम्।।

दो0 : जिस समय जैसा काम रहा, जैसा उत्साह रहा, जैसा काल रहा, जैसा सुख रहा, जैसा धर्म रहा तथा जैसी अनुकूलता रही श्री अग्रसेन जी सर्वोत्तम रहे।

चौ0 : तुष्ट किया यज्ञों से देवन। श्रद्धामय कर्मों से पितरन।।
यथायोग्य अनुग्रह से दीनन। भोग्य वस्तु सैं सर्व प्रजाजन।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि हे जनमेजय! महाराजा अग्रसेन ने यज्ञों से देवताओं को संतुष्ट किया। वह अपने श्रद्धायुक्त कर्मों से अपने पितरों को तृप्त करने के लिये नित्य शुभ कर्म करते थे। वह यथायोग्य अनुग्रह से दीन-दुखियों को तथा भोग्य वस्तुओं से प्रजाजनों को तुष्ट करते थे।

पालन करते प्रजा इन्द्र सम। विषयहु सर्वाधीन अग्र नम।।
मानव धर्म आचरण करते। उत्तम सुख उपभोगहु करते।।

(2) महात्मा अग्रसेन अपनी प्रजा का इन्द्रदेव की तरह पालन करते थे। संयम से युक्त श्री अग्रसेन जी ने समस्त विषयों को अपने अधीन करते हुए उत्तम सुख (आत्मिक) का उपभोग करते थे।

इक सौ आठा हुए अग्र जब। स्नेहीजन सों बोले नृप तब।।
राज्य-कर्म-पालन मैं कीया। कैसे ? सब जानैं मम हीया।।

(3) जब इन पृथ्वीसम्राट की अवस्था एक सौ आठ वर्ष की हो गई तब एक दिन वह अपने स्नेहीजनों से इस प्रकार बोले- हे भद्रजनों। मैंने इस महान आग्रेयगणराज्य का पालन किया है। यह कार्य मैंने कैसे किया? आप सब मेरे हृदय की इस भावना को जानते ही हैं।

लोक-साधना करते करते। जर्जर तन मम हुआ सर्वथे।।
वानप्रस्थ मैं लेवन चाहूँ। संग राजरानी वन जाहूँ।।

(4) लोक-साधना करते-करते मेरा यह शरीर सर्वथा जर्जरता को प्राप्त हो चुका है। मैं अब वानप्रस्थ ग्रहण करना चाहता हूँ। हे आत्मीय जनों! मैं आपका यह दास अग्रसेन अपनी प्रेरणा एवं आपके राज्य की महारानी देवी माधवी के साथ वन जाना चाहता हूँ।

दो0 : पुण्य तपस्या अब करैं, हेतु आत्म कल्यान।
वन विचरत भी पाओगे, हम आशीष महान।।(167)

दो0 : हे सहचरों! अब हम दोनों स्व-आत्म-कल्याण हेतु पुण्य तपश्चर्या में रत होना चाहते हैं। (उनके उदास मुख देखकर) और हाँ, हमारे वन में विचरण करते हुए भी तुम हमारा महान आशीष प्राप्त करते रहोगे। (नोट: जनता की दृष्टि से श्री अग्रसेन प्रदत्त आशीर्वाद महान था जबकि अग्रसेन जी की दृष्टि से वह तुच्छ था।) (167)

चौ0 : राज्य-सिंहासन रिक्त न रहता। हर ज्ञानी शास्त्री यहि कहता।।
राज्य हितार्थे किसे बनायें। अब 'युवराज' विचार बतायें।।

चौ0 : (1) श्री अग्रसेन अपने प्रियजनों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि राज्य-सिंहासन रिक्त नहीं रहा करता। शास्त्रों एवं ज्ञानीजनों का यही कथन है। अब प्रश्न यह है कि राज्य के हित को दृष्टिगत रखते हुए इस महान आग्रेयगणराज्य का युवराज किसे बनाया जाये?

एकपक्ष-निर्णय से अच्छा। सर्व-विचार-अमल-सद्इच्छा।।
हे राजन! तुम समभावी हो। जनहितकारी मृदुभावी हो।।

(2) हे प्रियजनों! एकपक्षीय निर्णय की अपेक्षा समस्त विद्वानों एवं शुभचिन्तकों के विचार जानकर फिर उस निर्णय पर अमल किया जाना मेरे विचार से अधिक उचित है। प्रजाजन बोले! हे राजन्! आप समता के भाव युक्त हैं। आप जनहितकारी तथा मृदुभाषी हैं।

पुत्र आपके सभी आप सम। आपका निर्णय मानेंगे हम।।
आप बनाना चाहो राजा। मम पुत्रन में से युवराजा।।

(3) हे महाराज! आपके सभी पुत्र आपके समान हैं। हम आपका ही निर्णय मानेंगे महाराज। श्री अग्रसेन तनिक मुस्कराकर बोले- अच्छा, आप मेरे पुत्रों में से ही युवराज बनाना चाहते हो।

तुरत समर्थन किया सबन ने। हर्ष-ध्वनी की श्रेष्ठ जनन ने।।
विभु बोले पित! हमें न छोड़ो। हमसे ऐसे मुख ना मोड़ो।।
कैसे जी पायेंगे तुम बिन? मर जायेंगे सच में तुम बिन।।

(4) सभी ने तुरन्त इस बात का समर्थन कर दिया। श्रेष्ठजनों ने हर्ष-ध्वनि कर दी। ज्येष्ठ पुत्र विभुसेन बोले- हे पिताश्री! हमें मत छोड़िये। आप हमसे इस प्रकार मुँह मत मोड़िये। हे तात! आपके बिना हम कैसे जी पायेंगे? मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि आपके बिना हम तो मर ही जायेंगे।

दो0: तप करना मन चाहता, यह ही सर्व उचित।
शास्त्र कथन सब त्यागकर, विचरहु वन निज हित।। (168)

दो0 : श्री अग्रसेन कहने लगे - हे पुत्र! हमारा मन अब तप करने की इच्छा रखता है। हमारे लिये यह सब प्रकार से उचित भी है। शास्त्रों के निर्देशानुसार प्रौढ़ावस्था में मनुष्य को सांसारिक मोह-माया त्याग करके निज आत्मोद्धार की लालसा से वन में विचरण करना चाहिये। (168)

चौ0 : आज्ञा मानै जो पितु मातहिं। हित चाहे अरु पथ आचरणहिं।।
पुत्रोचित व्यवहार करे जो। सच्चा पुत्र कहावै नृप! वो।।

चौ0 : (1) अग्रदेव अवतारी श्री अग्रसेन जी कहते हैं कि हे पुत्र! जो पुत्र अपने माता-पिता की आज्ञा मानता है तथा (उभयपक्ष का) अपने हित की अभिलाषा से वह उनके द्वारा दिखलाये हुए रास्ते पर चलता है तथा जो पुत्रोचित व्यवहार करता है, हे राजन्! वो सच्चा पुत्र कहलाता है।

सबने चयन किया विभु पुत्रहिं।सँग अभिषेक राज्य कर सौंपहिं।।
आग्रे पर अधिकार तुम्हारा। सीमान्तों पर नहीं तुम्हारा।।

(2) तब, सबने विभु का चयन किया और तुरन्त ही उनका राज्याभिषेक करके आग्रेयगणराज्य की सत्ता उनके हाथों में सौंप दी। पूर्व महाराज श्री ने आग्रेय गणराज्य की शासन-व्यवस्था के संतुलन को दृष्टिगत रखते हुए निर्देश देते हुए कहा - हे ज्येष्ठ पुत्र विभु! इस आग्रेयपुरी की राजधानी पर तुम्हारा अधिकार होगा जबकि इसके सीमांत प्रदेशों पर तुम्हारा अधिकार नहीं होगा।

उन पर तुम्हरे भ्रातागण का। यह विचार भूपति! जन जन का।।
हे पुत्रों! अब सुनो ध्यान से। 'नृप-कर्तव्य-धर्म' को मन से।।

(3) उन पर तुम्हारे अन्य सत्रह भाइयों का अधिकार होगा। और हाँ, हे भूपति श्री विभुसेन! यह विचार मुझ अकेले का नहीं है। यह विचार इस राज्य के हर एक नागरिक का है। हे पुत्रों! अब तुम ध्यान से राजा के कर्तव्य और अधिकार के विषय में सुनो -

शक्तिहीन ही क्रोध करे हैं। शक्तीशाली क्षमा करे हैं।।
रूपवान से दुष्ट जले हैं। निर्धन को नहिं धनी भले हैं।।
आलसि कर्मनिष्ठ से जलता।अधार्मिक धार्मिक से नहिं मिलता।।

(4) शक्ति से हीन व्यक्ति ही क्रोध करता है तथा शक्ति से युक्त व्यक्ति क्षमा करता है। रूपवान से दुष्ट जलते हैं तथा निर्धन के लिये धनवान व्यक्ति भले नहीं होते। आलसी कर्मनिष्ठ से जलता है और अधार्मिक की धार्मिक से कभी नहीं निभती।

सो0 : विभु! रख बात मना, यह प्रभाव कलिकाल का।
कबहुँ अनादर ना, क्रोध कबहुँ नाही करहु।। (169)

सोरठा : पुत्र विभु! तुम मेरी यह बात तुम अपने मन में रख लो कि यह कलियुग का समय है। अतः तुम ना तो कभी किसी का अनादर करना और ना ही कभी किसी पर क्रोध ही करना।(169)

चौ0 : दया मित्रता हर प्राणी सँग। दान मधुर वाणी हू प्रति सँग।।
वशीकरण का मंत्र हमारा। तीनों लोकों में अति प्यारा।।

चौ0 : (1) और हे विभुसेन! हर प्राणी के साथ तुम दया एवं मित्रता का ही भाव रखना। सदा दान देते रहना तथा प्रत्येक प्राणी के साथ मधुर वाणी में बातें करना। हमारा यह वशीकरण का मंत्र तीनों लोकों में अत्यन्त प्यारा है।

कभी कठोर वचन मत बोलो। सान्त्वनायुक्त वचन मृदु बोलो।।
पूज्यों का सत्कार करो प्रिय। यथाशक्ति दो लेव न कभि प्रिय।।

(2) कभी कठोर वचन मत बोलो। सदा सान्त्वनायुक्त मृदुवचन ही बोलो। हे प्रिय! जो पूज्यनीय हैं उनका सदा सत्कार करो। जहाँ तक सम्भव हो सके यथाशक्ति दो। लेने की लालसा कभी मत रखो।

भ्राता तुम्हरे सभी योग्य हैं। प्रेम से रहना अती योग्य हैं।।
ब्रह्मचर्य ही परम धर्म है। जो तुममें निश्चित दीखत है।।

(3) हे पुत्र विभु! तुम्हारे समस्त भ्रातागण तुम्हारी ही तरह योग्य हैं। तुम इनके साथ सदा प्रेमपूर्ण व्यवहार रखना क्योंकि ये सब अत्यन्त योग्य हैं। ब्रह्मचर्य ही परम धर्म है जो निश्चित ही तुम्हारे अन्दर दिखायी देता है।

जब हितकारी कार्य करो तुम।ब्रह्म को आगें रख करना तुम।।
प्रोहित धर्मज जित महँ रहता। स्थिर विजयभाव तित लहता।।

(4) हे पुत्र! जब भी तुम कैसा भी हितकारी कार्य करो तो ब्रह्म को सामने रखकर ही करना। हे पुत्र! कुलपुरोहित तथा धर्मयुक्त महात्मा का जहाँ निवास होता है वहाँ सदा स्थिर विजयभाव लहलहाता है।

दो0 : अहंकार करना नहीं, चित स्थिर रखना।
पर दोषन न उभारना, मृदु वाणी चखना।।(170)

दो0 : और हाँ, तुम कभी अहंकार मत करना। अपने चित्त को सदैव स्थिर रखना। दूसरों के दोषों का गुणगान कभी मत करना। सदा मृदुवाणी ही चखना और चखाना। (170)

चौ0 : प्रति विषयों पर दृष्टी रखना। शुद्ध चित्त बुद्धी मन रखना।।
मंत्रणा करना श्रेष्ठ द्विजन सँग। हितकारी नि:स्वार्थी धी संग।।

चौ0 : (1) हे विभुसेन! राज्य की हर घटना (विषय) पर पैनी दृष्टि रखना। अपने बुद्धी तथा अपने मन को सदा शुद्ध रखना। श्रेष्ठ द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य) के साथ मंत्रणा करते रहना। विशेषतया उन लोगों के साथ जो सर्वहित की सोच रखने वाले, निस्वार्थी और बुद्धिमान हों।

यदि राजा संकट में आवे। कैसे भी हो मुक्ती पावे?।।
फिर समर्थ होने पर करई। धर्मनुकूल आचरण प्रियई।।

(2) यदि राजा कभी संकट में पड़ जाये तो कैसे भी हो वह सबसे पहले स्वयं को उस संकट से मुक्त करे और जब वह पुन: सामर्थ्यवान हो जाए तो वह उन प्रिय लगने वाले धर्म के अनुकूल आचरण करने में वह लग जाये।

कष्ट बिना कल्याण न होता।दुख बिन सुख का भास न होता।।
यदि संकट में जीवित रहता। सतत यत्न भाग्योदय करता।।

(3) हे पुत्र! कष्ट का अनुभव किये बिना कल्याण नहीं होता तथा दुख के बिना सुख का भास भी नहीं होता। यदि कोई राजा संकट में जीवित रह जाता है तो उसके द्वारा किये जाने वाले सतत् प्रयत्न से उसके भाग्य का उदय होना निश्चित है।

यह तन सदा न स्थिर रहता। यौवन में होती चंचलता।।
लक्ष्मी कभी कहीं ना स्थिर। यश से प्राणी होता स्थिर।।

(4) हे पुत्रों! यह तन सदा स्थिर नहीं रहने वाला है। यौवन में चंचलता का होना स्वाभाविक है। लक्ष्मी कभी भी कहीं भी अधिक समय तक स्थिर नहीं रहती। प्राणी केवल अपने यश से ही स्थिर रह सकता है।

दो0 : कर्म करैं हम कौन सा, कीर्ति मिले इहि लोक।
उत्तम सुख भी प्राप्त हों, दूर हो जासों शोक।। (171)

दो0 : अब प्रश्न उठता है कि हम ऐसा कौन-सा कर्म करें जिससे हमें इस लोक में कीर्ति प्राप्त हो सके। साथ ही हमें उत्तम सुख भी प्राप्त हो सकें जिससे सबके शोक दूर हो सकें। (171)

चौ० : बुद्धी से ही धन ऐश्वर ना? मूर्खता से ही दरिद्रता ना।।
सत्य धर्म दम पवित्रता सँग। दया और नित मृदुवाणी सँग।।

चौ० : (1) हे पुत्र विभु! केवल बुद्धि से ही धन और ऐश्वर्य की प्राप्ति हो ऐसा भी नहीं है। मूर्खता से ही दरिद्रता आती हो ऐसा भी नहीं हो। तुम सदा सत्य, धर्म, दम, शौच (पवित्रता), दया और नित्य मृदुवाणी से युक्त रहना।

कभी मित्र से द्रोह न करना। इनसे सदा कोष निज भरना।।
लोक-चक्र के इस वृतांत को। विदुजन जानैं इस रहस्य को।।

(2) मित्र से द्रोह कभी मत करना बल्कि सच्चे मित्रों से अपना कोष भरते ही रहना। हे पुत्रों! लोकचक्र के इस वृतांत एवं रहस्य को कोई विद्वान ही जान सकता है।

बुद्धी से भय दूर है होता। तप से श्रीपद प्राप्त है होता।।
गुरु-सेवा से ज्ञान मिलत है। सदाचार से शांति खिलत है।।

(3) बुद्धि से भय का निराकरण सम्भव है। तप से ही श्रीपद की प्राप्ति होती है। (सद्) गुरु की निःस्वार्थ सेवा से ज्ञान प्राप्त होता है। सदाचार से शांति का फूल खिलता है।

विनम्रता से अपयश नाशन। परऽक्रम से नित विनिष्ट नाशन।।
क्षमा क्रोध का नाश करे है। दुर्लक्षण आचार हरे है।।

(4) विनम्रता से अपयश का नाश होता है। पराक्रम से स्थायी विनाश नष्ट होता है। क्षमा क्रोध का नाश करता है जबकि सदाचार दुर्लक्षणों का हरण करने में सामर्थ्यवान है।

दो० : यत्न से रक्षा कीजिये, सदाचार की वत्स!।
धन तो आवत जात है, फिर क्यों चिंता वत्स।।क।।

दो० : (क) हे वत्स! मनुष्य को यत्न से अपने सदाचार की रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि धन तो आता-जाता है। फिर इसकी चिंता क्यों की जाये पुत्र?

बिनु धन क्षीण न होवता, जन जु सदाचारी।
सदाचार से भ्रष्ट जो, नष्ट होत भारी।।ख।। (172)

(ख) जो व्यक्ति सदाचार से युक्त है किन्तु धन से हीन है उसका विनाश नहीं होता। इसके विपरीत जो प्राणी सदाचार से रहित है उसे उसके पूर्ण विनाश से कोई नहीं बचा सकता अर्थात् उसका सम्पूर्ण विनाश होना निश्चित है – ऐसा समझना चाहिये। (172)

चौ0 : धन से थोड़ा या बिल्कुल नहिं। सदाचारमय जो है श्रेष्ठहि।।
यश को भी वे प्राप्त हैं करते।फिर तुम क्यों नहिं झोली भरते?।

चौ0 : (1) हे पुत्र! धन से युक्त प्राणी थोड़ा श्रेष्ठ कहलाता है अथवा वह बिल्कुल भी श्रेष्ठ नहीं कहलाता है किन्तु जो व्यक्ति सदाचार से युक्त है, यथार्थ में वो ही श्रेष्ठ कहलाता है। सदाचारी व्यक्ति ही यशस्वी कहलाता है। तो फिर तुम इस सदाचार रूपी श्रेष्ठ धन से अपनी झोली क्यों नहीं भर लेते ?

जो जन उत्तम कुल में जन्मा। या फिर वो अकुलीनहिं जन्मा।।
मृदुभावी अरु लज्जाशीलहि।सहस्त्रन कुलिनजनन सों श्रेष्ठहि।।

(2) भले ही कोई प्राणी उत्तम कुल में जन्मा हो या फिर वो अकुलीन वंश में जन्मा हो यदि वह मृदुभाषी और लज्जाशीलता के गुण से युक्त है तो उसे सहस्त्रों कुलीनजनों से श्रेष्ठ समझना चाहिये।

जो दुख जावन उपाय जाने। अद्य कार्य पूरण अज ठाने।।
छुटन कार्य पूरण जो रत है। उसको कभी न अपयश जग है।।

(3) जो व्यक्ति दुख दूर होने का उपाय जानता है, जो आज किये जाने वाले कार्य को आज ही पूर्ण करने की ठान लेता है, जो छूट गये काम को पूरा करने में लगा रहता है– ऐसे व्यक्ति को संसार में कभी अपयश की प्राप्ति नहीं होती।

अत्यन्त श्रेष्ठ भले हो कोई। दानी शूरवीर हू होई।।
तपसी बुद्धिमान बड़ भी हो। मैं ही मानी में मदमय हो।।
डरता जो अपमानित-भय से। श्री घर में हो स्थिर कइसे।।

(4) कोई व्यक्ति भले ही अत्यन्त श्रेष्ठ हो, वो दानी हो, शूरवीर हो, तपस्वी हो, बुद्धिमान हो, बड़ा हो, जगत में मैं ही सबसे बड़ा मानी (माननीय) हूँ के मद से यदि वह युक्त हो तथा जो अपमानित हो जाने के भय से डरता हो, भला उसके घर में श्री कैसे ठहर सकती है?

दो0 : अती श्रेष्ठ हैं आप यदि, प्रभावान हरि सम।
सँग में निर अभिमानता, श्री गृह जावे जम।।(173)

दो0 : भले ही आप अत्यन्त श्रेष्ठ हों, आप श्री विष्णुहरि के समान प्रभावान भी हों, साथ ही आप निर अभिमानिता के सद्गुण से युक्त हों तो आपके घर मे श्री देवी जम ही जाती हैं - ऐसा समझना चाहिये। (173)

चौ0 : मन वच कर्म से कार्य करे जो। खींचे अपनी ओर कार्य वो।।
वहि स्वरूप बन जाता उहही। सो नित हित कर्मन रत रहही।।

चौ0 : (1) हे विभु! जो राजा मन, वचन और कर्म से किसी कार्य को सम्पन्न करता है तो वह अन्य दूसरे कार्यों को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। कुछ समय बाद उसका वही स्वरूप बन जाता है। अतः राजा को चाहिये कि वह सदा जन-हितकारी कार्यों में लगा रहे।

जिहहि आचरण क्षमा धीरता। अहिंसा समता सत्य सरलता।।
निज कर्महिं कर्तव् आचारे।शाश्वत पद लोकहिं लभता रे।।

(2) जिसके आचरण में क्षमा, धीरता, अहिंसा, समता, सत्य एवं सरलता का भाव है तथा जो अपने कर्मों में अपने कर्तव्य एवं आचार (आचरण) का ध्यान रखता है तो वह इस लोक में शाश्वत पद का लाभ प्राप्त करता ही है।

सर्वभूत हित अभिलाषी जो। अभय रहे अरु अभय देत जो।।
उदधि भाँति गम्भीर सदा जो। प्रज्ञातृप्तः परम शांत वो।।

(3) जो राजा सर्वभूतहित की अभिलाषा रखने वाला हो, जो अभय रहकर अभयता देने वाला है जो समुद्र की भाँति सदा गम्भीर रहता हो और जो प्रज्ञा भाव से सदा तृप्त रहता हो, ऐसा व्यक्ति ही परमशांत है ऐसा कहलाता है।

मैं भी राज्यहीन था जब सुत!। संकट दुख बहु झेले मैं उत!।।
लज्जा पुण्य कर्म नहिं छोड़े। पुनः श्रेष्ठ गति अमृत जोड़े।।

(4) हे पुत्र ! जब मुझे राज्य से हीन कर दिया गया था तब मैंने भी बहुत से संकटों एवं दुःखों को सहा था। परन्तु मैंने अपनी लज्जाशीलता एवं अपने पुण्य कर्मों का त्याग नहीं किया। मैंने स्वयं को पुनः अमृत के समान उस श्रेष्ठ गति से जोड़ लिया।

दो0 : भलीभाँति सुविचार कर, निश्चित मानव-धर्म।
बाधित हो जाते कभी, भाग्यवशे सब कर्म।।(174)

दो0 : हे पुत्र! भलीभाँति सुविचार करके किये जाने वाले निश्चित मानव धर्म भी कभी-कभी बाधित हो जाते हैं क्योंकि सभी कर्म भाग्य (प्रारब्ध) के आधीन हैं। (174)

चौ0 : श्रेष्ठ नीति से कर्म सुरक्षित। सब पदार्थ भी पूर्ण विनष्टित।।
दैवनुकूलन होता तब यह। यत्न से दैव करो खुश नित सह।।

चौ0: (1) हे राजन्! श्रेष्ठ नीति से ही कर्मों को सुरक्षित रखा जा सकता है और इससे ही सारे पदार्थ सम्पूर्णता से विनष्ट होते हैं। तब यह सारा कार्य दैव के अनुकूल रहने पर ही सम्भव हो पाता है। अतः यत्न से दैव को सदा खुश करते रहो।

देव उपस्थित करैं विघ्न यदि।पुरूषार्थ नहिं त्यागो सुत कदि।।
बाधाएँ पुरुषार्थ से हटतीं। क्लेश दुःख पीड़ाएँ कटतीं।।

(2) यदि आपके देवता कभी आपके कार्य में विघ्न उपस्थित कर दें तो आप कभी भी अपने पुरुषार्थ का त्याग ना करें। क्योंकि पुरुषार्थपूर्ण कर्म से ही बाधाओं का नाश सम्भव होता है। फिर चाहे कैसा भी क्लेश हो, कैसा भी दुःख तथा कैसी भी पीड़ा हो - ये सब पुरुषार्थ से कट जाती हैं।

फल-सिद्धी प्रारब्ध से होती। कर्म करन से भी सिध होती।।
दक्ष प्रजा-रक्षा में सक्षम। कार्य राज्य-संचालन कठिनम।।

(3) प्रारब्ध से ही फल की सिद्धि होती है। कर्म करने से भी फल की सिद्धि हो सकती है। दक्ष राजा ही प्रजा की रक्षा करने में सक्षम है। क्योंकि राज्य-संचालन का कार्य बहुत कठिन है। ?

बहुत भार राजा पर होता। हित-संरक्षण नृप पर होता।।
जो नहिं कर सकता निज रक्षा। कैसे सम्भव प्रजा-सुरक्षा?।।
रक्षा सम्भव बुद्धिमान से। शूरवीर नय नीति निपुण से।।

(4) राजा पर बहुत भार होता है। सबका हित करना तथा सभी को संरक्षण प्रदान करना उस राज्य के राजा पर ही तो निर्भर है। जो राजा स्वयं की रक्षा कर न पाता हो भला प्रजा की सुरक्षा उससे कैसे सम्भव है ? रक्षा तो बुद्धिमान व्यक्ति से ही संभव है। रक्षा उस राजा के द्वारा भी सम्भव है जो शूरवीर तथा नय एवं नीति-शास्त्र में पूर्णतया निपुण हो।

दो0 : देस काल नय और अन, जान दण्ड नृप दे।
बँधा रहे खुद भी इहहिं, सब सुन निर्णय दे।।(175)

दो0 : हे पुत्र! जो राजा देस, काल, नय और अन्य (परिस्थिति जन्य) साक्ष्यों को ध्यान में रखकर दोषी को दण्ड देता हो और स्वयं भी उनसे बँधा रहता हो, ऐसे राजा को चाहिये कि वह पक्ष-विपक्ष सभी को भलीभाँति सुनकर अपना निर्णय दे।(175)

चौ0 : शूद्र-स्वभाव-कर्म यदि उत्तम। द्विजातियों से है वो उत्तम।।
श्रेष्ठता का कारण योनी ना। संस्कार ना शास्त्र-ज्ञान ना।।

चौ0 : (1) श्री अग्रसेन राज्ञोपदेश देते हुए युवराज विभु से कहते हैं कि- हे पुत्र! यदि कोई शूद्र स्वभाव और कर्म से उत्तम है तो वह द्विजातियों से भी उत्तम कहलाता है। श्रेष्ठता का आधार ना तो उसकी योनी है, ना ही उसके संस्कार और ना ही उसका शास्त्र-ज्ञान।

श्रेष्ठता का आधार है केवल।मनुष्य आचरण सत यहि केवल।।
ऊर्ध्व लोक त्रय रक्षा करते। भूतभाव उत्पत-वृधि करते।।

(2) श्रेष्ठता का आधार केवल उस व्यक्ति का आचरण है और यही सत्य है। सदाचार से ही ऊर्ध्व तथा तीनों लोकों की रक्षा सम्भव है। सदाचार ही भूतभाव की उत्पत्ति एवं वृद्धि करने वाला है पुत्र।

वैसेहि कृषि गुपाल वाणिज्यम्। उत्तम जीवन साधन लोकम्।।
जो जन धर्म-पालनम् तत्पर। उनसे सिद्धि मनोरथ हितकर।।
(3) वैसे ही खेती करना, गौओं का पालन करना तथा वैश्योचित वाणिज्यादि कर्मों में प्रवृत्त रहना – इस लोक में उत्तम जीवन का साधन है। जो जन नित्य धर्म का पालन करने में तत्पर रहते हैं उनसे ही सबका हित करने वाले मनोरथ सिद्ध होते हैं, ऐसा समझना चाहिए।

तब यह लोक करे अनुसरणहि। मंगलमय अरु धर्महि नित्यहि।।
नृप जो कर्म प्रमाणित करता। सदाचार से ही है दिखता।।
प्राणभूत उस राजा के ही। चरित अनुसरण परजा करही।।
(4) तब यह सारा लोक उस सदाचारी का अनुसरण करने लग जाता है। फिर सब कुछ मंगलमय और धर्मयुक्त हो जाता है। राजा जो भी कर्म करता है उसकी प्रामाणिकता उसके सदाचार से ही पुष्ट होती है। और तब, प्राणभूत उस राजा के चरित्र का अनुसरण उसकी प्रजा भी करने लगती है।

दो० : 'अहिंसा परमोधर्म'-इति, कहा महात्मन ने।
धर्म सनातन भी यही, कहा पुराणन ने।। (176)
दोहा : हे पुत्र! अहिंसा ही सबसे बड़ा धर्म है – ऐसा सभी महात्माओं ने कहा है । सनातन धर्म भी यही है। पुराणादि महान ग्रन्थों का ऐसा ही कथन है। (176)

चौ० : जहाँ भूख से पीड़ित कोई। स्त्रि- अपहरण बल सँग होई।
पति पुत्रादि रुवत रह जाते। वो नृप जीवन व्यर्थ गँवाते।।
चौ० : (1) हे पुत्र! जिस राज्य में एक भी व्यक्ति यदि भूख से पीड़ित रहता हो अथवा वहाँ बलात् स्त्रियों का अपहरण होता हो तथा उसका पति और उसके पुत्र आदि रोते रह जाते हों तो उस राज्य का राजा व्यर्थ में ही अपने जीवन को गँवा देता है।

धर्म-कुशल जो राजा रहता। सुखी प्रजा का लक्षण रखता।।
उसके शुभ राज्यौर कर्म से। प्रजा रहे सन्तुष्ट धर्म से।।

(2) इसके विपरीत जो राजा धर्म में कुशल होता है तो ऐसा राजा सुखी प्रजा का लक्षण होता है। इतना ही नहीं उस राजा के शुभ राज्य और उसके शुभ कर्मों से तथा उसके सदधर्म से उसकी प्रजा सदा संतुष्टि का अनुभव करती है।

जो दुखियों का हाथ थामता। प्रजा की पीड़ा को भि जानता।।
स्वयं सत्य सद्व्यवहर करता। ऐसा नृप 'सुख-दर्शन' हुवता।।

(3) जो राजा दुखियों का हाथ थामता है तथा जो प्रजा की पीड़ाओं को भी जानता है और जो स्वयं सभी के साथ सत्य एवं सद्व्यवहार करता है ऐसा राजा सभी के लिये सुख-दर्शन कहलाता है।

जो समूह बल पुरूषार्थमय। अनायास सब अभीष्ट लेवय।।
मुख्य पुरुष जो जो गणराज्यहिं। मान यथोचित उनको देवहिं।।

(4) जो राजा समूह के बल से युक्त है और जो पुरुषार्थ जैसे गुण से सम्पन्न है, ऐसा राजा अनायास ही सम्पूर्ण अभीष्टों को प्राप्त कर लेता है। आदर्श राजा को चाहिये कि उसके गणराज्य में जितने भी मुख्य पुरुष हों वह उनको यथोचित मान (उनके पास जाकर) प्रदान करे।

दो0 : वैर मिटे ना वैर से, वल्कि और बढ़ता।
जैसे घी अग्नी पड़े, बुझे न अति ज्वलता।। (177)

दो0 : हे पुत्र! वैर से कभी वैर समाप्त नहीं होता वल्कि और बढ़ता है। ठीक उसी प्रकार जैसे कि अग्नि में घी गिर जाने पर अग्नि बुझती नहीं वल्कि और प्रज्ज्वलित हो जाती है। (177)

चौ0 : उपकारी प्रति है कृतज्ञ जो। विशिष्टता उसमें क्या फिर हो।।
अपकारी प्रति जो उपकारी। वो ही साधुपुरुष संसारी।।

चौ0: (1) हे पुत्र! जो राजा अपने प्रति किये जाने वाले उपकारी के प्रति कृतज्ञता का भाव रखे तो उसमें कौन-सी विशिष्टता है? अरे, जो अपकारी के प्रति कृतज्ञता का भाव रखे वास्तव में वही राजा इस संसार में साधु कहे जाने के योग्य है।

दृढ़ता से अनुसरण करोगे। अक्षय यश से गोद भरोगे।।
पूर्ण मनोरथ भी तव होगा। परम लोक कल्याणहु होगा।।

(2) हे राजन! यदि तुम मेरे द्वारा उपदेशित इन नियमों का दृढ़ता से अनुसरण करोगे तो तुम अक्षय यश से सदा अपनी गोद भरते रहोगे। ऐसा करने से तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होंगे। इतना ही नहीं इससे लोक का परम कल्याण भी होगा।

प्रजा तुम्हारी समृद्ध होगी। तुम सँग श्री सम्पति मय होगी।।
विभूसेन पित किये प्रणामा। परिकम्मा कर कहँ सुखधामा।।

(3) तुम्हारी प्रजा समृद्ध होगी और वह तुम्हारी ही तरह श्री एवं सम्पत्ति से युक्त रहेगी। विभुसेन ने अपने पिता महात्मा श्री अग्रसेन जी को प्रणाम किया। उनकी परिक्रमा की और तब सुखों के धाम श्री अग्रसेन जी से वह इस प्रकार कहने लगे-

वचन आपके अति शुभकारी। पालन कर होऊँ सुखकारी।।
महापातकों को त्यागूँगा। योग्यजनन सम्मान करूँगा।।

(4) हे पिताश्री! आपके सम्पूर्ण वचन अत्यन्त शुभकारी हैं। इनका पालन करके निश्चित ही मैं सुखी होऊँगा। हे पिताजी! आपका यह ज्येष्ठ पुत्र विभु आपको वचन देता है कि मैं महापातकियों को अपने राज्य से बाहर निकाल दूँगा। उनका त्याग कर दूँगा और जो लोग योग्य एवं राज्य के लिये हितकारी प्रतीत होते होंगे, ऐसे सदाचारियों का मैं सदा सम्मान करूँगा।

दो0 : हे पित! मैं लेता शपथ, करऊँ वैसा ही।
यत्न करूँगा मैं बनूँ, तव के जैसा ही।। (178)

दो0 : हे पिताश्री! मैं शपथ लेता हूँ कि जैसा-जैसा आपने बताया है मैं वैसा-वैसा ही करूँगा। हे तात्! यत्न करूँगा कि मैं, आपके जैसा बनूँ। (178)

चौ0 : अग्र-माधवी सँग बढ़ आए। प्रेम से सबको शीश नवाए।।
राजा विभु ने अनुमति दीन्ही। जो थे उन सबसे फिर लीन्ही।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि तपसी भेष में श्री अग्रसेन जी और देवी माधवी उपस्थित श्रेष्ठजनों को शीष नवाकर आगें बढ़ आये। राजा विभु ने उन्हें भारी मन से वन जाने की अनुमति प्रदान की। फिर उन दोनों ने शेष व्यक्तियों से अनुमति प्राप्त की।

मुझे प्रेम जो दिया आपने। कभी किसी को नहीं, सामने।।
सबके नेत्रों से जल बरसे। हँसने को नैना अब तरसे।।

(2) श्री अग्रसेन जी ने कहा हे- अग्रवासियों! आपने आज तक मुझे जो प्रेम दिया वैसा प्रेम कभी भी किसी ने किसी को नहीं दिया होगा - ऐसा मुझे प्रत्यक्ष दिखायी दे रहा है। सबके नेत्रों से जल बरसने लगा। सभी सोचने लगे कि नेत्र अब निश्चित ही हँसने को तरसेंगे।

विदा का पल होता है ऐसा। पुत्रि-विदाई के पल जैसा।।
रोवत-रोवत हाँ कह दीन्ही। सबने वन की अनुमति दीन्ही।।

(3) कवि कहता है कि विदा का पल बेटी की विदाई के पल जैसा होता है। रोते-रोते अग्रजनों ने हाँ कह दी। अन्त में सबने दुखी मन से श्री अग्र-माधवी को वन की अनुमति प्रदान कर ही दी।

मात-पिता रह जाते रोते। पुत्र वधू जब दोनों खोते।।
इस जग से सबको है जाना। किसी का स्थिर नहीं ठिकाना।।

(4) कोई भी माता-पिता हों जब वे वृद्धावस्था में अपने पुत्र और पुत्रवधू को खो देते हैं तो बेचारे रोते रह जाते हैं। हे भैया ! एक दिन इस संसार से सभी को चले जाना है। यहाँ किसी का स्थिर ठिकाना नहीं है।

दो0 : मार्गशीर्ष तिथि पूर्णिमा, आग्रे द्वय छोड़ा।
अग्र माधवी भाव निज, प्रभु के सँग जोड़ा।।क।।

दो0 : (क) मार्गशीर्ष की पूर्णिमा तिथि को श्री अग्रसेन और देवी माधवी ने आग्रेयगणराज्य का त्याग करके वन में जाकर स्वयं को प्रभु के साथ जोड़ दिया।

मन-इन्द्रिय संयम किये, फल भोजन तजए।
पालन करके व्रत कठुर, तप में लीन भए।।ख।।

(ख) इन्द्रिय सहित अपने मन पर संयम रखकर, फल और भोजन का त्याग करके तथा कठोर व्रत का पालन करते हुए वे दोनों तप में लीन हो गये।

यह अध्याय महान अति, नृप कर्तव्य इहहिं।
जो इसको धारण करे, पाय मान नित्यहिं।।ग।। (179)

(ग) कवि कहता है कि यह अध्याय इस ग्रन्थ का महान अध्याय है क्योंकि इसमें एक आदर्श राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन है। जो राजा इन सबको अपने हृदय में धारण कर लेता है वह राजा नित्य मान को प्राप्त होता है। (179)

अध्याय पच्चीस 'राज्य के अधिकार' पूर्ण हुआ।

:::::

(दोहे के अन्त में गाइये)
अग्रवर अग्रसेन पद गहि शरणम्
लक्ष्मी हरि ओम जय विश्वेश्वर
जय करुणेश्वर जय समतेश्वर

卐 अध्याय छब्बीस (मोक्ष एवं वैकुण्ठ) 卐

दो० : अग्र माधवी अब भए, तप-चिंतन में लीन।
अर्थ काम सुख त्यागकर, श्रीदेवी आधीन।।

दो० : अब श्री अग्रसेन और देवी माधवी पूरी तरह से तप करते हुये माता महालक्ष्मी का चिंतन करते हैं। वे परमात्मा में लीन हो गये। उन्होंने सम्पूर्ण अर्थ, काम तथा सुःखों को त्याग दिया और एकमात्र माता श्रीदेवी की ध्यान-साधना में लीन हो गये।

चौ० : अमित तेज अरु ओजयुक्त मुख।ब्रह्मा सम अनुभवहिं परम सुख।
भूमी कैसिहु हो सो लेते। यमुना-तट पहुँचे शिव कहते।।

चौ० : (1) जैमिनी ऋषि तपस्या के प्रभाव को बतलाते हुए कहते हैं कि हे जनमेजय! महाराज अग्रसेन जी का मुख अमित तेज और ओज से युक्त हो गया। ब्रह्मा जी के समान तपश्चर्या से उत्पन्न होने वाले परम सुख को उन्हें अनुभव होने लगा। भूमि कैसी भी होती, दोनों पति-पत्नी उस पर सो जाते। इस प्रकार यात्रा को आगें बढ़ाते हुए भगवान शिव का पावन नाम लेते हुए वे दोनों पति-पत्नी कष्टमुक्ता यमुना नदी के तट पर आ पहुँचे।

सात बार गोता वो लीये। जप व कर्म सूक्षम में कीये।।
शुभ्र रजत बालू पर बैठे। पुण्य कथा गाथा सुन कहते।।

(2) विरक्त अग्रसेन-माधवी ने पवित्र यमुना नदी में सात बार गोता लिया। समस्त जप-तप कर्मों को उन्होंने वहीं तट पर सूक्ष्म में सम्पन्न किया। वे तट स्थित चाँदी की तरह दीखने वाली श्वेत बालू पर बैठकर पुण्य कथाओं को आपस में कहने-सुनने लगे।

उत्तम अनुष्ठान तप रत भए। महालक्ष्मि स्तवन रटत गए।।
पद्मासने विराजत देवी। परमा ब्रह्मस्वरूपिणि देवी।।

(3) उत्तम अनुष्ठानों को सम्पन्न करने के बाद श्री अग्रसेन और देवी माधवी तप करने लगे। दोंनों माता महालक्ष्मी जी के पावन स्तवन को इस

प्रकार रटने लगे, जोर-जोर बोलने लगे- हे माता! आप पद्म के आसन पर विराजने वाली हैं। आप परम हैं। हे देवी! आप ब्रह्मस्वरूपा हैं।

हे परमेश्वरि! हे जगदम्बे। तुम्हें प्रणाम हमारा अम्बे।।
हे माँ! भू का भार उतारो। हितकारिन के कार्य सँवारो।।

(4) आप परमेश्वरी हैं। आप जगत की माता हैं। हे माता अम्बे! आपको हमारा प्रणाम है। हे माँ! आप पाप से भरी इस भूमि के भार को उतारिये। और हाँ, हे माता! आप हितकारी कार्य करने वालों को समस्त कार्यों को सँवारिये।

दो0 : दुख से सदा उबारतीं, करैं तुम्हें जो याद।
गौ निर्बल जस पंक जन, दौड़ैं सुन फरियाद।।क।।

दो0 : (क) हे माता! जो तुम्हारा स्मरण करते हैं तुम उन्हें सदा के लये उबार देती हो। ठीक वैसे ही जैसे कि निर्बल गाय के कीचड़ में फँस जाने पर लोग उसकी फरियाद सुनकर उसे बचाने के लिये उसकी ओर दौड़ पड़ते हैं।

दर्शन-इच्छा फिर जगी, दोनों के मन में।
करैं स्तुती मात की,श्री आनँद वन में।।ख।।(180)

(ख) कवि कहते हैं एक बार फिर दोनों के मन में माता के पुण्यदा दर्शनों की लालसा जागृत हो उठी और वे वहीं आनन्द वन में माता की स्तुति करने लगे। (180)

(महालक्ष्मी-स्तवन)

छ0 : श्री स्वरूपे सर्व अर्थन देत तुम वरदायिनी।
बालार्क तन मुख पूर्ण चन्द्रहु नित्य सुःखप्रदायिनी।। 1।।

(1) हे वर देने वाली माता! आप श्री स्वरूपा हैं। आप सर्व अर्थों की प्रदान करने वाली हैं। आपका शरीर उगते हुए सूर्य की तरह है जबकि मुख पूर्ण चन्द्रमा की तरह है। आप नित्य सुख की देने वाली हैं।

शीश पर विचित्र मुकुटऽरु केश बन्धऽति शोभिने।
तीस सुर स्तुत जिहहि उहि पूजते हम लोभिने।।2।।

(2) हे माता! तीस देवता जिस माता की निरन्तर सेवा करते हैं उस माता की हम लोभवश पूजा करते हैं।

कटि करधनी जो बँधी उसकी छवी ऐसे लगे।
मनु नाग लिपटा मन्दराचल देख छवि उर सुख जगे।।3

(3) हे माता! आपकी कमर में बँधी हुई करधनी की छवि ऐसी प्रतीत होती है मानो मन्दराचल पर्वत के चारों ओर काला नाग लिपटा हुआ है। आपकी ऐसी छवि को देखकर हमारे हृदय में सुख जागृत हो गया हे माता!

देत फल वांछित उन्हें जो आपके पीछे चलैं।
हे मात! मम संकट मिटाओ भाव सँग तुमको भजैं।।4।।

(4) हे माते! जो भक्त आपके द्वारा बतलाये गये मार्ग पर चलते हैं आप उन्हें वांछित फल प्रदान करती हैं। हे माते! हम भाव संग आपका भजन कर रहे हैं। कृपया आप हमारे संकटों को मिटाइये।

वन्दन करेंगे नित्य प्रातः काल जो जन आपको।
पुत्र धन दुर्लभ नहीं हो मुदित माँ दे भक्त को।।5।।

(5) जो भक्त नित्य प्रातःकाल आपका वन्दन करते हैं उनके लिये पुत्र और धन कुछ भी दुर्लभ नहीं होता। माता अपने ऐसे भक्तों को प्रसन्न होने पर ये वस्तुएँ सहर्ष उपलब्ध करा देती हैं।

कीर्ति श्री धृति सिद्धि ह्री विद्या क्षमा वर कांति तुम।
क्लेश उनको कुछ नहीं जो याद करते मात तुम।।6।।

(6) हे माता! आप ही कीर्ति, श्री, धृति, सिद्धि, ह्री, विद्या, क्षमा, वर तथा कांति रूपा हैं। हे माता! जो जन आपको सुमिरते हैं उन्हें कुछ भी क्लेश नहीं व्यापता।

मोह-बन्धन पुत्रनाशं धनक्षयं दुख मेटती।
आधि व्याधी मृत्यु पीड़ा भय तुम्ही माँ नेष्टती।।7।।

(7) हे माता! आप ही मोह-बन्धन, पुत्र नाश, धन का क्षय तथा दु:खों की मिटाने वाली है। इतना ही नहीं आप ही आधि, व्याधि, मृत्यु, पीड़ा तथा भयों की नाश करने वाली माता हैं।

दो0 : तुम शरणागतरक्षिणी, भक्तवत्सला भी।
हो प्रसन्न करती दया, तुम शिवभावा भी।।(181)

दो0 : हे महालक्ष्मी माता! आप शरण में आये हुओं की रक्षा करने वाली हैं। आप ही अपने भक्तों पर वात्सल्य भाव बरसाने वाली माता कही जाती हैं। प्रसन्न होने पर आप शीघ्र ही अपने भक्तों पर दया बरसाती हैं। हे माता! आप ही शिवभावा हैं - ऐसा कहा जाता है। (181)

चौ0 : सम्यक स्तुति की लक्ष्मी की। मंत्र सहस्त्रों से श्री जी की।।
वर्षों एक पाँव स्थित हो। पूरण दुर्धरयोग किये वो।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि तपस्वी अग्रसेन एवं तपस्विनी माधवी ने माता लक्ष्मी की सम्यक भाव से स्तुति की। उन्होंने सहस्त्रों मंत्रों से माता श्री जी की आराधना की। उन्होंने वर्षों एक पाँव पर खड़े होकर उस दुर्धर योग को पूर्ण किया।

कटु व्रत पालन क्षीण शरीरा। अस्थी-ढाँचा मात्र शरीरा।।
इक दिन प्रात:काल सूर्य सम। दिव्य ज्योति देखी अग्नी सम।।

(2) कठोर व्रत का पालन करते रहने से उनका शरीर क्षीण हो गया। अब उनका शरीर हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया। एक दिन, प्रात:कालीन सूर्य के समान अग्नि की तरह लगने वाली एक दिव्य ज्योति को उन्होंने देखा।

ज्योति निकट दोनों के आयी। अंशुमालि सम माँ दरसायी।।
पद्मासने विराजत देखी। अति समीप महालक्ष्मी देखी।।

(3) अंशुमाली के समान वह दिव्य ज्योति जब उनके निकट आयी तो उसमें उन्हें माता के दर्शन दिखायी दिये। माता पद्म के आसन पर बैठी हुयी हैं। अचानक उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि माता महालक्ष्मी उनके और निकट आ गयी हों।

परम विमान अग्र से उतरीं। तप रत भुवनपती सन ठहरीं।।
दोनों माँ के समीप आए। श्री चरणन लख अति हरषाए।।

(4) अपने परम दिव्य विमान से उतर कर माता श्रीदेवी तप में लीन भुवनपति के निकट आकर ठहर गयीं। श्री अग्रसेन और देवी माधवी माता के समीप आये। माता के श्री चरणों को देखकर वे दोनों अति हर्षित हो उठे।

दो0 : दानशील नित धर्म रत, नम्र सत्यवादिहु।
महाप्राज्ञ! हूँ अति मुदित, इच्छित वर माँगिहु।।(182)

दो0 : माता बोलीं– हे पुत्र! तुम सदा दानशील रहे। तुम सदा धर्म में तत्पर रहे। हे अग्र! तुम विनम्रता की प्रतिमूर्ति हो। तुम सत्यवादी भी हो। हे महाप्राज्ञ! मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ। अत: तुम मुझसे इच्छित वर प्राप्त कर लो। (179)

चौ0 : अनुपम पूजा की माता की। विनयवचन सँग वरदाता की।।
सर्वशक्ति सम्पन् तुम माता। सकल जगत की तुम हो धाता।।

चौ0 : (1) श्री अग्रसेन – माधवी ने अपने विनययुक्त वचनों से वर देने वाली माता की अनुपम पूजा की और कहा – हे माता! तुम सर्व शक्ति से सम्पन्न हो। हे माता! तुम ही सकल जगत को धारण करने वाली हो।

तुमने दिव्य स्वरूप दिखाया। अनुपम वर यहि मो मन भाया।।
बोली माँ खुश हूँ दोनों से। सज्जनता निष्काम भगति से।।

(2) हे माता! आपने अपने जिस दिव्य स्वरूप का हमें दर्शन कराया है वही अनुपम वर मेरे मन को भाया है। तब माता खुश होकर बोलीं– हे पुत्र! तुम्हारी सज्जनता और निष्काम भक्ति से मैं अति प्रसन्न हूँ।

कोई वर माँगो अवश्य ही। यह मम इच्छा अज्ञा तुमही।।
हाथ जोड़कर दोनों रोये। बोले अटपट शब्द सँजोये।।

(3) तुम मुझसे अवश्य ही कोई वर माँगो। (हँसते हुए) इसे तुम चाहो तो मेरी इच्छा समझो या फिर मेरी आज्ञा। ऐसा सुनते ही अग्रसेन एवं माधवी

दोनों ने अपने हाथों को जोड़ा और रोने लगे। किसी प्रकार स्वयं को नियंत्रित करके अटपटे शब्दों को संजोकर वे इस प्रकार कहने लगे –

तव भक्ती में लगे रहैं हम। धर्म सत्य संयम युत हू हम।।
हे माता! तुम परम ईश्वरी। सर्वस्वामिनी दिव्य ईश्वरी।।

(4) हे माता! हम सदा आपकी अविचल भक्ति में लगे रहें। हम सदा धर्म, सत्य तथा संयम से युक्त रहें। हे माता! आप परम ईश्वरी है। आप सबकी स्वामिनी हैं। आप दिव्य हैं। आप ही ईश्वरी देवी हैं।

सो0 : नित धन और व्यसन, रथ पहिये सम घूमते।
दानशील जोड़ जन, याचन को होते विवश।।(183)

सोरठा : जैमिनी जी कहते हैं कि धन और व्यसन रथ के पहियों की तरह निरन्तर घूमते रहते हैं। दानशील व्यक्ति भी कभी-कभी याचना को विवश हो जाया करते हैं। (183)

चौ0 : हे माँ! अर्थ-सिद्धि नहिं स्थिर। जयौ पराजय दोनों अस्थिर।।
सो मैं सोच-विचार करत हूँ। वंशवृद्धि नित सोइ कहत हूँ।।

चौ0 : (1) श्री अग्रसेन जी कहते हैं कि हे मातेश्वरी! अर्थ-सिद्धी सदा स्थिर नहीं रहती। जय-पराजय भी सदा अस्थिर ही रहते हैं। इसलिये मैं सोच-विचार करके आपसे वह बात कहता हूँ ताकि मेरे वंश की नित्य वृद्धि होती रहे।

तीन लोक जन तुमको नमते। उत्तम यत्न कृपा तव लभते।।
कल्पवृक्ष सम तुम हो माता। ऐसा क्या जो तुम नहिं हाथा?।

(2) हे माता! तीनों लोकों के प्राणी आपको नमन करते हैं और यत्नसहित वे आपकी उत्तम कृपा का लाभ प्राप्त करते हैं। हे माता! आप कल्पवृक्ष के समान हैं। फिर जगत में ऐसा क्या है जो आपके हाथ ना हो?

हे माँ! अचल भक्ति वर दीजे। तव चरणन रहँ दया करीजे।।
फिर माता दोनों से बोली। करुणा-कृपा-वचन रस घोली।।

(3) हे माँ! आप हमें अचल भक्ति का वर प्रदान कीजिये। मैं सदा आपके कृपालु चरणों का ध्यान करता रहूँ - आप मुझ पर ऐसी दया कीजिये। तदनन्तर, माता महालक्ष्मी अपने वचनों में करुणा एवं कृपा रस घोलती हुई उन दोनों से इस प्रकार बोलीं -

वंश तुम्हारा नित्य बढ़ेगा। तेज से तुम्हरे युक्त रहेगा।।
जग के संकट दूर करेगा। सकल भाव भण्डार भरेगा।।
पूर्ण विश्व आलोकित होगा। अग्रवंश अति पूजित होगा।।

(4) हे पुत्र! तुम्हारा वंश नित्य वृद्धि को प्राप्त होता रहेगा। वह सदा तुम्हारे तेज से युक्त रहेगा। तुम्हारे वंश के लोग जगत के संकटों को दूर करेंगे। वे ही उनके सकल भण्डार भरेंगे। तुम्हारे वंश के द्वारा ही सम्पूर्ण विश्व प्रकाशमान होगा। हे पुत्र! तुम्हारा वंश अग्रवंश इस युग का अति पूजनीय वंश सिद्ध होगा ऐसा मेरा वचन है।

दो0 : दान सत्य सेवामयी, होंगे सनमानी।
मानेंगे आदर्श निज, होंगे यशमानी।। (184)

दो0 : हे अग्र! तुम्हारे वंश के लोग दानवीर होंगे। वे सत्य बोलने वाले होंगे। वे सेवा की भावना से युक्त होंगे। वे सम्मानी और स्वाभिमानी होंगे। यदि अग्रवंशी अपने महान आदर्श का पालन करेंगे तो वे निश्चित ही यश और मान से पुरस्कृत होंगे।(184)

चौ0 : तव वंशज से संतुष्ट होकर। दुर्लभ वस्तू दूँगी हितकर।।
दीर्घायू निरोग तन दूँगी। श्रेष्ठ पुत्र थिर राज्यहु दूँगी।।

चौ0 : (1) हे पुत्र! तुम्हारे वंशजों से सन्तुष्ट होकर मैं उन्हें सबका कल्याण करने वाली दुर्लभ वस्तुएँ प्रदान करूँगी। मैं अग्रवंशियों को दीर्घ आयु तथा निरोगी काया प्रदान करूँगी। मैं उन्हें श्रेष्ठ पुत्र-धन तथा स्थिर राज्य (व्यापार) भी दूँगी।

कृपा-पात्र तव हाथ रहेगा। जो लोगन शुभ आश्रय देगा।।
इससे सफल सुखी जग होगा। अग्रवंश ही श्रेयस होगा।।

(2) हे पुत्र! कृपा का पात्र तुम्हारे ही हाथों में होगा जो जगत् के लोगों को शुभ आश्रय प्रदान करेगा। इस कारण यह जगत पुनः सफल और सुखी हो जायेगा। सूक्ष्म में, सम्पूर्ण वंशों में अग्रवंश ही श्रेयस होगा।

समता का स्थापक होगा। भेद-भाव का शत्रू होगा।।
जिस कुल में मम पूजा होगी। उसको कभी न मैं छोड़ूँगी।।

(3) तुम्हारा अग्र वंश 'समता' की स्थापना करेगा। अग्र वैश्यवंश भेद-भाव का प्रबल शत्रु होगा। हे पुत्र! जिस कुल में मेरी सतत पूजा - अर्चना होती रहेगी उस कुल को मैं कभी नहीं त्यागूँगी - ऐसा मेरा वचन है।

जब तक सूरज चाँद रहेंगे। सुख समृद्धि अगवंशि गहेंगे।।
अन्तर्ध्यान हो गई माता। सोचत रह गए अग्र विधाता।।

(4) आकाश में जब तक सूरज-चाँद चमकते रहेंगे तब तक तुम्हारे ये अग्रवंशी मुझसे सुख एवं समृद्धि को प्राप्त करते रहेंगे- ऐसा वर देकर माता अन्तर्ध्यान हो गई और अग्रवंश के विधाता श्री अग्रसेन जी सोचते ही रह गये।

दो0 : उतरा दिव्य विमान इक, दोनों के सनमुख।
देवदूत ने यों कहा, करो स्वर्ग को मुख।।(185)

दो0 : तब अग्र-माधवी के सम्मुख आकाश से एक दिव्य विमान उतरा जिसमें से एक देवदूत उतरे। देवदूत ने उनसे कहा कि आप दोनों हमारे साथ स्वर्ग को चलें। (185)

चौ0 : अग्र विचार बुद्धि सँग कीन्हा। निवेदन देवदूत को दीन्हा।।
दोष महान स्वर्ग में भैया। वापस जावो तुम सँग नैया।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि तब श्री अग्रसेन जी ने बुद्धि सहित विचार किया और उस देवदूत से इस प्रकार निवेदन पूर्ण वाणी में कहा - अरे भैया देवदूत जी ! स्वर्ग में बड़े दोष हैं। सो, तुम अपनी इस नैया के साथ वापस लौट जाओ।

पुण्य-भोग से क्षय होता है। क्षय के बाद पतन होता है।।
फिर मन में होता दुख भारी। काऊ भाँति न जाय सँवारी।।

(2) हे देवदूत जी! पुण्य-भोग से जीव का क्षय होता है। क्षय के बाद उसका पूरा पतन होता है - ऐसा समझना चाहिये। इस कारण उसके मन में भारी दु:ख होता है जिसे किसी भी भाँति सँवारा नहीं जा सकता।

मैं तो केवल 'वहिं' जाऊँगा। अविचल अक्षयधाम गहूँगा।।
संग विमान विदा कर दीया। ज्ञानयोग से चित शुध कीया।।

(3) हे देवदूत! मैं तो केवल 'वहीं' जाऊँगा और उस कभी न डिगने वाले अक्षयधाम को प्राप्त करूँगा। श्री अग्रसेन जी ने देवदूत को विमान सहित वापस भेज दिया और दोनों पुन: ज्ञानयोग के आश्रित होकर चितशुद्धि की क्रिया में संलग्न हो गये।

फिर वे नित्य ध्यान थिर हूये। अब वे नहिं वे प्रभु सम हूये।।
उत्तम बोध प्राप्त तब हूआ। परमसिद्धि का अनुभव हूआ।।
मोक्षधाम देवी ने पाया। शास्त्र पुराणन ऐसा गया।।

(4) उसके पश्चात् वे नित्य ध्यान में स्थिर हो गये। अब वे अग्र-माधवी ना होकर प्रभु की तरह प्रतीत होने लगे। तब उन्हें उत्तम बोध की प्राप्ति हुयी और उन्हें ऐसा अनुभव हुआ जैसे उन्हें परमसिद्धि प्राप्त हो गयी हो। ऋषि कहते हैं कि सबके जीवन में सुख का मधु बाँटने वाली देवी माधवी ने मोक्षधाम को प्राप्त किया। शास्त्रों एवं पुराणों में ऐसा ही गाया गया है।

चौ0 : तभी एक कौतूहल हुआ। अग्रसेन मन प्रफुलित हूआ।।
ध्यानावस्था में माँ आई। हृदय भाव दीन्हे प्रगटाई।।

(5) जैमिनी ऋषि बोले—हे जनमेजय ! तभी एक मौतूहल हुआ जिस कारण श्री अग्रसेन जी का मन प्रफुल्लित हो उठा। जब श्री अग्रसेन जी ध्यानावस्था में स्थित हो गये और परमसिद्धि का अनुभव करने लगे तभी

उन्हें ऐसा आभास हुआ मानो माता महालक्ष्मी पुनः उनके सम्मुख आ गई हों और अपने अंतरंग भावों को इस प्रकार प्रकट करने लगी हों—

माता महालक्ष्मी द्वारा अग्र वैश्यवंशियों को आशीर्वाद

छ0 : मास कार्तिक में अमावस्या तिथी प्रिय है मेरी।
भक्ति सँग जो पूजते उन पर कृपा होती मेरी।
रात्रि विचरण विष्णु सँग त्रय लोक की होती मेरी।
वैश्य पाओगे सदा नवनिधि सकल सम्पद मेरी।। (1)

(1) माता महालक्ष्मी बोली—हे अग्रश्रेष्ठ ! कार्तिक मास में पड़ने वाली अमावस्या तिथि मुझे प्रिय है। इस दिन जो वैश्यभक्त श्रद्धा भक्ति सहित मेरा पूजन-अर्चन करते हैं, उन पर मेरी अनवरत कृपा होती है—ऐसा मानना चाहिये। हे पुत्र ! दीपावली की इस शुभ रात्रि को में सद्बुद्धि एवं धर्म के आश्रय, त्रिलोक के स्वामी तथा अपने प्रिय भगवान विष्णु के संग त्रिलोक में विचरण करती हूँ। हे वैश्यों ! तुम निश्चित ही नवनिधि सहित मेरी सकल सम्पदा को मुझसे प्राप्त करोगे—ऐसा तुम्हारा लिये मेरा आशीर्वचन है।

छ0 : माघ की जो पूर्णिमा उसमें रही प्रियता मेरी।
क्योंकि इस दिन ही हुआ प्राकट्य मम निजता मेरी।
गुण दोष मंथन कर्म करु अरु चिर कृपा पावो मेरी।
हे अग्र ! तुम मम पुत्र सो सुख सम्पदा भोगो मेरी।। (2)

(2) माता महालक्ष्मी अपने जन्म का रहस्य प्रकट करते हुए बोलीं—हे अग्रदेव ! मार्गशीर्ष की पूर्णिमा तिथि में मेरी विशेष प्रियता है क्योंकि इसी दिन समुद्र मंथन के द्वारा पृथ्वी पर मेरा प्राकट्य हुआ था।
जो विवेकीजन अपने गुण-दोषों का मंथन करके योग्य एवं उचित कर्म करते हैं उन पर मेरी चिर कृपा बरसती है। हे अग्रवंशियों ! तुम मेरे पुत्र

हो। इसलिये त्रिलोक में व्याप्त मेरी सकल सुख-सम्पदा पर भोग करने का तुम्हारा अधिकार है।

छ0 : स्त्रि निर्धन वृद्ध निर्बल संग जो रहते सदा।
शिक्षा चिकित्सा सर्वहित की भावना जिनमें सदा।
व्यवसायबुद्धी शुद्ध से निज कर्म रत जो जन सदा।
यह बात पूरण सत्य है मम नित्य वासा उत सदा।। (3)

(3) माता महालक्ष्मी कहती हैं—हे अग्रदेव ! जो प्राणी स्त्रियों, निर्धनों, वृद्धों तथा असक्तजनों की सहायता करना अपना दायित्व समझते हैं तथा जिन सुविचारवान एवं शुभ संस्कारवान जनों में—हर व्यक्ति को समान शिक्षा एवं चिकित्सा का लाभ मिले—ऐसी सर्वहित भावना निहित होती है तथा जो व्यक्ति चाहे वे किसी भी वर्ण, जाति, रंग अथवा सम्प्रदाय में क्यों न जन्मे हो यदि वे अपनी शुद्ध व्यवसायित्मका बुद्धि के द्वारा अपने स्वाभाविक कर्मों में सत्यता से संलगन रहते हैं तो मेरे इस वचन को पूर्ण सत्य मानो कि वहाँ मेरा नित्य वास होता है।

छ0 : हे अग्र ! तुम मम पुत्र हो इसमें तनिक सन्देह ना।
त्रयलोक देखेगा अजब कौतुक कहेगा देख ना!
पुत्र बूढ़ा माँ युवा फिर भी गजब का मेल ना !
रुद्र अज सुर मुनि कहेंगे विष्णु का यह खेल ना ? (4)

(4) माता महालक्ष्मी बोली—हे अग्रसेन ! तुम मेरे पुत्र हो, इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं है। तीनों लोक इसे देखकर एक दूसरे से कहेंगे कि क्या आपने कभी ऐसा कौतुक देखा है ? कि पुत्र तो बूढ़ा है और माँ युवा। फिर भी यह मेल गजब का है ? विभिन्न प्रश्न करते हुए वे एक-दूसरे से पूँछेंगे कि क्या ऐसा नहीं है ? अरे, भगवान रुद्र, ब्रह्मदेव, देवगण तथा समस्त मुनिवृंद इस कौतुक को भगवान विष्णु की ही लीला (खेल) कहेंगे।

छ0 : विष्णु लीन्हा पुत्र-सुख जब ध्रुव लिया था गोद में।
मैं रही वंचित नहीं जो आ सकी आमोद में।
प्रहलाद को भोजन कराया पर नहीं था गोद में।
हे पुत्र ! इच्छा पूर्ण करु आ जाव निज माँ गोद में।। (5)

(5) माता बोली—हे अग्र ! मेरे स्वामी ने एक पंचवर्षीय बालक को अपनी गोद में बैठाया और पुत्र-सुख (पिता बने) को प्राप्त किया। परन्तु मैं इससे वंचित ही रही जो पुत्र-सुख को प्राप्त न हो सकी। मुझे अवसर भी मिला जब मैंने कारागार में बन्दी प्रहलाद को भोजन कराया। परन्तु भूलवश मैं उसे गोद में न बैठा पायी। हे पुत्र ! अब तुम मेरी इस अभिलाषा को पूर्ण करो। तुम निस्संकोच मेरी अर्थात् अपनी माँ की गोद में आकर बैठ जाओ।

छ0 : नभ दुंदुभी बाजन लगीं अरु अपछरा नाचन लगीं।
पुष्प मेघों से पवन गति मंद मंदावन लगीं।
देव ऋषि गंधर्व यछ मुनि जीवणां गावन लगीं।
होय गरुणारूढ़ सुत वैकुण्ठ माँ धावन लगीं।। (6)

(6) जैमिनी ऋषि कहते हैं—हे जनमेजय ! यह सुनते ही आकाश में दुंदुभी आदि बाजे बजने लगे। अप्सरायें नृत्य करने लगीं। मेघों से दिव्य एवं मादकता से परिपूर्ण सुगंधित पुष्पों की वर्षा होने लगी। देव, ऋषि, गंधर्व, यक्ष एवं मुनियों की जिह्वा से मधुर गायन फूट पड़े और इन सबके मध्य अग्रदेवअवतारी महाराज अग्रसेन जी विष्णुवाहन गरुण पर सवार हो गए जिन्हें लेकर माता महालक्ष्मी भगवती निजधाम बैकुण्ठ की ओर द्रुतगति से उड़ चलीं।

छ0 : हे अग्रजन ! तुम धन्य हो क्योंकी सदा तुम अग्र थे।
श्री हरी हनुमान नारद रुद्र रवि प्रिय अग्र थे।

सुख शांति समरधि सर्वसुख सम्पत्ति सँग तुम अग्र थे।
अग्र हो अग ही रहोगे क्योंकि तुम चिर अग्र थे।। (7)

(7) जैमिनी जी कहते हैं—हे अग्रवंशियों ! तुम धन्य हो क्योंकि तुम (परहित कार्यों में) सदा ही अग्र रहे हो। लक्ष्मी जी, भगवान श्री हरि, हनुमान जी, नारद जी, भगवान शंकर एवं तुम्हारे कुल के संस्थापक सूर्यदेव इन सबके प्रिय अग्रदेव ही थे। तुम अग्र कैसे रहे थे ? क्योंकि सुख, शांति, समृद्धि, आत्मानंद संसार की सम्पूर्ण सम्पत्ति तथा सबका संग तुम्हारे साथ था। हे अग्रवैश्यों ! तुम अग्र थे, अग्र हो तथा सृष्टिपर्यन्त अग्र ही रहोगे।

दो0 : कोई स्थिर है नहीं, इस जग में भैया।
निज को पर से जोड़ दो, श्रेष्ठ भाव सैंया।।क।।

दो0 : (क) कवि कहता है कि अरे भैया! इस जग में कोई स्थिर नहीं है। इसलिये अपने सैंया में श्रेष्ठ भाव रखते हुए स्वयं को पर अर्थात् परम से जोड़ दीजिये।

तन का क्षय हूआ सदा, आगें भी होगा।
अग्रसेन अरु माधवी, 'जोड़ा' नहिं होगा।।ख।।

(ख) शरीर का सदा क्षय हुआ है, आगें भी ऐसा ही होगा किन्तु श्री अग्रसेन और माधवी जैसा जोड़ा फिर नहीं होगा।

नृप जनमेजय से कहा, व्यास शिष्य जैमिनि।
द्वेष-भाव को त्याग रख, अग्र-भाव उरहिनि।।ग।।

(ग) व्यासशिष्य जैमिनी ऋषि ने नृप जनमेजय से कहा कि तुम द्वेष-भाव को त्यागकर हृदय में अग्र-भाव अर्थात् सर्वलोकहितंधर्मम् को धारण कर लो।

पढ़ै सुनै जो भाव सँग, यह स्तोत्र महान।
विष्णुदास उहि कार्य सब,पूरण सुखमय जान।।घ।। (186)

(घ) विष्णुदास जी कहते हैं कि जो प्राणी भावसहित इस महान स्त्रोत को पढ़ते हैं अथवा सुनते हैं उनके सब कार्य पूरे हो जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं। (186)

अध्याय छब्बीस 'मोक्ष एवं वैकुण्ठ' पूर्ण हुआ।

:::::

निज विचार

छ0 : दुनियाँ खतम हो जाएगी पर तुम नहीं हो पाओगे।
भ्रूण-हत्या से बचोगे तो अमर कहलाओगे।
सहयोग निज जन का करोगे तो सुखी बन धाओगे।
व्यापार तुम कुछ भी करो लक्ष्मी-कृपा नित पाओगे।।

अर्थ—कवि कहते हैं कि—हे वैश्यों ! सारी दुनियां भले ही खत्म हो जाए फिर भी तुम किसी न किसी रूप में शेष रहेंगे परन्तु ध्यान रहे भ्रूण-हत्या से यदि तुम स्वयं को बचा सके तभी तुम अमर कहलाओगे अर्थात् पृथ्वी पर बच पाओगे। साथ ही, यदि तुम स्वजनों का तन-मन-धन से सहयोग करते रहोगे तो नित्य सुख को प्राप्त होकर इधर उधर मस्ती से दौड़ते रहोगे। अंत में यही कहना समयोचित होगा कि आप कोई भी व्यापार करें कुबेर की स्वामिनी की कृपा आपको सतत प्राप्त होती रहेगी।

卐 अध्याय सत्ताइस (जागृति) 卐

चौ0 : गाँव-गाँव में अब राजा हैं। जो निज प्रिय हित के साजा हैं।।
कोइ-कोइ ही होता ऐसा। पूजित अरु प्रशंसनीय जैसा।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि इस कलियुग का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अब गाँव-गाँव में अनेकों राजा पैदा हो गये हैं। ये राजागण सिर्फ अपना ही प्रिय एवं हित सजाने-सँवारने वाले हैं। इनमें कोई-कोई राजा ऐसा होता है जो सर्वप्रजा में समान रूप से पूजित और प्रशंसनीय हो।

राजाओं में एकहि राजा। अग्रसेन जो भए महाराजा।।
सारी पृथ्वी थी प्रभाव में। पूजनीय अति सर्वभाव में।।

(2) अब तक समान विचारधारा वाले जितने भी राजागण इस पृथ्वी पर जन्मे हैं उनमें एक ही राजा ऐसे हुए हैं - श्री अग्रसेन- जो महाराजा के रूप में जगविख्यात हुये। यह सारी पृथ्वी उनके प्रभाव में थी। सम्पूर्ण प्रजा में वह सर्व पूज्य थे।

उज्ज्वल यश देखा जिस जिसने। अग्र-चरण थामे उस उसने।।
जो साम्राज्य-प्राप्ति के गुण हैं। वो धर्मऽर्थ और नय गुण हैं।।

(3) जिस जिसने उनके उज्ज्वल यश का दर्शन किया उस उसने श्री अग्रसेन जी के चरणों को थाम लिया। साम्राज्य - प्राप्ति के जितने भी जो जो गुण हैं वे धर्म, अर्थ और नय ऐसे तीन गुण कहे जाते हैं।

लक्षण सम्यक् प्रजापालनम्। वीर और यश बल दुष्प्राप्यम।।
ये दुर्लभ गुण सहज प्राप्त थे। अग्रसेन जी को छाजत थे।।

(4) सम्यक् लक्षण, प्रजापालन, वीरता, यश और दुष्प्राप्य बल जैसे दुर्लभ गुण श्री अग्रसेन जी को सहज उलब्ध थे। ये गुण केवल अग्रसेन जी में ही- 'गुण' सिद्ध होते थे।

दो0 : अग्र-पुत्र गुणवान अरु, अति विनम्र सबही।
पालन करते राज्य का, कुल गुणिजन सम ही।। (187)

दो0 : श्री अग्रसेन जी के सभी पुत्र गुणवान और अति विनम्र थे। ये सभी अग्रकुल के गुणीजनों के समान ही अपने राज्य का पालन करते थे। (187)

चौ० : कलि-प्रभाव से नहीं सुरक्षित।अन्य राष्ट्र के लोग कहत इति।।
राजा स्वार्थ-सिद्धि में रत हैं।जनपालक नहिं शासकवत हैं।।

चौ० : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि अन्य राष्ट्रों के लोग ऐसा कहते हैं कि कलियुग के प्रभाव से आज कोई भी सुरक्षित नहीं रहा। आज सभी राजागण स्वार्थ - सिद्धि में रत हैं। आज के राजा जनता के पालक नहीं है बल्कि वे शासक की तरह जनता पर जबरन शासन करते हैं।

जहँ दुष्टात्मा शासन करते। कुलाचार्य धर्मऽर्थ न टिकते।।
फिर सुख कैसे वहाँ पे सम्भव? पूर्ण असम्भव पूर्ण असम्भव।।

(2) शास्त्रों का कथन है कि जहाँ दुष्ट लोग शासन कर रहे हों वहाँ कुलाचार्य नहीं टिकते। धर्म और अर्थ भी वहाँ स्थिर नहीं रहते। फिर भला वहाँ सुख की प्राप्ति कैसे सम्भव है ? नहीं जनमेजय ! ऐसा पूर्ण असम्भव है। यह बिलकुल भी सम्भव नहीं है।

पुत्र दयालू महातमा हैं। जीतेन्द्रिय यैशस्वी भी हैं।।
अजातशत्रु सँग धर्मपरायण। सदाचार नित उरहिं धरायण।।

(3) श्री अग्रसेन जी के ये सभी वंशज दयालू हैं। ये महान आत्मा वाले हैं। ये अपने हृदय में नित्य सदाचार धारण करने वाले हैं। साथ ही ये अग्रवैश्य पुत्र अजातशत्रु एवं धर्मपरायण हैं। ये अपने उर में सदाचार को धारण करने वाले हैं।

चहूँ ओर से प्राणी धाये। अग्रोहा में बसबे आये।।
बोले सब यों विभु राजा से। हम सेवक तुम स्वामी अब से।।

(4) संसार की चारों दिशाओं से भिन्न-भिन्न जातियों के लोग अग्रोहा में बसने की इच्छा से धाए। वे सब अप्रवासी महाराज विभु से कहने लगे - हे महाराज! अब से हम आपके सेवक और आप हमारे स्वामी हैं।

दो० : प्रजा दुष्ट सँग यदि रहे, तो सम्पन् ना होय।।
गुणी राज्य में ही उसे, सब सुख प्राप्ती होय।।क।।

दो० : (क) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि यदि प्रजा दुष्ट राजा के सान्निध्य में रहती है तो वह कभी सम्पन्न नहीं हो सकती। वह तो गुणवान राजा के ही राज्य में सुखों की प्राप्ति कर सकती है।

वो हि रहेगा अग्र में, जो लेगा सौगन्ध।
पत्नि रखेगा एक ही, यह कुल उपवन-गन्ध।।ख।

(ख) तब विभुसेन जी ने घोषणा की कि इस महान आग्रेयगणराज्य में वही व्यक्ति रह सकता है जो यह सौगन्ध लेगा कि वह कुल रूपी उपवन को सुवासित करने वाली एक ही पत्नी का वरण करेगा।

अग्रवंश - संरक्षिका, मातु महालक्ष्मी।
प्रातः उठकर ध्याइये, पद गह माँ लक्ष्मी।।ग।। (188)

(ग) और हाँ, इस अग्रवंश की परम संरक्षिका माता महालक्ष्मी होंगी तथा राज्य के समस्त नागरिकों को प्रातः उठकर माता लक्ष्मी के चरण पकड़ने होंगे। उन्हें उनकी प्रथम पूजा करनी होगी।(188)

चौ0 : धन बहुतेरा दिया सभी को। घर दुकान सम्मान सभी को।।
कोई निर्धन नहीं वहाँ पर। सभी श्रेष्ठि व्यवसायी हितकर।।

चौ0 : (1) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि श्री अग्र-पुत्र विभु राजा ने सभी प्रवासियों को बहुत सा धन दिया। सभी को रहने को मकान दिये। व्यापार के लिए दुकान दी और सभी को सम्मान सहित जीवन जीने का अधिकार भी प्रदान किया। आग्रेयपुरी में कोई भी प्राणी निर्धन नहीं था। वहाँ सभी श्रेष्ठि थे। सभी व्यवसायी थे। सभी परहित की भावना से सदा युक्त रहने वाले थे।

जनमेजय बोले जैमिनि से। श्रेष्ठ गुरू से व्यास शिष्य से।।
अग्रसेन जी अती धन्य हैं। धन्य जनम जिहि कहत धन्य हैं।।

(2) तब नृप जनमेजय जो व्यास जी के शिष्य होने के साथ एक महान आचार्य भी थे ऐसे योग्य जैमिनी ऋषि से बोले कि श्री अग्रसेन जी अति धन्य हैं। उनका जन्म भी धन्य है जो अग्रसेन जी के प्रकट होने को धन्य कहते हैं।

मानवश्रेष्ठहु अग्रसेन जी। जगभर्ता हू अग्रसेन जी।।
दुखहर्ता हू अग्रसेन जी। समकर्ता हू अग्रसेन जी।।

(3) श्री अग्रसेन जी समस्त मानवों में श्रेष्ठ हैं। श्री अग्रसेन जी जगत के भर्ता है। श्री अग्रसेन जी सबके दु:खों का हरण करने वाले हैं। श्री अग्रसेन जी समान भाव से कार्य करने वाले हैं।

कर्म करावैं अग्रसेन जी। धर्म धरावैं अग्रसेन जी।।
सर्वदेव हैं अग्रसेन जी। अग्र देव हैं अग्रसेन जी।।

(4) श्री अग्रसेन जी सबको कर्म करते रहने की प्रेरणा देकर सबसे कर्म कराते है। श्री अग्रसेन समत्-कर्म को धारण करते कराते हैं। श्री अग्रसेन जी कलियुग में सब देवों के सच्चे प्रतिनिधि हैं। वास्तव में देखा जाए तो अग्रसेन जी तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं मे से ही एक देव अग्रदेव के अवतारी हैं।

दो0 : अग्र-कथा को जानकर, मैं अब यह जाना।
दुख का कारण ईर्ष्या, बुधिजन इति माना।।क।।

दो0 : (क) जनमेजय कहते हैं कि हे गुरुदेव! श्री अग्र-कथा को जानकर मैं अब यह जान पाया हूँ कि बुद्धिमानों ने दुख का कारण ईर्ष्या को माना है।

पिता संग जो कुछ घटा, वो था प्रारब्ध में।
पहले डसना मुक्ति फिर, यहि था प्रारम्भ में।।ख।

(ख) हे प्रभो! पिता परीक्षित के साथ जो कुछ भी घटा वो उनके प्रारब्ध में था। तक्षक के द्वारा पहले तो डसा जाना और फिर ज्ञान के द्वारा मुक्ति पाना- यह तो उनके प्रारब्ध में था।

जो प्राणी जैसा करे, भरता वैसे ही।
तक्षक फेंका तात ने, निजहू तैसे ही।।ग।।

(ग) जो प्राणी जैसा करता है वो वैसा ही भरता है। पिता ने तक्षक को फेंका तो तक्षक ने पिता को फेंक दिया।

सबका अपना कर्म है, करते नित रहना।
प्रजा पालनम् काउही, काहू कौ डसना।।घ।।(189)

(घ) कवि कहता है कि सबका अपना-अपना कर्म है। सभी को अपने-अपने कर्मों को करते रहना चाहिए। किसी का काम प्रजा का पालन करना है तो किसी का काम किसी को डसना है।(189)

चौ0 : जनमेजय बोले जैमिनि से। अग्र-चरित धारा मन चित से।।
एक बार फिर सुनना चाहूँ। दिव्य चरित अग्रहि अवगाहूँ।।

चौ0 : (1) नृप जनमेजय जैमिनी ऋषि से कहते हैं - हे गुरुदेव! मैंने आपके द्वारा बतलाये गये महाराजा अग्रसेन जी के दिव्य चरित्र को अपने मन एवं चित्त में धारण कर लिया है। मैं एक बार पुनः अग्रसेन जी के इस दिव्य चरित को सुनना चाहता हूँ। मैं इस चरित में डूबना चाहता हूँ प्रभो।

श्रेष्ठ पुरुष जस करैं आचरण। उनको ही बस कीजे धारण।।
बुद्धी में भटकाव न लाओ। धर्म अहिंसा हृदय धराओ।।

(2) जैमिनी ऋषि कहते हैं कि - हे जनमेजय! श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं हमें उन्हें धारण करना चाहिये। अब तुम अपनी बुद्धि को भटकने मत देना। अहिंसा रूपी महानधर्म को तुम अपने हृदय में धारण कर लो।

अहिंसा परमोधर्म रहा है। सुधीजनों ने यही कहा है।।
शोकभाव को त्यागो राजन!। तप से सुःखभाव लो राजन!।।

(3) अहिंसा परमोधर्म रहा है। विद्वानों ने ऐसा ही कहा है। हे राजन! अब तुम शोक भाव को त्याग दो और तप द्वारा महान सुःखभाव को प्राप्त करो।

तुमने यज्ञ तीन सौ कीये। जन-हित भाव धरहु निज हीये।।
नमस्कार मैं उनको करता। जिनका उर जन हित में भरता।।
जैमिनि व्यास संग चल दीन्हे। तप हित निज आश्रम पग कीन्हे।।

(4) हे राजन्! तुमने तीन सौ यज्ञ किये हैं। अब तुम अपने हृदय में जन-हित की भावना को धारण करो। जनमेजय कहते हैं कि हे प्रभो! मैं जनमेजय उन सभी श्रेष्ठजनों को नमस्कार करता हूँ जिनके हृदय सर्वलोकहितंधर्मम् अर्थात् जन-हित की महान भावना से भरे रहते हैं।

जैमिनी ऋषि अपने गुरु वेदव्यास जी को आता हुआ देखकर व्यास जी के साथ तपस्या में पुनः रत होने के लिये अपने आश्रम की ओर चल पड़े।

दो0 : नृप जनमेजय ने किया, मानव धर्म ग्रहण।
संकट काटैं सबन के, आते जोई शरण।।(क)

दो0 : (क) कवि कहते हैं कि परीक्षित-पुत्र नृप जनमेजय ने तब मानव-धर्म को ग्रहण कर लिया। जो इस मानव-धर्म की शरण में आता है तो यह उनके सभी संकटों को काट डालता है।

यह उत्तम आख्यान था, अग्र माधवी का।
"विष्णुदास" सबने सुना, देवऽरु देवी का।।ख।। (190)

(ख) विष्णुदास जी कहते हैं कि यह महाराजा अग्रसेन और महारानी माधवी का उत्तम आख्यान था जिसे आप सबने ध्यानपूर्वक श्रवण किया। जो कोई भी अग्रदेव और देवी माधवी के इस दिव्य और अनुपम चरित्र को अपने हृदय में धारण करता है यथार्थ में वो ही सच्ची वैश्य होता है। (190)

अध्याय सत्ताइस 'जागृति' पूर्ण हुआ।
(इति अग्रसेन भागवत)

:::::

(दोहे के अन्त में गाइये)
अग्रवर अग्रसेन पद गहि शरणम्
लक्ष्मी हरि ओम जय विश्वेश्वर
जय करुणेश्वर जय समतेश्वर

विश्राम दोहे

अग्रसेन महाराज का, शुभ चरित्र पावन।
एक बार भी जो सुनै, छूटत जग तापन।।क।।
अग्र-चरित आधार है, मानव धर्म परम।
सुख ऐश्वर नित देत यह, करिये नित्य करम।।ख।।
अग्रसेन की भागवत, सुनता जो इक बार।
"विष्णुदास" वह शीघ्र ही, भव से होता पार।।ग।।
भूमी यश बल वैभवहु, विजय सिरी इच्छा।
"विष्णुदास" यासों मिले, पढ़ सँग सद्इच्छा।।घ।।
जहाँ रहे यह भागवत, अग्रोहापति की।
"विष्णुदास" दुख आय ना, बात है धीमति की।।ड.।।
पर्व कृष्ण जन्माष्टमी, समय धूप के तीन।
"विष्णुदास" रचना करी, श्रीदेवी-आधीन।।च।।
दिवस शनी के तात का, यमुना के पित का।
हनूमान गुरु श्रेष्ठ का, कर्म हुआ हित का।।छ।।
मेरा इसमें कुछ नहीं, ना कीन्हा मैंने।
"विष्णुदास" बस लिख गई, कैसे ? प्रभु जाने।।ज।।
भाद्र मास पख कृष्ण है, तिथि चौबीस महान।
दो सौ आगें आठ है, "विष्णू" जबहि लिखान।।झ।।
पैंसठ पीछे बीस जिहि, वो विक्रमि सम्वत्।
"विष्णुदास" रचना भई, हरी ओम् तत्सत्।।ञ।।
एक सौ नब्बै ही लिखे, दोहे अग्र महान।
सर्व जगत सुख-सूत्र जो, विष्णुदास सच जान।।ट।।
अच्छा अब हम जात हैं, महालक्ष्मि चरणन।
"विष्णुदास" चलना चहो, धारो मन तप-धन।।ठ।।

:::::

卐 (अग्रसेन भागवत जी की आरती) 卐

आरती अग्र भागवत जी की। अग्रसेन महाराजा जी की।।टेक।।
महालक्ष्मी के प्रिय सुत तुम, शिवशंकर के कृपापात्र तुम,
इन्द्र-कृपा-अभिलाषी भी तुम, आरति प्रीय भाव ही जी की। (1)
सूर्यवंश के तुम कुलभूषण, नागवंश-गल मणि आभूषण,
प्रगतिवंश सद् इच्छा भूषण,आरति शुभअभिलाषी जी की। (2)
आग्रेयपुरी के संस्थापक तुम, वैश्य-वंश के स्थापक तुम,
न्याय-नीति नय संग्राहक तुम,आरति दृढ स्वराज्य हीजी की। (3)
धर्मभाव से धर्मदेव तुम, कर्मभाव से कर्मदेव तुम,
सत्यभाव से सत्यदेव तुम, आरति श्रेष्ठ भाव ही जी की। (3)
वल्लभ-वैदर्भी के सुत तुम, आश्विन शुक्ल एक जन्मे तुम,
कृष्ण युधिष्ठिर अनुरागी तुम, आरति माधवि उर प्रिय जी की। (4)
पुत्र अष्टदश तुमने जाये, सुता ईश्वरी गोद खिलाये।
वधूँ वासुकी से तुम पाये, आरति शुभ संतति पित जी की। (6)
यज्ञ अठारह जब तुम कीये, पशु-हिंसा भायी नहिं हीये,
क्षत्रि-धर्म तुरतहि तज दीये, आरति वैश्य अग्र ही जी की। (8)
गोत्र ऋत्विजों से लीन्हे तुम, व्याह सत्तरह में बोले तुम,
'सर्वलोकहितधर्म' कहे तुम, आरति सर्व हितैषी जी की। (9)
एक रुपैया एक ईंट दी, सत्य प्रेम विश्वास सीख दी,
परम अहिंसा सद्वृत्ती दी, आरति करुणामय उर जी की। (10)
तुम राजा तुम महाराजा हो, पुण्यी धर्मी महातमा हो,
शत्रु अजात मोक्षधामा हो, आरति बैकुण्ठगामी जी की। (11)
कलि पापों को दूर करो प्रभु, खाली झोली सबकी भरो प्रभु,
कष्ट अशांती वेग हरो प्रभु, आरति सौख्यभाव ही जी की। (12)
हम पर कृपा प्रभू नित कीजे, धन सुत ऐश्वर श्री नित दीजे,
'विष्णुदास' सब सुखी करीजे, आरति श्री श्रीपति हीजी की। (13)

(भगवान अग्रदेव जी की जै)

॥ ॐ ॥

अथ श्री अग्रसेनस्य अष्टोत्तर शतनाम मंत्रः

(भगवान अग्रसेन जी के 108 नाम मंत्र)

(1) ॐ श्री अग्रसेनयै नमः, (2) ॐ श्री अग्रोहापतये नमः, (3) ॐ श्री आग्रेयगण-राज्याधिपये नमः (4) ॐ श्री आग्रेयेश्वराय नमः (5) ॐ श्री अग्रवंश संस्थापकाय नमः (6) ॐ श्री वैश्यवंशस्थापकाय नमः (7) ॐश्री अग्रोहाधीश्वराय नमः (8) ॐ श्री सूर्यवंशपुत्राय नमः (9) ॐ श्री रघुवंशपुत्राय नमः (10) ॐश्री कुश वंशजाय नमः (11) ॐ श्री वृहत्सेनवंशजाय नमः (12) ॐ श्री धनपाल वैश्यवंशजाय नमः (13) ॐ श्री बल्लभसुताय नमः (14) ॐ श्री भगवली नंदनाय नमः (15) ॐ श्री कुंद भ्रातापुत्राय नमः (16) ॐ श्री मुकुटाभ्राताय नमः (17) ॐ श्री प्रतापपुरपुत्राय नमः (18) ॐ श्री सर्ववैश्येश्वराय नमः (19) ॐ श्री विष्णुकृपापात्राय नमः (20) ॐ श्री महालक्ष्मी पुत्राय नमः (21) ॐ श्री शौर्यग्रजाय नमः (22) ॐ श्री वज्रसेनभ्राताय नमः (23) ॐ श्री माधवीपतये नमः (24) ॐ श्री नागवंशमित्राय नमः (25) ॐ श्री महीधरजामाताय नमः (26) ॐ नागेन्द्रीजामाताय नमः (27) ॐ श्री सर्वसुहृदयेश्वराय नमः (28) ॐ श्री प्रजापालकाय नमः (29) ॐ श्री सर्वजनहित साधकाय नमः (30) ॐ श्री सर्वसुखप्रदाताय नमः (31) ॐ श्री माधवीसिंदूराय नमः (32) ॐश्री सर्वलोकहित दर्शनाय नमः (33) ॐ श्री कृष्णशिष्याय नमः (34) ॐ श्री युधिष्ठिर कृपापात्राय नमः (35) ॐ श्री पाण्डवहित साधकाय नमः (36) ॐ श्री धर्मरक्षकाय नमः (37) ॐ श्री कर्मेश्वराय नमः (38) ॐ श्री प्रेमेश्वराय नमः (39) ॐ श्री दीनार्तहितसाधकाय नमः (40) ॐ श्री समतेश्वराय नमः (41) ॐ श्री शोषितेश्वराय नमः (42) ॐ श्री समाजवादप्रवर्तकाय नमः (43) ॐ श्री कुबेरअनुग्रहप्राप्ताय नमः (44) ॐ श्री एकात्मवादेश्वराय नमः (45) ॐ निर्धनेश्वराय नमः (46) ॐ श्री अहिंसेश्वराय नमः (47) ॐ श्री सत्येश्वराय नमः (48) ॐ श्री गोपालकाय नमः (49) ॐ श्री भूपतये नमः (50) ॐ श्री दर्पदंशाय नमः (51) ॐ हनुआराधकाय नमः (52) ॐ श्री शिवसाधकाय नमः (53) ॐ श्री गर्गार्चकाय नमः (54) ॐ श्री महाराजाय नमः (55) ॐ

श्री राजराजेश्वराय नमः (56) ॐ श्री सकलरागद्वेष निवारणाय नमः (57) ॐ श्री निष्केष्टिकेश्वराय नमः (58) ॐ श्री कृषि संवर्धकाय नमः (59) ॐ श्री पर्यावरणसुरक्षकाय नमः (60) ॐ श्री बलनिपुणाय नमः (61) ॐ श्री याचकेश्वराय नमः (62) ॐ श्री पशुरक्षकाय नमः (63) ॐ श्री महादानशीलकाय नमः (64) ॐ श्री व्यवसायेश्वराय नमः (65) ॐ श्री वाणिज्येश्वराय नमः (66) ॐ श्री उद्योगेश्वराय नमः (67) ॐ श्री महातपोधनाय नमः (68) ॐ श्री समृद्धेश्वराय नमः (69) ॐ श्री श्रीपुत्राय नमः (70) ॐ श्री लक्ष्मीसाधकाय नमः (71) ॐ श्री सरस्वतीकृपापात्राय नमः (72) ॐ श्री इन्द्रमित्राय नमः (73) ॐ श्री ब्रहस्पतिकृपापात्राय नमः (74) ॐ श्री न्यायेश्वराय नमः (75) ॐ श्री निष्ठेश्वराय नमः (भू) (76) ॐ श्री शुभसंदेशप्रसारकाय नमः (77) ॐ श्री करूणेश्वराय नमः (78) ॐ श्री धीमानेश्वराय नमः (79) ॐ श्री सर्ववर्ण हितकारणााय नमः (80) ॐ श्री त्रिलोक विजताय नमः (81) ॐ श्री विनीतेश्वराय नमः (82) ॐ श्री देवमित्राय नमः (83) ॐ श्री अबलेश्वराय नमः (84) ॐ श्री जल संरक्षकाय नमः (85) ॐ श्री प्रकृतिरक्षकाय नमः (86) ॐ श्री धर्मदेवाय नमः (87) ॐ श्री अग्रदेवाय नमः (88) ॐ श्री अग्रेश्वराय नमः (89) ॐ श्री प्रजातंत्रसंस्थापकाय नमः (90) ॐ श्री आदिगण राज्याधिपतये नमः (91) ॐ श्री अष्टादशसुतजनकाय नमः (92) ॐ श्री ईश्वरीपितृाय नमः (93) ॐ श्री एकपत्नीव्रतधारणाय नमः (94) ॐ श्री विभुपित्राय नमः (95) ॐ श्री अग्रगौरवाय नमः (96) ॐ श्री ज्ञानेश्वराय नमः (97) ॐ श्री महाबलाधिपतये नमः (98) ॐ श्री दुष्टविनाशकाय नमः (99) ॐ श्री सकलजीवमित्राय नमः (100) ॐ श्री निरीहेश्वराय नमः (101) ॐ श्री गर्ग शिष्याय नमः (102) ॐ श्री उद्दालकमानप्रदाताय नमः (103) ॐ श्री गोलोकवासिन्यै नमः (104) ॐ श्री समत्वोपदेशकाय नमः (105) ॐ श्री सकलविश्वभरणाय नमः (106) ॐ श्री जनमेजय उद्धारकाय नमः (107) ॐ श्री अग्रोपाख्याननायकाय नमः (108) ॐ सर्वशांतीश्वराय नमः।

***

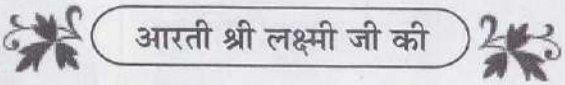

आरती श्री लक्ष्मी जी की

ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता।
तुमको निशिदिन सेवत, हर विष्णु धाता॥ (टेक)
ॐ जय...

उमा, रमा, ब्रह्माणी, तुम ही जग माता।
सूर्य चन्दमा ध्यावत, नारद ऋषि गाता॥
ॐ जय ...

दुर्गा रूप निरंजिनि, सुख सम्पति दाता।
जो कोई तुमको ध्यावत, ऋधि-सिधि धन पाता॥
ॐ जय...

तुम पाताल निवासिनी, तुम ही शुभदाता।
कर्म प्रभाव-प्रकाशिनि, भवनिधि की त्राता॥
ॐ जय...

जिस घर में तुम रहतीं, तहँ सद्गुण आता।
सब संभव हो जाता, मन नहिं घबराता॥
ॐ जय...

तुम बिन यज्ञ न होते, वस्त्र न कोई पाता।
खान-पान का वैभव, सब तुमसे आता॥
ॐ जय...

ॐ शुभ गुण मन्दिर सुन्दर, क्षीरोदधि जाता।
रत्न चतुर्दश तुम बिन, कोई नहीं पाता॥
ॐ जय...

महालक्ष्मी जी की आरती, जो कोई नर गाता।
उर आनन्द समाता, पाप उतर जाता॥

लेखक का परिचय

(अग्रोहा विकास ट्रस्ट, अग्रोहा द्वारा सेठ द्वारिकाप्रसाद सर्राफ राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित प्रमुख अग्र विद्वान एवं अग्रसेन भागवत के विश्व में एकमात्र प्रवक्ता)

आचार्य विष्णुदास कृत :

- गीता एवं दुर्गा सप्तशती के मानस शैली में एकमात्र अनुवादक
- हनुमान चालीसा का अंग्रेजी पद्यानुवाद
- सुन्दरकाण्ड का अंग्रेजी पद्यानुवाद
- जैन रामायण (समणसुत्तम का पद्यानुवाद)
- गुरू नानक चालीसा एवं आरती
- झूलेलाल चालीसा एवं आरती
- नारद पुराण का पद्यानुवाद
- महात्मा गाँधी चालीसा एवं आरती
- समाजवाद साठा
- श्री अग्रसेन चालीसा एवं आरती
- बाबूलाल अग्रवाल छतरपुर द्वारा लिखित श्री अग्रसेन चालीसा का पद्यानुवाद
- संस्थापक महंत श्री अग्रमहालक्ष्मी मंदिर, बल्केश्वर, आगरा (भारतवर्ष में प्रथम अग्र मन्दिर)
- अग्रसेन भागवत
- अग्रसेन भजनमाला वी. सी. डी. भाग 1
- अग्रसेन डी. वी. डी. फिल्म के निर्माता-निर्देशक
- अग्रसेन माधवी के चित्रों के वितरणकर्ता
- भगवान अग्रसेन भजन संध्या एवं नृत्य नाटिका के प्रवर्तक
- गीता, भागवत, रामकथा, साँई भागवत आदि के सरस एवं संगीतमय व्याख्याता
- सम्पादक प्रकाशक : **अग्र मंत्र** त्रैमासिक पत्रिका
- राष्ट्रीय अध्यक्ष : महाराजा अग्रसेन राष्ट्रीय ज्ञान परीक्षा समिति
- अग्रपीठ प्रस्तावक

शुभेच्छु

श्री हर शरण गोयल
समाजसेवी
मेरठ

श्री मदन लाल सिंघल
(एडवोकेट)
अध्यक्ष-बाड़मेर

श्री विशेष चन्द अग्रवाल
अग्रवाल पंचायती मन्दिर
बयाना

श्री पुरुषोत्तम दास गुप्ता
पूर्व अध्यक्ष
बाड़मेर

श्री ओम प्रकाश गर्ग मधुप
अग्रविद्वान
बाड़मेर

श्री किरोड़ीमल मूलचन्द गोयल
वरिष्ठ समाजसेवी
गाँधीधाम

श्रीमती शकुन्तला किरोड़ीमल गोयल
वरिष्ठ अग्रसमाज सेविका
गाँधीधाम

सेवक—अमन गुप्ता
अग्रवाल महासभा
हापुड़

श्री विजय कुमार अग्रवाल
खुरजा पेंच
हापुड़

श्री राकेश गुप्ता
हापुड़ इलैक्ट्रिक
हापुड़

श्री चक्रवर्ती गर्ग
शिवपुरी
हापुड़

श्री टुक्कीराम गर्ग
अहाता अग्रसेन
हापुड़

शिवम ट्रेडर्स
हापुड़

श्री संजीव सिंघल
पक्का बाग
हापुड़

श्री शान्तनु सिंघल
जवाहर गंज
हापुड़

श्री प्रदीप कुमार अग्रवाल
(ओमेक्स)
नई मण्डी, हापुड़

द्वारा—श्री रजनीश अग्रवाल
क्लासिक स्टील्स
हापुड़

श्री जितेन्द्र कंसल
कसेरठ बाजार
हापुड़

श्री शरद कुमार सिंघल
मुरारी फ्लोर मिल
हापुड़

श्री दिनेश कुमार गुप्ता
कसेरठ बाजार
हापुड़

श्री अभिषेक मित्तल
पारस स्टील
हापुड़

श्री विनीत कुमार गुप्ता
कंसल फूड इण्डस्ट्रीज
हापुड़

श्री पंकज मित्तल
युवा समाजसेवी
हापुड़

सेवियो टैक्स कोन
प्राइवेट लि.
हापुड़

श्री चेतन प्रकाश
मायाराम राजाराम
हापुड़

श्री अग्रसेन भागवत का विमोचन करते हुए मध्य प्रदेश के राज्यपाल डॉ. राम नरेश यादव तथा मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान। साथ में हैं–पूर्व मुख्यमंत्री श्री कैलाश जोशी, लेखक तथा पूर्व संस्कृति मंत्री श्री लक्ष्मीकान्त शर्मा (तारीख 15 अगस्त, 2013, रविन्द्र भवन, भोपाल)

अग्रोहा विकास ट्रस्ट, अग्रोहा के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री नन्द किशोर जी गोयनका सेठ द्वारिका प्रसाद सर्राफ राष्ट्रीय पुरस्कार-2012 से आचार्य विष्णु दास को पुरस्कृत करते हुए। साथ में हैं ट्रस्टी श्री एम. के. गर्ग, संजय गर्ग, तथा (खड़े हैं) प्रमुख विद्वान श्री चम्पा लाल जी गुप्ता। (तारीख 27 अक्टूबर, 2012)